CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष के ज्वलन्त प्रश्न और वेदाङ्गज्योतिष

(शास्त्रप्रमाणवचन, हिन्दी व्याख्या, वैदिककालज्ञान इत्यादि से युक्त)

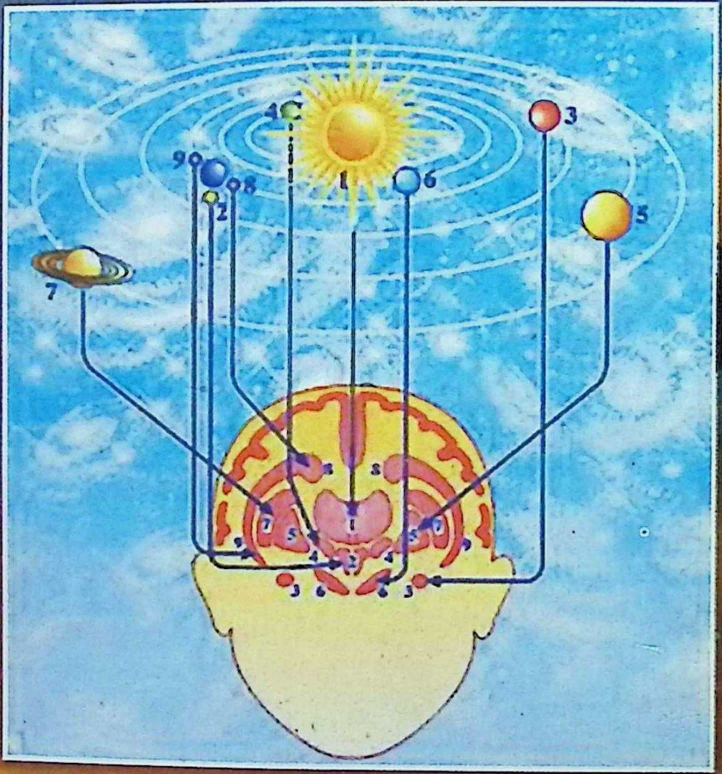

ग्रन्थकार

शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विद्याभवन-प्राच्यविद्या-ग्रन्थमाला
२०६

भारतवर्षीय ज्योतिष के ज्वलन्त प्रश्न
और
वेदाङ्गज्योतिष

(शास्त्रप्रमाणवचन, हिन्दी व्याख्या, वैदिककालज्ञान इत्यादि से युक्त)

ग्रन्थकार
शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन
ब्रह्ममीमांसाचार्य, साहित्याचार्य, एम्.ए. (संस्कृत), एम्.ए. (फिलोसफि),
विद्यावारिधि (पीएच्.डी.), वाचस्पति (डी.लिट्., वाराणसीस्थ-स.सं.वि.वि., १९९२),
(भारतवर्षान्तर्गतहिमवत्खण्डस्थगण्डकीप्रदेशाभिजन)

सहायक
आमोदवर्धन कौण्डिन्न्यायन, शुक्लयजुर्वेदाचार्य
प्रमोदवर्धन कौण्डिन्न्यायन, धर्ममीमांसाचार्य
सुमोदवर्धन कौण्डिन्न्यायन, ब्रह्ममीमांसाचार्य
सम्मोदवर्धन कौण्डिन्न्यायन, एम्.बी.बी.एस्., एम्.डी.
(स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्बगृहपतिगृह्य)

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri
प्रकाशक
चौखम्बा विद्याभवन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष : 0542-2420404
E-mail : cvbhawan@yahoo.co.in

सर्वाधिकार सुरक्षित
पुनर्मुद्रित संस्करण 2008
मूल्य : 150.00

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

❖

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयानुक्रमणिका

भूमिका

भारतवर्ष का इतिहास और वेदाङ्गज्योतिषशास्त्र १

भारतवर्ष का अध्यात्मज्ञानपरक पौराणिक इतिहास १

भारतवर्ष का लौकिक कालक्रम का इतिहास १२

भारतवर्ष के इतिहास में कलियुग का प्रारम्भ और विद्या का ह्रास १४

भारतवर्ष में वैदिक धर्म का समयसमय में पतन और उत्थान १६

इतिहास के आलोक में भारतवर्षीय मौलिक कालगणनापद्धति के पुनर्जागरण का महत्त्व १७

वैदिक वाङ्मय के प्रचार की आवश्यकता और प्रस्तुत ग्रन्थ १७

भारतवर्षीय ज्योतिष के ज्वलन्त प्रश्न और वेदाङ्गज्योतिष

वेद और ज्योतिष २३

वेदाङ्गशास्त्रों का वेद से ही उद्धार २३

भारतवर्षीय ज्योतिष का पहला ज्वलन्त प्रश्न

१. प्रचलित ज्योतिषग्रन्थों में वैदिक पञ्चवर्षात्मक युग की उपेक्षा क्यों? २७

भारतवर्षीय ज्योतिष का दूसरा ज्वलन्त प्रश्न

२. नववर्षारम्भ माघ में अथवा चैत्र में? ३७

भारतवर्षीय ज्योतिष का तीसरा ज्वलन्त प्रश्न

३. संवत्सर-परिवत्सरादि की उपेक्षा क्यों? ५२

भारतवर्षीय ज्योतिष का चौथा ज्वलन्त प्रश्न

४. चान्द्र वर्षों की उपेक्षा और बार्हस्पत्य वर्षों का स्वीकार क्यों? ५७

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का पाँचवाँ ज्वलन्त प्रश्न

५. सौरचान्द्र अयन की उपेक्षा क्यों? ६२

भारतवर्षीय ज्योतिष का छठा ज्वलन्त प्रश्न

६. चान्द्र ऋतुओं का अनादर क्यों? ७०

भारतवर्षीय ज्योतिष का सातवाँ ज्वलन्त प्रश्न

७. ऋतुनियामक अथवा अधिकमासनियामक के रूप में आर्तव वर्ष को न लेकर नाक्षत्रवर्ष को कैसे लिया गया ८०

भारतवर्षीय ज्योतिष का आठवाँ ज्वलन्त प्रश्न

८. चान्द्रमासों की प्रधानता कैसे भुला दी गई? ८६

भारतवर्षीय ज्योतिष का नवाँ ज्वलन्त प्रश्न

९. चान्द्रमास की पूर्णिमान्तता क्यों? ९३

भारतवर्षीय ज्योतिष का दशवाँ ज्वलन्त प्रश्न

१०. अयन के अन्त में ही अधिमास मानने की व्यवस्था क्यों भूला दी गई? ९५

भारतवर्षीय ज्योतिष का ग्यारहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

११. क्षयमास कैसे स्वीकारा गया? १०३

भारतवर्षीय ज्योतिष का बारहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

१२. खण्डतिथियाँ क्यों? १०५

भारतवर्षीय ज्योतिष का तेरहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

१३. वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ की उपेक्षा क्यों? १०९

भारतवर्षीय ज्योतिष का चौदहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

१४. वैदिक नक्षत्रक्रम को क्यों छोडा गया? १२१

भारतवर्षीय ज्योतिष का पन्द्रहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

१५. वेदाङ्गज्योतिष में बताई गई नक्षत्रनामकरण की रीति की उपेक्षा क्यों? १२२

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का सोलहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

१६. वेदाङ्ज्योतिषग्रन्थ के परिष्कार और व्याख्यान में उपेक्षा क्यों?.........१२६

भारतवर्षीय ज्योतिष का सत्रहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

१७. सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ वैदिकों से कैसे मान्य और अनुसरणीय माना गया?...१२७

भारतवर्षीय ज्योतिष का अठारहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

१८. वैदिक आर्तव (सायन) पद्धति को छोडकर निरयण राशिपद्धति कैसे स्वीकारी गई?...१२९

भारतवर्षीय ज्योतिष का उन्नीसवाँ ज्वलन्त प्रश्न

१९. पञ्चाङ्ग सुधार समिति ने वेदाङ्गज्योतिष पर समुचित ध्यान क्यों नहीं दिया?.. १३०

उपसंहार...१३६

निष्कर्षरूप सिद्धान्त...१३९

वेदाङ्गज्योतिष की संक्षिप्त भूमिका

लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष का महत्त्व, परिचय और उसकी विशिष्ट व्याख्या

१. लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ का महत्त्व...............................१४३

२. लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ की प्रामाणिकता.........................१४४

३. लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ की माननीयता..........................१४६

४. लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष में प्रतिपादित मुख्य विषय.................१४६

५. लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष में अप्रतिपादित विषय..................... १४७

६. कालगणना में वर्ष के यथार्थ ज्ञान का महत्त्व........................... १४७

७. वैदिक वर्ष और उसका माघशुक्लप्रतिपदा में प्रारम्भ १४८

८. उत्तरायण के प्रारम्भ के साथ वैदिकवर्ष का प्रारम्भ.................... १४९

९. प्रचलित सूर्यसिद्धान्तग्रन्थ वेदाङ्ग नहीं है १५३

१०. प्रचलित सूर्यसिद्धान्तग्रन्थ के विषय में भ्रम............................. १५४

११. श्रौत-स्मार्त-धर्मकृत्यों में चान्द्रसंवत्सर और चान्द्र ऋतु की ग्राह्यता..... १५५

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri
१२. अर्वाचीन काल में लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ का अनुशीलन १५६
१३. स्वाद्ध्यायशाला में लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ का विशिष्ट अध्ययन..१५८
१४. वैदिककालगणनाव्यवस्था के सम्बन्ध में स्वाद्ध्यायशाला के निष्कर्ष..१५९
१५. प्रचलित पञ्चाङ्गों के सिद्धान्त में असामञ्जस्य........................१६१
१६. लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ के अनुशीलन की और पञ्चाङ्गों में तदनुकूल विषयों के समावेश की आवश्यकता............१६२
१७. प्रस्तुत हिन्दी व्याख्या की विशेषताएँ.......................................१६२

यजुर्वेदिनां परम्परयाऽऽगतं परिष्कृतं वेदाङ्गज्योतिषम् (मूलम्)........१६५

यजुर्वेदिनां परम्परयाऽऽगतं परिष्कृतं वेदाङ्गज्योतिषम्
(हिन्दीव्याख्यासहितम्)

प्रणाम तथा प्रतिज्ञा..१६९
ज्योतिषज्ञान की आवश्यकता १७०
ज्योतिषप्रशंसा..१७०
वेदाङ्गज्योतिष का प्रतिपाद्य विषय १७०
आदियुग का निरूपण १७१
उदगयन-दक्षिणायनकाल का निर्देश.. १७२
दिवसमान की वृद्धि और रात्रिमान के ह्रास से अयन का निरूपण............१७३
सौर अयन के आरम्भ की तिथियाँ...१७३
सौर अयन के आरम्भ में रहनेवाले चान्द्र नक्षत्र १७४
सौर ऋतु के आरम्भ की तिथियाँ और पञ्चपर्वा ऋतु.......................... १७५
Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पक्षद्युहानव्यवस्था और पादपरिभाषादि १७६
(पर्वसावनदिनांश-नक्षत्रांशसारणी) १७७
पर्वराशिज्ञान का उपाय १९७
मतभेद से पर्वसम्मित काल १९७
पर्वान्त में सूर्य और चन्द्र से अथवा चन्द्र से भुक्त भांशों के ज्ञान का उपाय १९८
(पर्वभांशसारणी) १९९
पर्वभांशों की स्थिति में अन्य विशेष २१२
भांशमूलक पर्वनक्षत्रज्ञानोपाय इत्यादि २१३
जावादिनक्षत्रव्यवस्था २१४
पर्वभादानकला के ज्ञान का उपाय २१५
तिथिनक्षत्र के आदेश की व्यवस्था २१९
तिथिभादानिका कला २१९
तिथिसमाप्ति का काल २२०
विषुवान् तिथि २२१
नाडिकाप्रमाण २२२
इष्टतिथि में सूर्यनक्षत्र के ज्ञान का उपाय २२२
सूर्य का नक्षत्रविशेष में प्रवेश के काल के ज्ञान का उपाय २२३
रविदिवसभोग्य नक्षत्रांशमान इत्यादि २२५
युग के अवयव दिनादि की सङ्ख्या २२६
एक युग में श्रविष्ठादि के उदय की सङ्ख्याएँ २२७
युग में सूर्यनक्षत्र, चान्द्र अयन और पर्वों की सङ्ख्या तथा कलाकाष्ठा २२७
युग में सावनमास की, चान्द्रमास की और नाक्षत्रमास की सङ्ख्या तथा सावनादिमास के दिनों की सङ्ख्या २२८
नक्षत्र की देवताएँ २२८
यजमान का यज्ञकर्मार्थ नक्षत्रज नाम नक्षत्रदेवता से रखने का विधि २२९
नक्षत्रविशेषों की उग्र और क्रूर सञ्ज्ञा २३०

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वैदिक अधिकमास की व्यवस्था.. २३०
नाडिका की और मुहूर्त की परिभाषा, दिनगत मुहूर्तसङ्ख्या और कलासङ्ख्या.. २३१
चन्द्र के और सूर्य के नक्षत्रयोग का काल तथा काष्ठा की परिभाषा............ २३२
दिनमान के ज्ञान का उपाय.. २३२
ऋतुशेष के ज्ञान का उपाय.. २३३
प्रस्तुत ग्रन्थ का कालज्ञानोपायसमुद्देशपरत्व और अन्य कल्पनाधारत्व २३५
वेदाङ्गज्योतिष के प्रतिपाद्य विषयों के और प्रवक्ता के निर्देश से ग्रन्थ का उपसंहार.. २३५
ग्रन्थार्थज्ञान का फल.. २३६

परिशिष्ट (१)

वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थश्लोकानुक्रमणिका.. २३९

परिशिष्ट (२)

नक्षत्रदेवता.. २४०

परिशिष्ट (३)

वैदिककालज्ञान.. २४१
(क) वैदिक कालज्ञान की आवश्यकता.. २४१
(ख) वैदिककालज्ञान.. २४३
(ग) वैदिकपञ्चवर्षात्मकयुग-चान्द्रषष्टिसंवत्सर-समन्वयोदाहरण-सारणी.. २६१
(घ) वैदिक धर्मकृत्य के सङ्कल्प में काल के उल्लेख का उदाहरण २६४

परिशिष्ट (४)

ग्रन्थकारद्वारा अवलोकित प्रमुख ग्रन्थ २६५

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूमिका

भारतवर्ष का इतिहास और वेदाङ्गज्योतिषशास्त्र

(भारतवर्ष का अध्यात्मज्ञानपरक पौराणिक इतिहास)

भारतवर्ष में इतिहास को ब्रह्माओं के आयु के गणित से बताया जाता है। एक ब्रह्मा के सम्पूर्ण आयु को **'पर'** कहा जाता है। ऐसे पर आयुवाले ब्रह्मा कितने बीत गए और कितने होंगे इसका कोई गणित निश्चित नहीं किया जाता है, क्यों कि काल को अनादि और अनन्त माना जाता है। कहा ही गया है—

भविष्याणामतीतानां ब्रह्मणां भूरिदक्षिण।
अनादिमतत्वात् कालस्य सङ्ख्या वक्तुं न शक्यते॥

गङ्गायाः सिकता धारास् तथा वर्षति वासवे।
शक्या गणयितुं राजन् न व्यतीताः पितामहाः॥

द्र.– विष्णुधर्मोत्तरपुराण १।८०।६–८।

असङ्ख्याता गता मोक्षं ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः।
निंजे वर्षशते पूर्णे बालुकारेणवो यथा॥

—स्कन्दपुराण, नागरखण्ड १९४।३५–३६।

ब्रह्मसृष्टिलयानां च सङ्ख्या नाऽस्ति श्रुतौ श्रुता।
यथा पृथिव्या रेणूनामित्यूचे चन्द्रशेखरः॥

—ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड ३६।१७७-१७८।

ब्रह्मा जी का जीवनकाल उनकी कालगणनाऽनुसार सौ वर्ष का माना जाता है। उनके इस सौ वर्ष के काल में मनुष्यों के प्रचलित सौर-चान्द्र वर्ष ३१,१०,४०,००,००,००,००० (इकतीस नील, दस खरब, चालीस अरब) होते हैं। इसको महाकल्प कहते हैं। ब्रह्मा जी के एक अहोरात्र अथवा एक तिथि को मनुष्यों का एक कल्प कहा जाता है। ब्रह्मा जी के एक दिन में मनुष्यों के ४,३२,००,००,००० (चार अरब बत्तीस करोड) वर्ष माने जाते हैं। उतने ही समय की ब्रह्मा जी की रात्रि होती है। इस प्रकार ब्रह्मा जी के एक अहोरात्र में मनुष्यों के ८,६४,००,००,००० (आठ अरब चौसठ करोड) वर्ष होते हैं। ऐसे अहोरात्रवाली तीस तिथियों का अथवा तीस कल्पों का ब्रह्मा जी का एक मास होता है। इन तीस कल्पों के श्वेत(वाराह), नीललोहित, वामदेव इत्यादि ३० नाम मत्स्यपुराण

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(अध्याय २९०) इत्यादि में पाए जाते हैं। ऐसे बारह मासों से ब्रह्मा जी का एक वर्ष होता है, और ब्रह्मा जी ऐसे वर्षों के सौ वर्ष तक जीते हैं। एक कल्प में १४ मन्वन्तर माने जाते हैं। मन्वन्तर एक मनु का लोकपालन का समय माना जाता है। स्वायम्भुव स्वारोचिष इत्यादि १४ मनुओं के नाम स्मृति-पुराणों में पाए जाते हैं। एक मनु के समय में मनुष्यों के ३०,६७,२०,००० (तीस करोड, सतसठ लाख, बीस हजार) वर्ष होते हैं। एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी (चौकडी) मानी जाती हैं। चतुर्युगी का अर्थ सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि इन चार युगों का समुदाय है। इन चार युगों के मानुष वर्षों की सङ्ख्या पृथक्पृथक् मानी गई हैं। सत्ययुग में मनुष्यों के वर्ष १७,२८,००० (सत्रह लाख अट्ठाईस हजार), त्रेतायुग में १२,९६,००० (बारह लाख छानबे हजार), द्वापरयुग में ८,६४,००० (आठ लाख चौसठ हजार) और कलियुग में ४,३२,००० (चार लाख बत्तीस हजार) माने गए हैं। ऐसी चौकडी १००० बीतने पर ब्रह्मा जी का एक दिन पूर्ण होता है। इन हजार दिव्ययुगों के अथवा चतुर्युगियों के मानुष वर्ष ४,३२,००,००,००० (चार अरब बत्तीस करोड) होते हैं। इतनी ही लम्बी ब्रह्मा जी की रात होती है।

उपर्युक्त प्रकार की कालगणनापद्धति मनुस्मृति में भी है (१।६७–७३)। भारतवर्ष की कालगणना की यह परम्पराऽऽगत पद्धति हैं। इसी पद्धति की कालगणना से पुराणों में भारतवर्ष का इतिहास बताया गया है। जैसे आधुनिक वैज्ञानिकों की प्रकाशवर्ष से दूरी मापने की पद्धति है, वैसे ही ऋषिमुनियों की युग-मन्वन्तर-कल्प-महाकल्पों के परिमाणों से अनादि-अनन्त काल को यथा-सम्भव मापने की पद्धति है। इसकालगणनापद्धति का तात्पर्य लोगों को काल की अनादिता और अनन्तता को समझाकर वैराग्य उत्पन्न करके आत्मज्ञान की ओर उन्मुख बनाने में है। इसकालगणना पद्धति के ऐसे तात्पर्य को समझे विना "युगों, मन्वन्तरों एवम् कल्पों का सिद्धान्त तथा कल्पनामय वर्षों की सङ्ख्या एवम् प्रलय के भीषण रूप का वर्णन आदि अवास्तविक एवम् मनोराज्यमयी कल्पना मात्र है" ऐसा कह देना (धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थ भाग, पृ. ३३४) पाण्डुरङ्ग वामन काणे जी का अविवेकमूलक कार्य ही दिखाई देता है।

पुराणों में महाकल्पों की बात तो दुर्लभ है। अनगिनत ब्रह्मा बीतने की और भविष्य में अनगिनत ब्रह्मा होने की बात ही कही गई है। कल्पों की बातें तो मिलती हैं। मार्कण्डेय मुनि को सप्तकल्पान्तजीवन बताया गया है। मार्कण्डेय मुनि से इन्द्रद्युम्न राजा को, उनसे ज्येष्ठ प्रावारकर्ण नामक उलूक को, उससे उससे भी ज्येष्ठ नाडीजङ्घ बक को और उससे अपने से भी ज्येष्ठ अकूपार नाम के कछुए को बताए जाने की कथा महाभारतादि में (वनपर्व १९९ अ.) पाई जाती है। लोमश ऋषि को लोम जैसे अनगिनत कल्पों तक जीनेवाला बताया गया है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विभिन्न कल्पों की कथा को लेकर विभिन्न पुराण बताए जाने की बात मत्स्यपुराण में (५३ अ.) आई है। अनगिनत मन्वन्तरों के सृष्टि-संहार का उल्लेख मनुस्मृति में (१।८०) भी है। मन्वन्तर के वर्णन और उनके कुछ वृत्तान्त भी पुराणों में प्राप्त होते हैं। चौदह मनुओं का क्रम १. स्वायम्भुव, २. स्वारोचिष, ३. उत्तम, ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष, ७. वैवस्वत (श्राद्धदेव), ८. सावर्णि, ९. दक्ष-सावर्णि, १०. ब्रह्मसावर्णि, ११. धर्मसावर्णि, १२. रुद्रसावर्णि, १३. देवसावर्णि (रौच्य), १४. इन्द्रसावर्णि (भौत्य) ऐसा बताया गया है। आगामी मन्वंन्तरों के नामों में कुछकुछ भेद भी दिखाई देता है। इन मनुओं का वर्णन ब्रह्माण्डपुराण में (२।३६।२-४, ४।१।१-११६), मत्स्यपुराण में (९।१-३९), विष्णुपुराण में (३।१।३-३।२।४५), स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड में (१।१०५।३९,४०) और हरिवंश में (१।७।१-७, १।७।६०-९०) भी मिलता है। मार्कण्डेयपुराण में भी पचासवें अध्याय में चौदह मनुओं का उल्लेख तथा स्वायम्भुव मन्वन्तर का कथन और ५८,६६,७१,७२,७३,७४,७७,९१,९५,९६ अध्यायों में अन्य स्वारोचिषादि १३ मनुओं का प्रतिपादन है। भागवत में अष्टम स्कन्ध के प्रथम अध्याय में स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम और तामस मनुओं का तथा पञ्चम अध्याय में रैवत मनु का तथा चाक्षुष मनु का उल्लेख है; और त्रयोदश अध्याय में वैवस्वत (श्राद्धदेव), सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि, इन्द्रसावर्णि इन आठ मनुओं का उल्लेख है। वहाँ तृतीयस्कन्ध के बारहवें अध्याय से सप्तम स्कन्ध की समाप्ति तक वर्तमान श्वेतवाराह कल्प के प्रथम मन्वन्तर स्वायम्भुव मन्वन्तर का विस्तृत वर्णन है। वैवस्वत मन्वन्तर का वर्णन भी पुराणों में विस्तृत रूप में ही मिलता है। अन्य मन्वन्तरों का वर्णन पुराणों में अल्प मात्रा में ही मिलता है। स्वायम्भुवादि चाक्षुषान्त मन्वन्तरों में अवतरित होनेवाले यज्ञपुरुष विष्णु के अवतारों का वर्णन भागवत में (८।१।१९-३०, ८।५।१-१०) और विष्णुपुराण में भी (३।१।३५-४१) मिलता है। स्वारोचिष मन्वन्तर के सुरथ राजा का चरित्र मार्कण्डेयपुराण के देवीमाहात्म्य प्रकरण में मिलता है। देवीभागवत में भी यह चरित्र है (१०।१०।६)। देवीभागवत के दशम स्कन्ध में (१।२,३) सभी मन्वन्तरों में देवी के रूपों का वर्णन करने के लिए नारद की प्रार्थना आई है। वहाँ पर स्वायम्भुव मनु की (१०।१।७–), स्वारोचिष मनु की (१०।८।६–), उत्तम मनु की (१०।८।१३–), तामस मनु की (१०।८।१७–), रैवत मनु की (१०।८।२१–), चाक्षुष मनु की (१०।९।२–), वैवस्वत मनु की (१०।१०।१–), सावर्णि मनु की (१०।१०।३-) और वैवस्वतपुत्र ६ मनुओं की (१०।१३।२-३२) कथाएँ आई हैं। वहाँ पर वैवस्वतमनुपुत्र ६ मनुओं के नाम क्रमशः दक्षसावर्णि, मेरुसावर्णि, सूर्यसावर्णि, चन्द्रसावर्णि, रुद्रसावर्णि और विष्णुसावर्णि (१०।१३।२५-३०) हैं।
Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उक्त प्रकार से इतिहासवर्णन में मन्वन्तर के कालक्रम का अवलम्बन करने की पद्धति अवगत होती है।

वर्तमान सातवें मन्वन्तर वैवस्वत मन्वन्तर की बीती हुई चौकडियों के इतिवृत्तों का कुछ वृत्तान्त पुराणों में मिलता है। अन्य इतिवृत्त दुर्लभ होने पर भी बीती हुई २७ चौकडियों के २७ व्यासों का और अट्ठाईसवें व्यास का भी उल्लेख पुराणों में मिलता है (कूर्मपु.१।५२।१-११, देवीभागवत १।३।२५-३३, ब्रह्माण्डपु.पूर्वभाग ३५।११६-१२५, लिङ्गपु. १।२४।११-१२५, वायुपु. १।२३।१०७-२०७, विष्णुपु. ३।३।१०-१९, शिवपु. ३।४।२-३।५।४३, ७।२।८।४३-४८)। विभिन्न चतुर्युगियों के (महायुगों के) विष्णु के अवतारों का वर्णन भी पुराणों में मिलते हैं (ब्रह्माण्डपु. ३।७३।७२-१०४, वायुपु. २।३६।६८-१०४, मत्स्यपु. ४७।२३५-२५५)। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर की अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के सत्ययुग में वामनावतार, त्रेता में रामावतार और द्वापरयुग के अन्त में कृष्णावतार होने की बात पुराणों में पाई जाती है।

(भारतवर्ष का लौकिक कालक्रम का इतिहास)

उपर्युक्त विवरण से भारतवर्ष में मुख्य रूप में आध्यात्मिक भावना की अभिवृद्धि के लिए ही इतिहास बताए जाने की बात स्पष्ट होती है। भौतिक पिण्डों का और भौतिक सामान्य घटनाक्रम का सामान्य लौकिक इतिहास लिखने की प्रथा भारतवर्ष में दुर्लभ है। इसी कारण से वर्धमान महावीर का निर्वाण अथवा शाक्यसिंह बुद्ध का निर्वाण आज से कितने वर्ष पूर्व हुआ था, राजा प्रियदर्शी अशोक ही है अथवा दूसरा कोई है, उसका समय आज से कितने वर्ष पूर्व का है ऐसे बहुचर्चित विषय भी अनिश्चित दिखाई देते हैं। भारतवर्ष के अतिप्रसिद्ध राजा अशोक का समय भी यवन इतिहासलेखक के सन्देहास्पद अस्पष्ट लेख के आधार में कल्पित बताई जाती है।

तथापि भारतवर्ष में लौकिक घटनाक्रम के वर्णन के रूप में इतिहास लिखने की परम्परा भी मुख्य रूप में राजाओं के अथवा राजकुल के शासनवर्षों की गणना के लिए लिखने की परम्परा भी चली आ रही विदित होती है। कलिसंवत् के प्रारम्भ से १० वर्ष बीतने पर मार्कण्डेय मुनि का और राजा वज्र का संवाद विष्णुधर्मोत्तरपुराण में (१।८०।१-५) वर्णित है। कृष्ण का परमधामगमन होने पर कलियुग के ३० वर्ष बीतने पर शुकमुनि से परीक्षित् को भागवत सुनाए जाने की बात, उसके बाद २०० वर्ष (कलियुग के २३० वर्ष) बीतने पर गोकर्ण से भागवतकथा सुनाई जाने की बात और उसके बाद ३० वर्ष (कलियुग के २६० वर्ष) बीतने पर ब्रह्मपुत्रों से भागवतकथा कही जाने की बात भी पद्मपुराणीय भागवतमाहात्म्य में (६।९४-९६) पाई जाती है। इस विषय में पद्मपुराण का मुद्रित पाठ (उत्तरखण्ड

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१९८।६९-७२) भी द्रष्टव्य है। परीक्षित् के जन्मकाल से १००० वर्ष व्यतीत होने की और सहस्रसंवत्सर यज्ञ समाप्त करने का समय आने की बात भी वहाँ पर उल्लिखित है। परीक्षित् के जन्म से किसी नन्द के राज्याभिषेक तक १०५० वर्ष बीतने की बात विष्णुपुराण में आई है (४।२४।१०४)। नन्दवंशी शूद्र राजा महापद्म से आन्ध्र राजा पौलोम तक ८३६ वर्ष बीतने की बात मत्स्यपुराण में आई है (२७३।३५–३७)। कलियुग के ३२९० वर्ष बीतने पर शूद्रक राजा प्रबल होने की और उसके बाद कलियुग के ३३१० वर्ष बीतने पर चाणक्य से नन्दराज्य नष्ट किए जाने की बात भी स्कन्दपुराण में (१।२।४०।२४९-२५१) वर्णित है। वहीं पर कलियुग के ३०२० वर्ष बीतने पर विक्रमादित्य का राज्यलाभ भी बताया गया है (१।२।४०।२५२–२५३)। इस प्रकार का धूँधला लौकिक इतिहासवर्णन पुराणों में पाया जाता है।

सुमतितन्त्रनामक ग्रन्थ में युधिष्ठिर और दुर्योधन के समय के २००० वर्ष के बाद नन्दसंवत् का प्रचलन होने की बात और उसके ८०० वर्ष के बाद शकसंवत् का प्रचलन होने की बात उल्लिखित है।

सत्यार्थप्रकाश में दयानन्द ने एकादश समुल्लास के अन्त में युधिष्ठिरादि आर्य राजाओं का वंश दिखाया है। उसमें कितनी सचाई है विवेचनीय है। अपने को महाभारतयुद्ध में लडनेवाले राजाओं में से किसी का वंशधर बतानेवाले लोग भी अनेक बताए जाते हैं। शत्रुघ्न मिश्र ने अपनी मन्त्रार्थदीपिका के प्रारम्भ में अपने को महाभारतयुद्ध में लडनेवाले सुशर्मा के वंश में उत्पन्न राजा धर्मचन्द्र के आदेश से ग्रन्थ बनानेवाला बताया है। ऐसा इतिहास छिटफुट रूप में मिलने पर भी क्रमबद्ध प्रामाणिक इतिहास दुर्लभ है। कश्मीर में राजाओं का इतिहास लिखने की प्राचीन परम्परा रही हुई, और वहाँ युधिष्ठर के राज्यकाल में वर्तमान राजा गोनन्द से लेकर राजाओं का इतिहास लिखे जाने की प्रथा भी कल्हणकृत कश्मीरराजतरङ्गिणी से अवगत होती है। १२०५ संवत् में (राजतरङ्गिणी १।५२) कश्मीरराजतरङ्गिणी रचनेवाले कल्हण ने प्राचीन राजकथा के ११ ग्रन्थ और नीलमत भी देखकर राजतरङ्गिणी रची है (राजतरङ्गिणी १।१४)। साथ ही पूर्ववर्ती राजाओं के देवमन्दिरप्रतिष्ठालेख, शासनलेख और प्रशस्तिपट्ट भी देखकर कल्हण ने ग्रन्थ बनाया है। तथाऽपि वह भारतवर्ष के एक देश का ही शान्तरसप्रधान इतिहासकाव्य दिखाई देता है। यद्यपि महाभारत के **"श्रद्धेयः कथितो ह्यर्थः सज्जनश्रवणं गतः। चिरं तिष्ठति मेदिन्यां शैले लेख्यमिवाऽर्पितम्"** (अनु. १३९।४३, सातवलेकरसंस्करण अथवा भाण्डारकरसंस्करण अनु. १२६।४३) इस श्लोक से शिलालेख लिखने की पद्धति महाभारतरचनाकाल में भी अस्तित्व में रही हुई ज्ञात होती है, तथापि राजा प्रियदर्शी से प्राचीन शिलालेख नहीं मिल

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहे हैं। हडप्पा और मोहेनजोदरो के लेख मिलने पर भी उनके शब्द और अर्थ तो स्पष्ट रूप में नहीं समझे जा सके हैं।

शिलालेखों की स्थिति वैसी होने पर भी परम्परागत रूप से अपने इतिहास का कालक्रम से आकलन किया जाता रहा अवगत होता है। सिकन्दर को किसी भारतीय पुरुष ने ६७७७ वर्षों से चली आ रही अपनी परम्परा के विषय में बताया था, यह बात भारतीय इतिहासलेखक कहते हैं (द्रष्टव्य- प्राचीन भारतीय काल-गणना एवम् पारम्परिक संवत्सर, रामजी पण्डेय, वाराणसी, १९८०, पृ. ११९, (१३९), १५६)। नेपाल के वंशावलीकार भी आज से ६००० वर्ष पूर्व से नेपाल में राजपरम्परा चलती आ रही मानते हैं। इस से लौकिक घटनाक्रम से युक्त इतिहास लिखने की भारतवर्षीय परम्परा भी प्राचीन काल से ही चली आ रही विदित होती है। तथापि सुदृढ, स्पष्ट और पर्याप्त सामग्री के अभाव में हम सामान्यतया ही भारतवर्ष के इतिहास के कालविशेषों का और उसमें विद्याधर्म के अनुशीलन-अनुपालन की स्थिति का सङ्क्षेप में उल्लेख नीचे कर रहे हैं।

(भारतवर्ष के इतिहास में कलियुग का प्रारम्भ और विद्या का ह्रास)

आज से लगभग ५००० वर्ष पूर्व कलियुग के प्रारम्भ से लेकर वर्धमान महावीर के और शाक्यसिंह बुद्ध के आगमन से पूर्व तक सामान्यतया वेद-वेदाङ्ग-स्मृति-पुराणों की और उनसे प्रतिपादित वैदिक सनातन वर्णाश्रम धर्म की अच्छी ही प्रतिष्ठा रही हुई विदित होती है। यद्यपि छान्दोग्योपनिषद् के **"तद् धैक आहु-रसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाऽद्वितीयम्, तस्मादसतः सज् जायत"** (६।२।१) इस वाक्य में असत् को अथवा शून्य को जगत् का कारण कहनेवाले वैनाशिक चार्वाकादि का उल्लेख होने से अनादिकाल से ही चार्वाकादि भी अस्तित्व में रहे हुए ही विदित होते हैं, तथापि कलियुग की प्रवृत्ति से अर्थकाममात्रपरायण नास्तिक चार्वाकादिकों के चरित्र की और प्रचार की क्रमशः विशेष अभिवृद्धि अनुमित होती है। इस से वैदिक अध्ययन में और धर्माचरण में भी शिथिलता बढती गई होगी। राजाओं के चरित्र में भी क्रमशः दोष घुसने से सूर्यवंशी इक्ष्वाकुराजवंश की[1] और चन्द्रवंशी क्षत्रियों के पौरवराजवंश की[2] भी कलियुग में समाप्ति होने से, ब्राह्मणसमाज भी

---

१. **इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्राऽन्तो भविष्यति।**
यतस् तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ॥
—भागवत ९।१२।१६, वायुपुराण २।३७।२८८, विष्णुपुराण ४।२२।१३।

२. **ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर् वंशो देवर्षिसत्कृतः।**
क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थानं प्राप्स्यते कलौ॥—ब्रह्माण्डपु. ३।७४।२४४–२४५,
भागवत ९।२२।४४-४५, वायुपु. २।३७।२७४-२७५, विष्णुपु. ४।२१।१८।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पतनोन्मुख होने पर हैरण्यगर्भ, वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, कौमार इत्यादि सम्प्रदायों के प्रचार की वृद्धि होने से बृहद्रथवंशज, प्रद्योतवंशज और शिशुनागवंशज भारतवर्षीय प्रमुख राजाओं के समय में वैदिक सनातन वर्णाश्रम धर्म के आचरण में और वेद-वेदाङ्गविद्या के अनुशीलन में भी क्रमशः ह्रास ही बढता गया विदित होता है। वैदिक धर्म की व्यापकता को, गम्भीरता को और शाश्वतप्रकृतिसम्मतता को भी समझने में असमर्थ होने से वैदिक धर्म के विरोध में खडे हुए राजकुमार वर्धमान जिन के और शाक्यसिंह बुद्ध के ऐकान्तिक धर्म के प्रचार से क्षात्रधर्म भी शिथिल होने पर बाह्य कौरुष लोगों के और यवनों के भारतवर्ष में आक्रमण होने से वैदिक धर्म का आचरण और वेद-वेदाङ्गों का अनुशीलन भी अत्यन्त ही शिथिल होने पर और विशेषतः शिशुनागवंशज राजा महानन्दी के शूद्रा स्त्री में उत्पन्न पुत्र शासक महापद्म के समय में वैदिक सनातन वर्णाश्रम धर्म के आचरण में और वेद-वेदाङ्ग विद्याओं के अनुशीलन में बहुत बडा सङ्कट आने पर और सिकन्दरप्रभृति यवनों के आक्रमण की आपत्ति भी आने पर विष्णुगुप्त कौटल्य से अमर्षपूरित होकर **"येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः। अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्"**[1] ऐसा कहते हुए नन्दों[2] को उखाड फेंककर अपने शिष्य मौर्यवंशज चन्द्रगुप्त को बलिष्ठ राजा बनाकर[3] उसका प्रयोग करके वैदिक राष्ट्र की रक्षा की जाने की बात अवगत होती है।

कालक्रम से मौर्यलोग भी प्रमादशील होने पर और जैन और बौद्धों से समाज प्रभावित होने पर तथा क्षत्रिय लोग भी युद्धपराङ्मुख होने पर आक्रामक

---

१. कौटलीय अर्थशास्त्र १५।१ (श्लो. ३८०)।

२. • महानन्दिसुतश् चाऽपि शूद्रायां कलिकांशजः।
उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्राऽन्तको नृपः॥
—मत्स्यपुराण २७१।१७, द्रष्टव्य- भागवत १२।१।८-९, वायुपु. २।३७।३२१।

• महानन्दिसुतः शूद्रागर्भोद्भवोऽतिलुब्धो महापद्मो नन्दः परशुराम इवाऽपरोऽखिलक्षत्रियान्तकारी भविता। —विष्णुपुराण ४।२४।४।

• ततः प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्रयोनयः।
एकराट् स महापद्म एकच्छत्रो भविष्यति॥—वायुपुराण २।३७।३२१।

३. • चन्द्रगुप्तं नृपं राज्ये कौटिल्यः स्थापयिष्यति।
चतुर्विंशत् समा राजा चन्द्रगुप्तो भविष्यति॥—वायुपु. २।३७।३२५।

• नवैतान् नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति।
कौटिल्य एवं चन्द्रगुप्तं राज्येऽभिषेक्ष्यति।—विष्णुपुराण ४।२४।२६–२८(६,७)।

• उद्धरिष्यति कौटिल्यः समाद्वादशभिः सुतान्।
भुक्त्वा महीं वर्षशतं ततो मौर्यान् गमिष्यति॥—मत्स्यपुराण २७२।२१।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाह्लीक यवन और देमित्रिस, मिन्याण्डर इत्यादि भारतवर्ष में प्रविष्ट होने पर पाणिनीयव्याकरणभाष्यकार पतञ्जलि मुनि प्रभृति विद्वान् ब्राह्मणों से समर्थित और प्रोत्साहित सुङ्गवंशज सेनानी पुष्यमित्र से स्वधर्मशिथिल मौर्यवंशज बृहद्-रथ राजा को समाप्त करके स्वयम् राज्य लेकर[1] बाह्य आक्रामकों को खदेड कर दो वार अश्वमेध यज्ञ करके वैदिक धर्म का पुनरुत्थान किया गया विदित होता है।

(भारतवर्ष में वैदिक धर्म का समयसमय में पतन और उत्थान)

फिर भी शुङ्गवंशज, काण्ववंशज, आन्ध्रवंशज, गर्दभिल-मालवगणमुख्य और गुप्तवंशज राजाओं के समयों में समय-समय में वैदिक धर्म का पतन और उत्थान होते रहना अवगत होता है। ऐसी स्थिति में पह्लव, शक, कुषाण कुजल-कफ्स, वेमकफ्स, कनिष्क, तुरुष्काख्य श्वेतहूण तोरमाण, मिहिरकुल इत्यादि से भारतवर्ष आक्रान्त होने पर प्रथम कालिदास, शबरस्वामि, हरिषेण कालिदास, कुमारिलभट्ट, प्रभाकरमिश्र इत्यादि विद्वान् ब्राह्मणों से समर्थित विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त इत्यादि राजाओं से अपनेअपने कालों में वैदिक धर्म के उत्थान के और वैदिक राष्ट्र की रक्षा के लिए भी क्रमशः विविध प्रकार से प्रयास किए जाने की बात अवगत होती है। हर्षवर्धन के समय में कलियुग की सैंतीसवीं शताब्दी में (वैक्रमाब्दों की सातवीं शताब्दी में) फिर राजाश्रय पाने से बौद्धों का फिर उत्थान होने से वैदिक सनातन वर्णाश्रम धर्म फिर शिथिल होने पर और दक्षिणापथ में उत्पन्न शङ्कर से प्रचारित अध्यात्म-वाद प्रबल ही रहने पर भी वर्णाश्रमधर्म शिथिल होने से भारतवर्ष के उत्तरभाग में राज्य करनेवाले क्षत्रिय लोग दुर्बल होने से सुदृढ सम्राट् न होने पर कलियुग की अडतीसवीं शताब्दी में (वैक्रमाब्दों की आठवीं शताब्दी में ७१२ सन् में) सिन्धु-प्रदेश में अरब मुसलमानों का प्रवेश होने का इतिहास पाया जाता है। उसके वाद तुरुष्क मुसलबान महमूद गजनवी से भारतवर्ष के पश्चिम भाग में सौराष्ट्र (गुज-रात) के सोमनाथमन्दिर तक बहुत वार लूटमार मचाये जाने का इतिहास बताया जाता है। शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी से भारतवर्ष के पश्चिमी प्रान्तों में आक्रमण

---

१. • पुष्यमित्रस् तु सेनानीरुद्धृत्य स बृहद्रथान्।
कारयिष्यति वै राज्यं षट्त्रिंशतिसमा नृपः॥
—मत्स्यपुराण २७२।२६, द्रष्टव्य- वायुपराण २।३७।३३१, भागवत १२।१।१६।

• औद्भिज्जो भविता कश्चित् सेनानीः काश्यपो द्विजः।
अश्वमेधं कलियुगे पुनः प्रत्याहरिष्यति॥—हरिवंश ३।२।४०।

• कोसलाधिपेन द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य षष्ठेन कौशिकीपुत्रेण धनदेवेन धर्मराज्ञा पितुः फल्गुदेवस्य केतनं कारितम्।—अयोध्याशिलालेख।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करते हुए **दिल्ली** को भी अपने अधीन में किए जानेका और वहाँ उसके दास कुतुबुद्दीन **ऐबक** से कलियुग के तैंतालीसवीं शताब्दी में (१२५० विक्रमसंवत् में, ११९३-११९४ सन् में) मुसलमानों की गद्दी स्थापित की जाने का भी इतिहास पाया जाता है। मुसलमानों ने १२६० विक्रमसंवत् तक में विहार में और बङ्गाल में भी विजय प्राप्त किए जाने का भी इतिहास है। १२५० विक्रमसंवत् से १९१४ संवत् तक दिल्ली की गद्दी में मुसलमान शासक रहे हुए अवगत होते हैं। उसके बाद २००४ संवत् तक आङ्ग्ल शासक वहाँ रहे हुए अवगत होते हैं।

भारतवर्ष के उक्त इतिहास से भारतवर्षीय विद्या की और धर्म की परम्परा में आए हुए सङ्कट का अनुमान होता है।

(इतिहास के आलोक में भारतवर्षीय मौलिक कालगणनापद्धति के पुनर्जागरण का महत्त्व)

इसी इतिहास को ध्यान में रखकर भारतवर्षीय ज्योतिष में ज्वलन्त प्रश्न उठने की स्थिति का और वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ दब जाने की स्थिति का सम्यक् आकलन किया जाना चाहिए। इस स्थिति में भी भारतवर्ष के ब्रह्मयज्ञ की (वेद-वेदाङ्गो के नित्य प्रतिदिन अध्ययन करने की) ब्राह्मणों की परम्परा के प्रसाद से वेदाङ्गज्योतिष जैसा अमूल्य (अनमोल) ग्रन्थ सुरक्षित हो सकने का और उससे भारतवर्षीय मौलिक कालगणनापद्धति में प्रकाश पड सकने का महत्त्व अच्छी तरह समझा जाना चाहिए और प्रस्तुत ज्वलन्त प्रश्नों के आलोक में भारतवर्षीय मूल कालगणनापद्धति का स्वरूप भी अच्छी तरह समझा जाना चाहिए तथा सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिए तदनुकूल एक ही मूल भारतवर्षीय कालगणनापद्धति स्थापित और प्रचारित की जानी चाहिए।

वैदिक वाङ्मय के प्रचार की आवश्यकता और प्रस्तुत ग्रन्थ

भारतवर्ष के उक्त इतिहास को ध्यान में रखकर ही स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब काम कर रहा है। वैदिक वाङ्मय का भारतवर्ष के गौरवास्पद विषयों में प्रमुख स्थान है। इसी में भारतवर्षनिवासी लोगों का जीवनदर्शन आधृत है। वर्तमान परि-स्थिति में वैदिक वाङ्मय का यथार्थ ज्ञान की दुर्लभता दीखती है। इससे भारत-वर्षनिवासियों की आत्मगौरवानुभूति बहुत ही शिथिल हो गई है। अतः स्वाद्ध्याय-शालाकुटुम्ब से वैदिक वाङ्मय के अध्ययन, बोध, आचरण और प्रचारण करके भारतवर्षनिवासियों में आत्मगौरवानुभूति जगाने में प्रयास किया जा रहा है।

इस प्रसङ्ग में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दश्शास्त्र और ज्योतिष इन छः अङ्गों की सहायता से वेद का अध्ययन करके वेद के स्वरूप,

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थ, प्रयोग और रहस्य को समझने, यथाशक्ति प्रयोग में लाने और प्रचार करने में स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब क्रियाशील है।

वेदाङ्गों में शिक्षा प्रथम स्थान में है। शिक्षा के ग्रन्थ अनेक उपलब्ध हैं। किन्तु सम्पूर्णाङ्ग ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था। हम ने शिक्षा वेदाङ्ग में पर्याप्त अध्ययन करके भारतवर्ष के ५००० वर्ष के संस्कृत वाङ्मय के इतिहास में शिक्षाशास्त्र के अद्वितीय ग्रन्थ के रूप में **कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा**-नामक सर्वाङ्ग-पूर्ण ग्रन्थ निष्पन्न किया गया है और डिमाइ साइज का लगभग ९०० पृष्ठ का ग्रन्थ संस्कृत में प्रकाशित किया गया है (स्वाद्ध्यायशाला,काठमाण्डु,२०४९वै.)। इस विशालकाय ग्रन्थ के परिशिष्ट में आज तक अमुद्रित कुछ शिक्षाग्रन्थ भी इदम्-प्रथमतया मुद्रितप्रकाशित किए गए हैं। **पाणिनीयशिक्षा** की वेदाङ्गशिक्षा-विमर्शाख्य संस्कृत तथा हिन्दी व्याख्या भी प्रकाशित की गई है (चौखम्बा विद्या-भवन, १९९८,२००४,२००८क्रै.)। देश्य भाषा के प्रभाव से संस्कृत के दीर्घ अवर्ण, अन्य दीर्घ स्वरवर्ण, ऋकार, लृकार, एकार, ओकार, अनुस्वार, विसर्ग, ञकार, वकार इत्यादि वर्ण तथा क्ष, ज्ञ इन संयुक्ताक्षरों के परिचय तथा उच्चारणप्रक्रिया का ज्ञान और अभ्यास संस्कृताध्येताओं के लिए दुर्लभ हो गया है, जिनका शुद्ध उच्चारण अत्यावश्यक है। अत एव इस विषय में प्रातिशाख्यादि ग्रन्थों का पर्याप्त अनुसन्धान कर उक्त ग्रन्थों में विशेष प्रकाश डाला गया है। वेदशाखाविशेष का उच्चारण उस शाखा के प्रातिशाख्य और शिक्षाग्रन्थों के अनुसार होना आवश्यक होता है। कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा में विविध वेदशाखाविशेषों में पाए जानेवाले यम-वर्ण, नासिक्यवर्ण, अन्य विद्वानों से अचर्चित किड्किडाकारवर्ण इत्यादि के साथ विविध शाखाओं की उच्चारणगत विशेषताओं पर भी प्रातिशाख्यादि शिक्षाग्रन्थों के प्रमाणों को रखकर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अन्य अनुसन्धाताओं की त्रुटियों का भी सप्रमाण निर्देश किया गया है। **नारदीयशिक्षा** की विशिष्ट व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है और चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित करवाई गई है (२००२क्रै.)। नेपाली भाषा में भी **नेपाली वर्णोच्चारणशिक्षा** नाम का ग्रन्थ रचा गया है और साझाप्रकाशन से प्रकाशित भी करवाया गया है (२०३१वै.)।

वेदाङ्ग कल्पशास्त्र में भी गम्भीर अनुसन्धान किया गया है और भारत-वर्ष के उत्तरभाग में रहनेवाले अधिकांश ब्राह्मणों की स्ववेदशाखारूप माध्य-न्दिनीयवाजसनेयिशुक्लयजुर्वेदशाखा की नित्यसदाचारपद्धति-संस्कारपद्धति-श्राद्धपद्धतियों में स्वशाखासूत्र की प्रतिकूल बातें पाकर उनको शुद्ध करने के लिए मार्गप्रदर्शनार्थ **माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायिनां निरग्निकानां द्विजानां नित्यसदाचारकर्म-संस्कारकर्म-श्राद्धकर्मादि-वैदिकमन्त्र-सङ्ग्रहः** नाम का विशिष्ट भूमिका से, विविध टिप्पणियों से और पौराणकर्ममन्त्र-

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सङ्ग्रहात्मक परिशिष्ट से युक्त ग्रन्थ भी बनाया गया है और प्रकाशित भी किया गया है (२०५२ वै.)। इस ग्रन्थ में स्वशाखा-वेद-सूत्रानुसार ही धार्मिक कर्म की कर्तव्यता पर विशेष विवेचन भी किया गया है। प्रचलित सन्ध्योपासनपद्धतियों की अस्तव्यस्तता को देखकर **माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायिनां द्विजानां कात्यायन-त्रिकण्डिक-स्नानसूत्रोक्ता सन्ध्योपासनपद्धतिः** नाम का ग्रन्थ भी विस्तृत विवेचनात्मक प्रस्ताविका के साथ रचा गया है और चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित करवाया गया है (२००० क्रै.)। धर्म का मूल वेद और वेद के ज्ञान का और संरक्षण का मूल ब्रह्मयज्ञ है। किन्तु वर्तमान काल में ब्राह्मणों में भी ब्रह्मयज्ञ के विषय में चेतना की न्यूनता देखी जाती है। अतः हम ने विवेचनात्मक विस्तृत प्रस्ताविका के साथ में **ब्रह्मयज्ञपद्धति** नाम का ग्रन्थ भी बनाया है और चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित भी करवाया है (२००४ क्रै.)। वैदिक यज्ञ के विषय में भी स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब में विस्तृत अध्ययन-मनन हुआ है। वैदिक सनातन वर्णश्रमधर्म का साङ्गोपाङ्ग विस्तृत परिचय देने के लिए नेपाली भाषा में **वैदिक धर्म मूल रूपमा** नाम के ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण भी प्रकाशित हुआ है (२०६२ वै.)। इस में हम ने चार वेद, छः वेदाङ्ग, छपन्न स्मृतियाँ, अठारह महापुराण इत्यादि शास्त्रों का और अन्य धर्मग्रन्थों का विवेचनात्मक सार देने का प्रयास किया है और उन ग्रन्थों से शतशः वचन उद्धृत करके सप्रमाण विषय-विवेचन किया है। इस ग्रन्थ को संस्कृत में और हिन्दी में भी प्रस्तुत करने की योजना है। वैदिक कर्मकाण्ड में स्वशाखासूत्र की व्यवस्था में ध्यान आकृष्ट करने के लिए और गरुडपुराण (प्रेतकल्प) के विषय में लोक में व्याप्त भ्रम को हटाने के लिए भी विस्तृत भूमिका के साथ हिन्दी अनुवाद भी देकर ४९ अध्यायोंवाला मूल **गरुडपुराण–प्रेतकल्प** ग्रन्थ भी स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब से प्रस्तुत हुआ है और चौखम्बा विद्याभवन ने इसको प्रकाशित किया है (२००४ क्रै.)।

वेदाङ्ग व्याकरणशास्त्र में भी स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब में गम्भीर अध्ययन-मनन हुआ है। भारतवर्ष के महान् भाषाविज्ञ यास्क-पाणिनि-कात्यायन-पतञ्जलि-वररुचि-भर्तृहरिप्रभृति के हजारों वर्षों के भाषाव्याकरणचिन्तन से परिष्कृत व्याकरणदर्शन का तिरस्कार करके बनाए गए नेपाली भाषा के व्याकरण की (हिन्दी भाषा के व्याकरण की भी लगभग ऐसी ही अवस्था है) समीक्षा करके **जिम्दो नेपालि भासा** (प्रथम खण्ड २०३० वै., द्वितीय खण्ड २०३७ वै.) नाम का ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है। पाणिनीय व्याकरण का अत्यावश्यक वार्तिक, इष्टि, गणपाठ और अन्य व्याकरण के आवश्यक विषय भी समाविष्ट करके अष्टाध्यायी का अभ्यास करने योग्य पाठ का वर्षों के परिश्रम से सम्पादन किया गया है। इसका वेदपरक विशिष्ट व्याख्या करने की योजना है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेदाङ्ग निरुक्तशास्त्रअन्तर्गत निरुक्त-निघण्टुस्थानीय **वेदभाषानिघण्टु** की अमरकोश की शैली में रचना की जा रही है। उसमें लगभग ३,००० श्लोक बनाए जा चुके हैं, ग्रन्थ को पूर्ण बनाने का काम चल रहा है। उसके निदर्शन के रूप में भूलोककाण्ड के देववर्ग और ब्रह्मवर्ग का स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब ने प्रकाशित किया है (२०५० वै.)। इस भाग में भूलोकान्तर्गत माने गए देवता, गोत्र, प्रवर, आश्रमधर्म, वैदिक संस्कार, दर्शपूर्णमास-चातुर्मास्य-पशुबन्ध-सोमयागादि वैदिक यज्ञ इत्यादि से सम्बद्ध पदपदार्थों का अनुष्टुपछन्द के श्लोकों में सङ्कलन किया गया है।

वेदाङ्ग छन्दश्शास्त्र का भी स्वाद्ध्यायाशालाकुटुम्ब में गम्भीर अध्ययन हुआ है। वर्तमान काल में पण्डितों में भी छन्द और वृत्त के भेद में भी ध्यान नहीं दिए जाने से जो अशास्त्रीय व्यवहार हो रहा है, पण्डित लोग भी इन्द्रवज्रा छन्द इत्यादि कह देते हैं, जब कि शास्त्रीय रूप में त्रिष्टुप् छन्द में इन्द्रवज्रा वृत्त इत्यादि कहना चाहिए, उसके संशोधन के लिए नेपाली भाषा में **वृत्तनक्षत्रमाला** नाम का ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है (२०२८ वै.)।

वेदाङ्ग ज्योतिष में भी स्वाद्ध्यायशाला में गम्भीर अध्ययन-मनन हुआ है। वेदाङ्ग ज्योतिषशास्त्र का आजकल उपलब्ध लगभग ३४०० वर्ष पुराना मूल ग्रन्थ लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्ग ज्योतिष है। इस की वर्षगणना तपश्शुक्लप्रतिपदा से अर्थात् वैदिक माघशुक्लप्रतिपदा से प्रारम्भ होती है। वैदिक आर्तव माघशुक्ल-प्रतिपदा अर्वाचीन ब्रह्मगुप्तादिप्रचारित राशिमूलक मासपरिभाषा की माघशुक्ल-प्रतिपदा नहीं है। वैदिक वर्ष सौरचान्द्र है, अयन भी सौरचान्द्र है, ऋतु भी सौर-चान्द्र है। वैदिक अधिकमास केवल अयनान्त में ही होता है, जिस किसी मास में नहीं। इस विषय में वाराणसी के सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालय की सारस्वती सुषमा पत्रिका में **"वेदाङ्गज्योतिषं युगवर्षायनर्तुमासाधिमासादिगणना च"** इस नाम का (५० वर्ष, ३-४ अङ्क, २०५२ वै.) और **"जैमिनीयधर्ममीमांसानिर्णीतानां वैदिककृत्यकालानां चान्द्रमाननियतत्वम्"** नाम का लेख (५१ वर्ष, १-४ अङ्क, २०५३ वै.) तथा वाराणसी की ही सन्मार्ग पत्रिका में (१९९८ अप्रैल २,३) भी **"लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष और नववर्षारम्भ"** नाम का लेख भी हम ने प्रकाशित करवाया था। अब तो स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब का **"यजुर्वेदिनां परम्परयाऽऽगतं विस्तृतसंस्कृतभूमिकया सोमाकरभाष्येण कौण्डिन्न्यायनव्याख्यानेन च सहितं लगधमुनिप्रोक्तं वेदाङ्गज्योतिषं** सक्षिप्तहिन्दीभूमिका-हिन्द्यनुवादादियुतं विविध-**परिशिष्टभूषितं च"** नाम का ग्रन्थ भी चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित हो चुका है (२००५ क्रै.)। वर्तमान काल में प्रचलित सिद्धान्तज्योतिषग्रन्थों के और इस वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ के सिद्धान्तों में बडा अन्तर है। इसमें ध्यान देना चाहिए और प्रचलित पञ्चाङ्गपत्रों में सिद्धान्तपक्ष के विषयों के साथ में वेदाङ्गपक्ष का वर्ष,

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अयन, ऋतु, मास पक्ष और तिथ्यादि का भी समावेश कर इस महान् ग्रन्थ के मूल वैदिक सिद्धान्त के पुनरुज्जीवन में सहायता करना भारतवर्षीय पञ्चाङ्गकारों का कर्तव्य है। नेपाल में विगत एक दशक से भी अधिक समय से इस विषय में समाचारपत्रों और अनुसन्धानपत्रों में अनेक निबन्धों को प्रकाशित करके इस विषय में प्रकाश डालने का और सम्बद्ध पक्ष के ध्यानाकर्षण क़रने का काम हम लोग करते आ रहे हैं। पञ्चाङ्ग सुधार समिति के सदस्य-सचिव एवं प्रसिद्ध ज्योतिषी निर्मलचन्द्र लाहिडी ने प्रचलित पञ्चाङ्ग के अवैदिक राशिमूलक अर्वाचीन मासपरिभाषानुसारी माघशुक्लप्रतिपदा को ही वेदाङ्गज्योतिषोक्त तपःशुक्लप्रतिपदा अथवा माघशुक्लप्रतिपदा मानकर उसी दिन में वेदाङ्गपक्ष से वर्षारम्भ होने की बात अपने एफेमरिज में उल्लेख करने की परम्परा चलाई है। किन्तु वेदाङ्गज्योतिषानुसार तो उससे कभी एक मास पूर्व और कभी दो मास पूर्व ही माघशुक्लप्रतिपदा अर्थात् तपःशुक्लप्रतिपदा पडती है और उसी दिन से वेदाङ्गपक्षीय नववर्ष का आरम्भ होता है। इस प्रकार हम ने वेदाङ्गज्योतिष की कालगणनापद्धति को विवेचनात्मक रूप में अच्छी तरह स्पष्ट किया है।

वाराणसीस्थ सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय की अनुसन्धानपत्रिका सारस्वती सुषमा में (५० व. ३-४ अ., २०५२ वै.) हमारा **"वेदाङ्गज्योतिषं युगवर्षाऽयनर्तुमासाधिमासादिगणना च"** नाम का निबन्ध प्रकाशित होने पर वेदाङ्गज्योतिष के विषय में कतिपय प्रकाशकों में और कतिपय अध्येताओं में कुछ जागरण आया हुआ प्रतीत होता है, वेदाङ्गज्योतिष के कुछ संस्करण अभीअभी पुनर्मुद्रित और मुद्रित भी हुए हैं, किन्तु उनके अध्ययन में और वेदाङ्गज्योतिष ग्रन्थ की व्याख्या में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं दिखाई देती है। वेदाङ्गज्योतिष की हमारी व्याख्या वैसी नहीं है। हमारी व्याख्या ने लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष ग्रन्थ को उसके पद के और वाक्य के निर्देशों को ही लेकर बिलकूल नए आधार में खडा कर दिया है, और उसको सभी काल के लिए आधारभूत रूप में प्रयोज्य बना दिया है।

वैदिक ब्रह्मविचार को मूल वैदिक प्रमाणों के आधार पर ही मूल-वैदिक रूप में ही प्रस्तुत करने के लिए **ब्रह्ममीमांसासूत्रवृत्ति** भी प्रस्तुत की गई है। भूमिका में दर्शनशास्त्रपरिचय, भारतवर्षीय प्रमुख दर्शनों का विवरण, ब्रह्ममीमांसाग्रन्थ-परिचय, ब्रह्ममीमांसासूत्रग्रन्थाऽध्ययनाधिकारिनिरूपण तथा वेदान्तशास्त्र के ५८ ग्रन्थकारों का परिचय भी समाविष्ट हैं। इस में सूत्रार्थ, अधिकरणरचना, कारिकाओं में अधिकरण का सार, हिन्दी सूत्रार्थ और सूत्रपदानुक्रम भी दिया गया है। इस ग्रन्थ को भी चौखम्बा विद्याभवन ने ही प्रकाशित किया है (२००२ क्रै.)।

वैदिक परम्परा की धर्मनीति, अर्थनीति, राजनीति, समाजनीति, कामनीति, मोक्षनीति इत्यादि सभी पक्षों का प्रतिपादन करनेवाली **मनुस्मृति** अत्यन्त महत्त्वपूर्ण

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रन्थ है। उसकी बहुप्रचारित व्याख्या कुल्लूकभट्ट की मन्वर्थमुक्तावली है। किन्तु उसके अनेक संस्करण छपने पर भी उसका अच्छी तरह सम्पादन नहीं हुआ था। उसमें पदगत और वाक्यगत अनेक अशुद्धियाँ भी थीं। उसमें उद्धृत वचनों का ठीक-ठीक स्थलनिर्देशन भी नहीं थे। इस न्यूनता की पूर्ति करके हमने मनुस्मृति का कुल्लूकभट्टकृत व्याख्या का अनुकूल **हिन्दी अनुवाद और विशेष स्पष्टीकरण** भी साथ में रखकर कुल्लूकभट्टकृत व्याख्या मन्वर्थमुक्तावली का परिमार्जन और सम्पादन किया है। कुछ विशेष हिन्दी स्पष्टीकरणों में ब्राह्मण, ब्राह्मण-क्षत्रियसमन्वय, शूद्र, महिला इत्यादि के विषय में आधुनिक आलोचकों से की गई मनुस्मृति की कुछ प्रमुख आलोचनाओं की समीक्षा की गई है और मनुस्मृति को सार्वकालिक शाश्वत प्रकृतिसम्मत धर्म का प्रतिपादन करनेवाला ग्रन्थ बताया गया है। इस प्रकार हमने इस कार्य से वैदिक सनातन वर्णाश्रम धर्म की रक्षा में योगदान देने का प्रयास किया है। यह ग्रन्थ भी चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित है (२००७ क्रै.)।

संस्कृतभाषाशिक्षण के लिए **व्यावहारिकं संस्कृतम्** नाम की पाठ्यपुस्तक-मालाअन्तर्गत तीन पुस्तक (प्रथम पुस्तक २०५० वै., द्वितीय पुस्तक २०५३ वै., तृतीय पुस्तक २०५८) स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब ने प्रकाशित किया है। इन सचित्र पाठ्यपुस्तकों में स्वाभाविकता का अनुपालन करके सरल ढङ्ग से भाषाशिक्षण की वैज्ञानिक विधिअनुरूप क्रमबद्ध रूप में संस्कृतभाषाशिक्षणार्थ विषयवस्तु प्रस्तुत किए गए हैं। इस में संस्कृत भाषा के उच्चारण में शुद्धता लाने के लिए भी सोदाहरण मार्गनिर्देश किया गया है।

माध्यन्दिनीयशाखा की शुक्लयजुर्वेदसंहिता का परिशुद्ध संस्करण उपलब्ध कराने की भी योजना है।

उक्त प्रकार की दृष्टि से उक्त प्रकार से स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब वैदिक वाङ्मय के अध्ययन-अनुशीलन में निरन्तर संलग्न हो रहा है। इस प्रकार के कार्य में भारतवर्ष के आत्मगौरवानुभूति करनेवाले सभी सज्जन सहयोग पहुँचाएंगे ऐसी आकाङ्क्षा है। इसी प्रसङ्ग में यह ग्रन्थ इस रूप में प्रस्तुत हुआ है। विद्वज्जन इसकार्य का पर्यालोचन करें।

—शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन
स्वाद्ध्यायशाला,
१६८, शिवभक्तमार्ग (नीलसरस्वतीमार्गसंलग्न),
काठमाण्डु, नेपाल,
email : **svadhyaya@hotmail.com**

कलियुगसंवत् ५०७२,
वैदिक ऊर्जशुक्लसप्तमी,
(२०६४।६।१ वै.=२००७।९।१८ क्रै.)

सम्पर्कसूत्र (ह्वाट्सयाप एवं इमेल)
+977 9849091467, amoda67@hotmail.com

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष के ज्वलन्त प्रश्न और वेदाङ्गज्योतिष

वेद और ज्योतिष

भारतवर्ष में सम्पूर्ण विद्याओं का मूल वेद माना जाता है। वेद में विद्याओं के बीज अन्तर्निहित हैं। उन बीजों को ही लेकर मुनियों ने विभिन्न विद्याओं का प्रणयन और विकास किया है। उन विद्याओं में भी वेद की अत्यन्त निकट विद्याएँ छः हैं। उनको वेदाङ्ग कहते हैं। वे हैं शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दश्शास्त्र और ज्योतिष। इन वेदाङ्ग विद्याओं का मुनियों ने वेदों से ही उद्धार किया है। उनमें **शिक्षा** में वेद के वर्णों का, उदात्त-अनुदात्तादि स्वरों का, ह्रस्व-दीर्घादि मात्राओं का, वर्णों के उच्चारण के स्थानों का और करणों का, उच्चारण-माधुर्यादि गुणरूप साम का और पदान्तस्थ और पदादिस्थ वर्णों के विविध प्रकार के सन्धियों का प्रतिपादन होता है। **कल्प** में श्रौतयज्ञों का और विवाहादि संस्कारों का तथा अन्य गृह्यकर्मों का विधिविधान प्रतिपादित होता है। **व्याकरण** में पदों के प्रकृति-प्रत्ययों का और वाक्य में कर्तृ-कर्मादि का अन्वाख्यान से शब्द-शब्दार्थ का सम्बन्ध प्रदर्शित किया जाता है। **निरुक्त** में दुरूह पदों का और वेद में प्राप्त देवतावाचक पदों के अर्थों का निरूपण किया जाता है और **छन्द** में अथवा छन्दश्शास्त्र में वेद में प्राप्त गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप् इत्यादि छन्दों का निरूपण रहता है। **ज्योतिष** में श्रौत और गृह्य कर्मों में अपेक्षित काल का निरूपण होता है। ज्योतियों की अर्थात् ज्योतीरूप सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रों की गति-स्थितियों के आधार में काल का निरूपण करनेवाला शास्त्र होने से इसको ज्योतिष कहा गया है।

वेदाङ्गशास्त्रों का वेद से ही उद्धार

उक्त सभी वेदाङ्ग शास्त्र वेद में प्राप्त तथ्यों को ही सङ्गृहीत तथा पल्लवित और विकसित करके मुनियों से विरचित माने जाते हैं।

इस बात को ऋग्वेद-प्रातिशाख्य के वर्गद्वय-वृत्ति में विष्णुमित्र ने स्पष्ट शब्द में रक्खा है[1]।

---

१. यस्मात् केवलैर् वेदवाक्यैर् न शक्यतेऽनुष्ठातुं विक्षिप्तत्वाद् वेदवाक्यानां गूढार्थत्वाच् च, अतः कविभिराद्यैर् वेदार्थकुशलैर् वेदार्थेभ्यो निष्कृष्य कर्मार्थं सुबोधानीमानि विद्या-

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऐसी ही बात पाणिनीयशिक्षा की शिक्षाप्रकाश नाम की प्राचीन व्याख्या में भी कही गई है[१]।

इस विषय को वैक्रमाब्द की सप्तम शताब्दी के (कलियुगाब्दों की सैंतीसवीं शताब्दी के) माने गए वैदिक धर्ममीमांसकशिरोमणि कुमारिलभट्ट ने भी तन्त्रवार्तिक में सूचित किया है[२]।

मुख्य रूप में ज्योतिष का वेदाङ्गत्व और उसका वैदिक ब्राह्मणों से पठनीयत्व प्रतिपादित करते हुए वैक्रमाब्दों की तेरहवीं शताब्दी के (कलियुगाब्दों की तैंतालीसवीं शताब्दी के) ज्योतिषी सिद्धान्तशिरोमणिकार भास्कर ने भी वेदाङ्ग ज्योतिष पढने का माहात्म्य बताया है[३]।

इसी प्रकार वैक्रमाब्दों की चौदहवीं शताब्दी के (कलियुगाब्दों की चौवालीसवीं शताब्दी के) जगन्मोहन नामक ग्रन्थ के रचयिता तथा शासक प्रतापरुद्र के आश्रित लक्ष्मणाचार्य ने भी ज्योतिष का वेदाङ्गत्व बताते हुए जगन्मोहनग्रन्थ के प्रारम्भ में ही ज्योतिष का महत्त्व दिखाया है[४]।

स्थानानि प्रवर्तितानि शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषं धर्मशास्त्रं पुराणं न्यायविस्तरो मीमांसादीनि।—१।४ (ऋग्वेदप्रातिशाख्यम्, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, १९७० क्रै., पृ.२४)।

१. वैदिकधर्मानुष्ठानात् पुरुषो निश्श्रेयसार्थफलवान् इत्येष सिद्धान्तः। अतिगूढार्थस्य वेदस्याऽज्ञानान् नाऽनुष्ठातुं शक्यो वेदमार्गः। अतः साक्षात्कृतधर्मभिर् वेदार्थेभ्यो निष्कृष्य अर्थार्थिसुखबोधाय विद्यास्थानानि प्रवर्तितानि।—श्लो. १ (शिक्षासङ्ग्रहः, सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी, २०४६ वै., पृ. ३२३)।

२. वेदे व्याकरणादीनि सन्त्येवाऽऽभ्यन्तराणि नः।
भवेद् वा तदभिप्राया षडङ्गाऽध्ययनस्मृतिः ॥—१।३।२४ (आनन्दाश्रमसंस्करण, पृ.१९८)।

३. वेदास् तावद् यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास् ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद् वेदाङ्गत्वं ज्यौतिषस्योक्तमस्मात्॥
शब्दशास्त्रं मुखं ज्यौतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ।
या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर् बुधैः॥
वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं मुख्यता चाऽङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश् चक्षुषाऽङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः॥
तस्माद् द्विजैरध्ययनीयमेतत् पुण्यं रहस्यं परमं च तत्त्वम्।
यो ज्यौतिषं वेत्ति नरः स सम्यग् धर्मार्थकामाल्ँ लभते यशश् च॥—सि.शि. १।१।९–१२।

४. दृष्ट्वाऽऽद्यशास्त्रं मुनिसम्प्रणीतं वेदाङ्गमग्र्यं च महासमासम्।
कुर्याद् ग्रहज्ञाऽऽभरणार्थमेतां मुक्तावलीं निर्मलवृत्तचित्राम्॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संवत् १६६० में (४६६८ कलियुगाब्द में) मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूषधारा व्याख्या रचनेवाले गोविन्द दैवज्ञ ने भी ज्योतिष की वेदाङ्गता का स्पष्टीकरण पीयूषधारा के प्रारम्भ में ही विशद रूप में किया है[1]।

उक्त विवरणों से ज्योतिष में वेद में अन्तर्निहित और वेद से और वैदिक यज्ञों से तथा संस्कारादिगृह्यकर्मों से अपेक्षित विषयों का प्रतिपादन ही मुख्य रूप में आवश्यक माने जाने की बात स्पष्ट होती है।

वेद-वेदाङ्ग के इस प्रकार के सम्बन्ध की दृष्टि से विचार करने पर वर्तमान काल में उपलभ्यमान ज्योतिष ग्रन्थों में लगधमुनिप्रोक्त **"पञ्चसंवत्सरमयम्"** इत्यादि वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ ही पूर्णतया वेद का अनुगामी और वेद-कल्पों में आकाङ्क्षित विषयों का प्रतिपादक ग्रन्थ होने से और वैदिकों के स्वाद्ध्यायाध्ययनपरम्परा से आया हुआ ग्रन्थ होने से मूल रूप में वेदाङ्गरूप ज्योतिषग्रन्थ माना जाता है, अन्य ज्योतिषग्रन्थ इसके अनुकूल और अविरोधी होने पर ही वेदाङ्ग के अन्तर्गत ज्योतिषग्रन्थ माने जा सकते हैं, इसके प्रतिकूल और विरोधी होने पर कथमपि वेदाङ्गज्योतिष के अन्तर्गत नहीं माने जा सकते हैं, यह बात स्पष्ट होती है।

लगधमुनिप्रोक्त **"पञ्चसंवत्सरमयम्"** इत्यादि वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ के आधारभूत विषय वेदमन्त्रसंहिताओं में, ब्राह्मणग्रन्थों में, विशेषतः मैत्रायणीयारण्यक में और श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्रग्रन्थों में तथा विशेषतः बौधायनश्रौतसूत्र में प्राप्त हैं। मार्कण्डेयस्मृति में भी इस ग्रन्थ के विषय का उल्लेख है। लौगाक्षिस्मृति में भी इस ग्रन्थ का उल्लेख है। पुराणों में ब्रह्मवैवर्तपुराण में, ब्रह्माण्डपुराण में, भविष्यपुराण में, भागवतपुराण में, देवीभागवतपुराण में, मत्स्यपुराण में, लिङ्गपुराण में, वायुपुराण में, विष्णुपुराण में और शिवपुराण में तथा विशेषतः ब्रह्माण्डपुराण में, लिङ्गपुराण में और वायुपुराण में भी ये विषय प्राप्त हैं। साथ ही महाभारत में,

---

वेदास् तावद् यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास् ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद् वेदाङ्गत्वं ज्यौतिषस्योक्तमस्मात्॥
क्रतुक्रियार्थं श्रुतयः प्रवृत्ताः कालाश्रयास् ते क्रतवो निरुक्ताः।
शास्त्रादमुष्मात् किल कालबोधो वेदाङ्गताऽमुष्य ततः प्रसिद्धा॥—जगन्मोहन १।९–११।

१. ननु कथं ज्योतिषं श्रौत-स्मार्तकर्मौपयिकमिति चेदुच्यते— "अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत तमध्यापयीत" तथा "वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत" "दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत". इत्यादिश्रुतयः सन्ति। तत्र वर्षज्ञानमादित्यादि-ग्रहचारपरिच्छेदसाध्यम्, तस्य वसन्ताद्यृतूनां च दर्शपौर्णमासयोश्च ज्ञानं ज्योतिषं विना सर्वथैव न निर्वहतीत्यवश्यमध्येतव्यं ज्योतिःशास्त्रम्।–१।२।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाणिनीयव्याकरण की अष्टाध्यायी में, कौटलीय अर्थशास्त्र में, पाणिनीयव्याकरण के भाष्य में, आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थ चरकसंहिता में, सुश्रुतसंहिता में, सूर्यप्रज्ञप्ति में, पञ्चसिद्धान्तिका में, बृहत्संहिता में, भट्टोत्पलकृत बृहत्संहिताव्याख्या में जीमूतवाहनकृत कालविवेक में, उव्वटकृत माध्यन्दिनीयवाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-मन्त्रार्षसंहिता की व्याख्या में, हरदत्तकृत काशिकाव्याख्या पदमञ्जरी में, भट-प्रकाशिका नाम की आर्यभटीयव्याख्या में, कालमाधव में, सायणकृत ऋग्वेद-भाष्यभूमिका में, विष्णुचित्तकृत विष्णुपुराणव्याख्या में, महीधरकृत माध्यन्दिनीय-वाजसनेयिशुक्लयजुर्वेदमन्त्रार्षसंहिता-व्याख्या में, महूर्तचिन्तामणिव्याख्या प्रमिता-क्षरा में और पीयूषधारा में, वीरमित्रोदय में, संस्कारकौस्तुभ में, याज्ञवल्क्यस्मृति-मिताक्षराबालम्भट्टी में, संस्काररत्नमाला में, पुरुषार्थचिन्तामणि में, संस्कार-भास्कर में, धर्मसिन्धु में, अण्णाशास्त्रिकृत कर्मकाण्डप्रदीप में भी **"पञ्चसंवत्सर-मयम्"** इत्यादि वेदाङ्गज्योतिष के कतिपय विषय प्राप्त होते हैं। इस तथ्य से भी इस ग्रन्थ का परम्पराप्राप्तत्व स्पष्ट होता है। वैदिकों से इस ग्रन्थ का वेदाङ्गत्व परिपालित है ही। लगधमुनि का नाम तेरहवीं शताब्दी में लिखी गई आर्यभटीय-व्याख्या भटप्राकाशिका में, विष्णुपुराण की ४४०० कलिवर्ष में लिखी गई विष्णु-चित्ती व्याख्या में, सत्रहवीं शताब्दी में लिखे गए वीरमित्रोदय में और अन्य ग्रन्थों में भी विद्वानों ने उल्लिखित किया है। इस विषय में **"वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ की उपेक्षा क्यों?"** इस प्रश्न के विचार में आगे अधिक प्रकाश डाला जाएगा (पृ.१०९-१२०)। वेद, स्मृति, पुराण इत्यादि ग्रन्थ के अतिरिक्त वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भट्टोत्पल इत्यादि के ग्रन्थों में भी वेदाङ्गज्योतिष के विषयों के अथवा वेदाङ्ग-ज्योतिषग्रन्थ के उल्लेख पाए जाने की बात भी वहीं स्पष्ट की जाएगी (पृ. ११७-१२०)।

उक्त स्थिति में वर्तमान काल में बहुप्रचारित ज्योतिषग्रन्थों के और उनमें प्रतिपादित कालगणना-सिद्धान्त के विषय में अनेक ज्वलन्त प्रश्न खडे होते हैं। उनके विषय में अब क्रमशः विचार प्रस्तुत किया जाता है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का पहला ज्वलन्त प्रश्न

प्रचलित ज्योतिषग्रन्थों में वैदिक पञ्चवर्षात्मक युग की उपेक्षा क्यों?

वेद में पञ्चसंवत्सरात्मक (संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर और वत्सर इन पाँच वर्षों से बननेवाले[1]) युग का प्रयोग है। अग्निचयन से युक्त सोमयाग में पाँच आहवनीयधिष्ण्यचितियों का चयन होने पर विधान के अनुसार गार्हपत्य अग्नि से अग्नि को ले जाकर आहवनीयचिति में यथास्थान रखकर विधानानुसार कर्म करके **"संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि"** इत्यादि मन्त्र से उपस्थान करने का विधान है। इस मन्त्र का पाठ माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-संहिता में (२७।४५), काठक-कृष्णयजुर्वेद-संहिता में (४०।६), मैत्रायणीय-कृष्णयजुर्वेद-संहिता में (४।९।१८) और तैत्तिरीय-ब्राह्मण में (३।१०।४।१) भी मिलता है। इस मन्त्र का श्रौत यज्ञ में प्रयोग माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-शतपथ-ब्राह्मण (८।१।४।७–१०) में विहित है। इसका विधान कात्यायन-श्रौतसूत्र में[2] भी बताया गया है। बौधायन-श्रौतसूत्र में (१९।४), हिरण्यकेशिश्रौतसूत्र में [सत्याषाढश्रौतसूत्र में] (२३।२।३४) और आपस्तम्बश्रौतसूत्र में (१९।१२।२३) भी **"धेनूः कृत्वा यजमानः संहारविहाराभ्यामुपतिष्ठते संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीति"** इस प्रकार के वचन से उक्त विधान बताया गया है। इस श्रौत कर्म के रहस्य को जानने के लिए पञ्चसंवत्सरात्मक युग का ज्ञान आवश्यक होता है। इस लिए कोलकात्ता नगर में मनसुख राय मोर से २०१३ संवत् में मुद्रापित स्मृतिसन्दर्भ के षष्ठ भाग में समाविष्ट लौगाक्षिस्मृति में पञ्चसंवत्सरात्मक युग की चराचरजगद्रूपता बताई गई है[3]। इस लिए लगधमुनि से विरचित **"पञ्चसंवत्सरमयम्"** इत्यादि वेदाङ्ग-ज्योतिष-ग्रन्थ में पञ्चसंवत्सरात्मक युग का प्रतिपादन किया गया है।

---

१. इन पाँच संवत्सरों के नाम में से किसीकिसी नाम में पाठभेद भी उपलब्ध होते हैं। जैसे– इदावत्सर–इडावत्सर, इद्वत्सर–इदुवत्सर, वत्सर–उद्वत्सर इत्यादि।

२. **अभिमृशेदिच्छन् संवत्सरोऽसीति, एवं यथाचिति।–१८।४।१४–१५।**

३. **पञ्चसंवत्सरमयं जगदेतच् चराचरम्।**
ते पञ्च वत्सराश् चाऽपि त इमे सम्प्रकीर्तिताः।–पृ.३७७।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस पञ्चसंवत्सरात्मक युग का अथवा इस के संवत्सरादि वर्षों का उल्लेख *काठककृष्णयजुर्वेदसंहिता* में "संवत्सराय परिवत्सराय" इत्यादि वाक्य में (१३।१५), "इयं स्वस्तिस् संवत्सरीया परिवत्सरीया" इत्यादि वाक्य में (१३।१५), "संवत्सरे सीद परिवत्सरे सीद" इत्यादि वाक्य में (३९।६) और "संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसि" इत्यादि वाक्य में (४०।६) भी मिलता है। *मैत्रायणीय-कृष्णयजुर्वेदसंहिता* में भी "संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसि" इत्यादि वाक्य में (४।९।१८) इनका उल्लेख मिलता है। *तैत्तिरीयकृष्णयजुर्वेदसंहिता* में भी "तस्मै ते रुद्र संवत्सरेण नमस्करोमि" इत्यादि वाक्य में (५।५।७।३–४), *माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-संहिता* में "संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसि" इत्यादि वाक्य में (२७।४५) और "संवत्सराय पर्यायिणीम् परिवत्सरायाऽविजाताम्" इत्यादि वाक्य में (३०।१५) भी मिलता है। *माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-शतपथब्राह्मण* में भी "संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसि" इत्यादि वाक्य मिलता है (८।१।४।८)। तैत्तिरीयब्राह्मण में भी "संवत्सराय पर्यारिणीम् परिवत्सरायाऽविजाताम्" इत्यादि वाक्य आता है (३।४।११।१)। "संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसि" इत्यादि वाक्य *तैत्तिरीय-ब्राह्मण* में (३।१०।४।१) और तैत्तिरीयारण्यक में (४।१९।१) भी मिलता है। *तैत्तिरीय-ब्राह्मण* में "अग्निर् वाव संवत्सर आदित्यः परिवत्सरः" इत्यादि वाक्य भी आता है (१।४।१०।१)। *ताण्डि-कौथुम-राणायनीय-सामवेद* के *पञ्चविंशब्राह्मण* में (१७।१३।१७) "अग्निः संवत्सरः सूर्यः परिवत्सरः" इत्यादि वाक्य मिलता है। "संवत्सरे सीद परिवत्सरे सीदेदावत्सरे सीदेदुवत्सरे सीदेद्वत्सरे सीद वत्सरे सीद" इत्यादि वाक्य सत्याषाढकृत *हिरण्यकेशिश्रौतसूत्र* में (११।८।४), *आपस्तम्बश्रौतसूत्र* में (१६।३१।१) और *वैखानसश्रौतसूत्र* में (१८।२०) भी आया है। *बौधायनश्रौतसूत्र* में भी संवत्सर परिवत्सर इत्यादि का उल्लेख प्राप्त है[1]। *वैखानसगृह्यसूत्र* में भी (२।१२) "संवत्सरेभ्यः परिवत्सरेभ्यः" इत्यादि वाक्य आया है। "संवत्सराय परिवत्सराय" इत्यादि वाक्य *पारस्करगृह्यसूत्र* में (३।२।२) और *जैमिनीयगृह्यसूत्र* में (२।३) भी पठित है।

केवल वेदों में और वेदाङ्गरूप महास्मृतियों में ही नहीं, किन्तु अनुस्मृतिरूप स्मृतियों में भी पञ्चसंवत्सरात्मक युग के संवत्सरादि वर्षों का अथवा पञ्चवत्सरात्मक युग का उल्लेख मिलता है। कोलकाता के मनसुखराय मोर से

---

१. तस्माद् वैश्वदेवेन यजमानः संवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्त इत्याशासीत, तस्माद् वरुणप्रघासैर् यजमानः परिवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्त इत्याशासीत तस्मात् साकमेधैर् यजमान इदावत्सरीणां स्वस्तिमाशास्त इत्याशासीत, तस्माच् छुनासीरीयेण यजमानोऽनुवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्त इत्याशासीत।—१४।२०।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुद्रापित स्मृतिसन्दर्भ के षष्ठ भाग में सङ्गृहीत **मार्कण्डेयस्मृति** में[१] संवत्सर में तिलका दान और परिवत्सर में यव का दान इत्यादि करने का विधान है। वहीं सङ्गृहीत **लौगाक्षिस्मृति** में भी **"पञ्चसंवत्सरमयं जगदेतच् चराचरम्"** इत्यादि वचन आया है (पृ.३७७)।

पुराणों में भी **ब्रह्मवैवर्तपुराण** में कृष्णजन्मखण्ड में[२], **ब्रह्माण्डपुराण** में पूर्वभाग में[३], **भविष्यपुराण** में ब्राह्मपर्व में[४], **भागवत** में (विष्णुभागवत में)[५] भी इन संवत्सरों का उल्लेख मिलता है। वहीं पञ्चमस्कन्ध में भी संवत्सर-परिवत्सरादि का उल्लेख है[६]। **देवीभागवत** में भी इन संवत्सरादि पाँच वत्सरों का उल्लेख प्राप्त होता है[७]।

---

१. संवत्सरे तिलान् दद्याद् यवाँस् तु परिवत्सरे।
इडापूर्वे च वस्त्राणि धान्यं चाऽप्यनुवत्सरे॥
इद्वत्सरे तु रजतं क्रमाद् देयानि शक्तितः।—मार्कण्डेयस्मृति, स्मृतिसन्दर्भ–६, पृ.१३४।

२. संवत्सरः प्रवत्सर इलावत्सर एव च।
अनुवत्सरो वत्सरोऽयमिति कालविदो विदुः॥—ब्रह्मवैवर्तपु., कृष्णजन्म.९६।५७–५८।

३. संवत्सरादयः पञ्च चतुर्मानविकल्पिताः।
निश्चयः सर्वकालस्य युगमित्यभिधीयते।
संवत्सरस् तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः॥
इडावत्सरस् तृतीयस् तु चतुर्थश् चाऽनुवत्सरः।
पञ्चमो वत्सरस् तेषां कालस् तु युगसंहितः॥—ब्रह्माण्डपुराण, पूर्वभाग २१।१३०-१३२।

४. संवत्सरस् तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः।
इद्वत्सरस् तृतीयस् तु चतुर्थस् त्वनुवत्सरः॥
पञ्चमो वत्सरस् तेषामित्येवं पञ्च ते स्मृताः।
तेषु संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस् तु परिवत्सरः॥
सोम इद्वत्सरस् तेषां वायुश् चैवाऽनुवत्सरः।
रुद्रस् तु वत्सरो ज्ञेयः पञ्चैता युगदेवताः॥—भविष्यपुराण, ब्राह्मपर्व १२५।३३–३५।

५. संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सर एव च।
अनुवत्सरो वत्सरश् च विदुरैवं प्रभाष्यते॥
यः सृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन् स्वशक्त्या
पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः।
कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर् वितन्वंस्
तस्मै बलिं हरत वत्सरपञ्चकाय॥—भागवत ३।११।१४–१५।

६. संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमनुवत्सरं वत्सरमिति भानोर् मान्द्यशैघ्र्यसमगतिभिः समामनन्ति।—भागवत ५।२२।७।

७. संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमेव च।
अनुवत्सरमिद्वत्सरमिति पञ्चकमीरितम्॥—देवीभागवत ८।१६।१५–१६।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मत्स्यपुराण में भी **"तेषु संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस् तु परिवत्सरः"** इत्यादि वचन पाया जाता है (१४१।१७)। **लिङ्गपुराण** में[1] भी पञ्चवर्षत्मक युगका उल्लेख प्राप्त होता है। **देवीभागवत** में पाया जानेवाला उक्त श्लोक वायुपुराण में भी है (१।५३।११६)। **वायुपुराण** में पूर्वार्ध में **"संवत्सरस् तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः"** इत्यादि वचन (३१।२७) और **"संवत्सरादयः पञ्च चतुर्मानविकल्पिताः"** इत्यादि वचन (५०।१८२) भी मिलते हैं। **विष्णुपुराण** में भी (२।८।७१) यह वचन पाया जाता है। **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** में[2] पाँच संवत्सरों का और उनके ज्ञान का उपाय भी बताया गया है। **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** में संवत्सरादि वर्षो में राजा की विजययात्रा की दिशाएँ (२।१७५।१०-१२) संवत्सरादि वर्षों में देवीपूजा के फलविशेष (३।९६।११-१३), हयशीर्षादि विष्णु के अवतारों की पूजा का विधान (३।१२०।२), संवत्सरादि वर्षों में पञ्चमूर्ति-व्रतका विधान (१।१५३।२-९), संवत्सरादि वर्षों में तिलादि के दानों का महाफलत्व (३।३१७।२,३) भी प्रतिपादित हैं। स्कन्दपुराण के माहेश्वरखण्ड में **"चतुर्भेदं मासमाहुः पञ्चभेदं च वत्सरम्"** इत्यादि वचन (२।३९।५१) और आवन्त्यखण्ड में पाँच संवत्सरों का उल्लेख[3] मिलता है।

महाभारत में भी विविध प्रसङ्गों में उक्त पाँच वत्सरों का उल्लेख प्राप्त होता है[4]।

मौर्यकाल के (कलियुगाब्द की छब्बीसवीं शताब्दी के) ग्रन्थ कौटलीय अर्थशास्त्र में भी पाँच संवत्सरों का युग **"पञ्चसंवत्सरो युगम्"** इस वाक्य से बताया (२।२०) गया है।

---

१. श्रवणान्तं धनिष्ठादि युगं स्यात् पञ्चवार्षिकम्।
भानोर् गतिविशेषेण चक्रवत् परिवर्तते॥—लिङ्गपुराण १।६१।५५-५६।

२. क्रमेण परिवर्तन्ते पञ्च यादव वत्सराः।
तेषामधिपतीन् वक्ष्ये नामानि च फलानि च॥
पञ्चभक्ते तु यच् छेषं तिष्ठेदब्दगणे गते।
संवत्सराद्यः स ज्ञेयो नित्यं संवत्सरो बुधैः॥ इत्यादि विष्णुधर्मोत्तरपुराण १।८२।५२,५३।

३. संवत्सरोऽयं परिवत्सरश् च उद्वत्सरो वत्सर एष देवः।
दृष्टोऽप्यदृष्टः प्रहुतः प्रकाशी स्थूलश् च सूक्ष्मः परमाणुरेषः॥—स्कन्द. आवन्त्य. ३।१६।१३।

४. अनुसंवत्सरं जाता अपि ते कुरुसत्तमाः।
पाण्डुपुत्रा व्यराजन्त पञ्च संवत्सरा इव॥—महाभारत आदिपर्व १२४।२२।
संवत्सराः पञ्च युगमहोरात्रश् चतुर्विधः।
कालचक्रं च तद् दिव्यं नित्यमक्षयमव्ययम्॥—महाभारत सभापर्व ११।३८।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थ सुश्रुतसंहिता में सूत्रस्थान में[1] पञ्चवर्षात्मयुग का प्रतिपादन है।

चौदहवीं शताब्दी के ग्रन्थ हेमाद्रिकृत **चतुर्वर्गचिन्तामणि** के दानखण्ड में **"अथ संवत्सरदानानि विष्णुधर्मोत्तरे"** कहकर संवत्सर-परिवत्सरादि में तिल-यवादि के दान का बडा फल होने की बात बताई गई है (पृ. ८९०)। चतुर्वर्गचिन्तामणि के परिशेषखण्ड के श्राद्धकल्प में भी हेमाद्रि ने **"ततः श्वः संवत्सरपरिवत्सरेदावत्सराऽनुवत्सरोदावत्सरेषु वर्तमानं युगमनुकीर्त्य"** (पृ.११५३) ऐसा कहकर श्राद्ध के सङ्कल्प में पञ्चसंवत्सरात्मक युग का उल्लेख करने की बात कही है।

पन्द्रहवीं शताब्दी के माधवाचार्य ने कालमाधव ग्रन्थ में **"अथ चान्द्रस्याऽवान्तरभेदा उच्यन्ते। संवत्सरः परिवत्सरः इडावत्सरोऽनुवत्सरः इद्वत्सरश् चेत्येते पञ्च भेदाः"** इत्यादि रूप में पञ्चवत्सरात्मक युग के संवत्सरादि वर्षों का प्रतिपादन और उनकी देवताओं का उल्लेख किया है तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण में उनका प्रतिपादन होने की बात भी बताई है। उन्हों ने विष्णुधर्मोत्तरपुराण में प्रतिपादित संवत्सर-परिवत्सरादि में तिल-यवादिदान का महाफलत्व भी उल्लिखित किया है और संवत्सरादि वर्षों के अधिष्ठाता देवों के व्रतों का भी प्रतिपादन किया है। अन्त में उन्हों ने **"प्रभवमारभ्य क्षयान्तेषु षष्टिवर्षेषु द्वादश पञ्चकानि। तत्रैकस्मिन् पञ्चके एकैकक्रमेण संवत्सरादयो भवन्ति। तदेतत् सर्वं ज्योतिःशास्त्रादवगन्तव्यम्"** ऐसा कहकर प्रभवादि क्षयतक के साठ वर्षों में पाँचपाँच वर्षों के बारह समूह (युग) होने की बात और उन समूहों के प्रथम-द्वितीयादि वर्षों में क्रम से संवत्सर-परिवत्सरादि होने की बात भी बताई है। इन सब बातों को ज्योतिषशास्त्र से समझने की बात भी उन्हों ने कही है।

उक्त विवरण से वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, पुराण, महाभारत, धर्मशास्त्रनिबन्ध इत्यादि ग्रन्थो में पञ्चवर्षात्मक युग का विधान अथवा चर्चा व्याप्त होने की बात स्पष्ट होती है।

वर्तमान वर्ष में वैदिक पञ्चवर्षात्मक युगों में कौन युग चल रहा है, इस बात को जानने के लिए वास्तविक कलियुगाब्द[2] के वर्षों को साठ से भाग लेकर लब्धि से व्यतीत वैष्णव–बार्हस्पत्य–ऐन्द्रादि द्वादश युगसङ्घों को जानना चाहिए, इसी से द्वादशयुगसङ्घों से अभिन्न चान्द्र प्रभवादि साठ वर्षों के व्यतीत समूहों

---

१. अथ खल्वयने द्वे युगपत् संवत्सरो भवति। ते तु पञ्च युगमिति सञ्ज्ञां लभन्ते।
—सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान ६।९।

२. वास्तविक कलियुगाब्द के विषय में आगे बताया जाएगा।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को भी जानना चाहिए। शेष से साठ वर्षों के चान्द्र प्रभवादि के समूह में व्यतीत और वर्तमान चान्द्र प्रभव–विभवादि संवत्सरों को जानना चाहिए। उसी शेष से पाँच से भाग लेकर लब्धि से द्वादशयुगात्मक युगसङ्घ के व्यतीत वैष्णवादि युगों को जानना चाहिए और शेष से वर्तमान पञ्चवर्षात्मक युग के चान्द्र संवत्सर–परिवत्सरादि वर्षों को जानना चाहिए।

जैसा कि आधुनिक पञ्चाङ्गकारों से २०६४ संवत् के पञ्चाङ्ग में लिखा गया कलि संवत् ५१०८ है। वह वास्तव में युधिष्ठिरराज्यारोहणाब्द है। उससे कृष्ण के स्वर्गारोहण होने पर कलियुग प्रवृत्त होने तक बीते हुए ३६ वर्षों को न्यून करने पर अवशिष्ट ५०७२ होता है। यह वास्तविक कलिवर्ष है। उस में ६० से भाग करने पर ८४ लब्धि हुई। इससे कलियुग के प्रारम्भ से व्यतीत संवत्सर–परिवत्सरादि से बननेवाले षष्टिसंवत्सरात्मक वैष्णवादि युगों के सङ्घ के ८४ चक्र पूर्ण होने की बात अवगत होती है। इसी से प्रभवादि चान्द्र षष्टिवर्षात्मक चक्र भी ८४ ही व्यतीत होने की बात भी ज्ञात होती है। शेष ३२ है। इससे चान्द्र षष्टिसंवत्सरों में इकतीसवाँ हेमलम्ब नाम का वर्ष बीतने की और बत्तीसवाँ विलम्ब नाम का वर्ष चलते रहने की बात भी ज्ञात होती है। इस शेष ३२ को वैदिक संवत्सर–परिवत्सरादि पञ्चवर्षात्मक युग के वर्षों की सङ्ख्या ५ से भाग करने पर ६ लब्धि हुई। इससे संवत्सर–परिवत्सरादि ५ वर्षों से बननेवाले वैष्णव–बार्हस्पत्य इत्यादि बारह युगों में से ६ युग बीतने की और सप्तम पित्र्य युग लगने की बात अवगत होती है। शेष २ होने से उससे संवत्सर परिवत्सर इत्यादि वैदिक ५ वर्षों में द्वितीय वर्ष परिवत्सर चलते रहने की बात ज्ञात होती है। इसका आरम्भ तो २०६३ सौर निरयण धनुर्मास (पौष) के छठे दिन (२००६ दिसम्बर २१) में ही हुआ था।

अन्य उदाहरण— २०६६ संवत् की (सन् २००९ मार्च २७ शुक्रवार की) चैत्रशुक्लप्रतिपदा में प्रचलित कलिवर्षसङ्ख्या ५११० है। उससे ३६ घटाने पर (५११०–३६) फल हुआ वास्तव कलिवर्ष अर्थात् ५०७४। इस प्रकार ज्ञात कलिवर्ष में ६० का भाग देने से ३४ शेष हुआ। अतः चान्द्र प्रभवादि में ३४ वाँ शार्वरी संवत्सर हुआ। ३४ में ५ का भाग देने से लब्धि ६ और शेष ४ होने से वैष्णवादि ६ युग बीतने पर सातवाँ पित्र्य युग वर्तमान अवगत हुआ और उसका चौथा वर्ष वैदिक पाँच संवत्सरों में से चौथा **इद्वत्सर** हुआ। यह संवत्सर उस चैत्रशुक्लप्रतिपदा से (२००९ मार्च २७ से) चार चान्द्र मास पूर्ववर्ती २००८ नवम्बर २८ शुक्रवार की वैदिक तपश्शुक्लप्रतिपदा से प्रारब्ध होता है[1]।

---

१. वैदिक युगों का और तदन्तर्गत संवत्सरों का कुछ विवरण परिशिष्ट में दिया गया है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस विषय का संस्कृत श्लोकों में सङ्ग्रह ऐसा है—

चैत्रशुक्लप्रतिपदि कलेरब्दः प्रवर्तते।
अन्येषां तु मते यावतिथः षट्त्रिंशता ततः ॥१॥

न्यूनः कृष्णयुगाब्दस् तु वैदिकानां प्रवर्तते।
तपशशुक्लप्रतिपदि तत्पूर्वस्यामिति स्थितिः ॥२॥

तष्टाः कलियुगाब्दास्तु षष्ट्याऽऽदियुगसञ्चयः।
लब्धः, शेषे पञ्चभिस् तु तष्टे लब्धं युगं गतम् ॥३॥

शिष्टेऽत्र खे पञ्चमोऽब्दोऽन्यत्र तत्सङ्ख्यवत्सरः।
सवँवत्सरादिषु ज्ञेयो वैदिकैर् ब्राह्मणैस् सदा ॥४॥

एतेन वैष्णवादीनि ज्ञेयानि हि युगान्यपि।
प्रभवाद्याः पञ्चकाश् च ज्ञेयाः संवत्सरादिकाः ॥५॥

संवत्सरस् तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः।
ततश् चेदावत्सरश् च तुर्य इद्वत्सरः श्रुतः ॥६॥
वत्सरः पञ्चमोऽब्दः स्यात् पञ्चाब्दं तु युगं स्मृतम्।

१ २
वैष्णवम् प्रथमन् तत्र बार्हस्पत्यन् ततः परम् ॥७॥
३ ४ ५ ६ ७
ऐन्द्रमाग्नेयञ् च त्वाष्ट्रमाहिर्बुध्न्यञ्च पित्र्यकम्।
८ ९ १० ११
वैश्वदेवञ्च सौम्यञ् च ऐन्द्राग्नञ्चाऽऽश्विनन् तथा ॥८॥
१२
भाग्यञ् च द्वादश क्रमात् पञ्चाब्दानि युगानि हि।
वैष्णवादियुगेष्वब्दाः प्रभवाद्याः क्रमात् स्मृताः ॥९॥
१ २ ३ ४ ५
प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः।
६ ७ ८ ९ १०
अङ्गिराः श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च ॥१०॥
११ १२ १३ १४ १५
ईश्वरो बहुधान्यश् च प्रमाथी विक्रमो वृषः।
१६ १७ १८ १९ २०
चित्रभानुः सुभानुश् च तारणः पार्थिवोऽव्ययः ॥११॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२१ २२ २३ २४ २५
सर्वजित् सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः।
२६ २७ २८ २९ ३०
नन्दनो विजयश् चैव जयो मन्मथ-दुर्मुखौ ॥१२॥
३१ ३२ ३३ ३४ ३५
हेमलम्बो विलम्बोऽथ विकारी शार्वरी प्लवः।
३६ ३७ ३८ ३९ ४०
शुभकृच् छोभनः क्रोधी विश्वावसु-पराभवौ ॥१३॥
४१ ४२ ४३ ४४ ४५
प्लवङ्गः कीलकः सौम्यः साधारण-विरोधकृत्।
४६ ४७ ४८ ४९ ५०
परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसोऽनलः ॥१४॥
५१ ५२ ५३ ५४ ५५
पिङ्गलः कालयुक्तश् च सिद्धार्थी रौद्र-दुर्मती।
५६ ५७ ५८ ५९ ६०
दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः ॥१५॥[1]

किन्तु वर्तमान काल में प्रचलित सौर पद्धति के ज्योतिष के मूल ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त में अथवा आर्यपद्धति के ज्योतिष के मूल ग्रन्थ आर्यभटीय में अथवा ब्राह्मपद्धति के ज्योतिष के मूल ग्रन्थ ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में अथवा खण्डखाद्यक में भी इस पञ्चवर्षात्मक वैदिक युग का प्रतिपादन नहीं है।

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के ग्यारहवें तन्त्रपरीक्षाध्याय में ब्रह्मगुप्त ने तो वेदाङ्गज्योतिषकार लगधमुनि से प्रतिपादित पञ्चसंवत्सरात्मक वेदोक्त युग को सीधे "असत्" कह दिया है[2]। ब्रह्मगुप्त ने वैदिक परम्परा के विरुद्ध बोलने का निन्दार्ह साहस किया है। ऐसे वैदिक मूलपरम्परा में निर्मम प्रहार करनेवाले वेदविरोधी ब्रह्मगुप्त के वचनों को भी अर्वाचीन धर्मशास्त्रनिबन्धकारों ने धर्म-निरूपण में प्रमाण मानकर उद्धृत किया है।

बारहवीं शताब्दी के धर्मरत्ननामक धर्मशास्त्रनिबन्ध के रचयिता जीमूतवाहन ने धर्मरत्न-ग्रन्थ के काल-विवेक नामक खण्ड में 'मेषादि में प्रारम्भ होने-वाले प्रतिपदादि-दर्शान्त (शुक्लप्रतिपदादि अमावास्यान्त) चान्द्रमासों में वैशाखादि

---

१. इन श्लोकों का अर्थ इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट में "वैदिककालज्ञान" प्रकरण में देखें।

२. युगमाहुः पञ्चाब्दं रविशशिनोः संहिताङ्गकारा यत्।
अधिमासाऽवमरात्रस्फुटतिथ्यज्ञानतस् तदसत् ॥—ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त ११।२।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शब्द गौण हैं"[1] ऐसा कहकर उसमें प्रमाण के रूप में ब्रह्मगुप्त के वचन को[2] प्रस्तुत किया है।

चौदहवीं शताब्दी के **स्मृतिरत्नाकर** नाम के धर्मशास्त्रनिबन्ध के प्रणेता चण्डेश्वर ठक्कुर ने भी स्मृतिरत्नाकर के कृत्यरत्नाकर नाम के खण्ड में शुक्लादि चान्द्रमास के स्वीकार करने में प्रमाण के रूप में ब्रह्मगुप्त के **"चैत्रसितादेरुदयाद् भानोर्"** इत्यादि श्लोक को (ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त १।४) प्रदर्शित किया है (पृ.८१)।

चौदहवीं शताब्दी के ही हेमाद्रि पण्डित ने भी **चतुर्वर्गचिन्तामणि** के परिशेष खण्ड के कालनिर्णय में (पृ.१७) चान्द्र संवत्सर का चैत्र-शुक्ल-प्रतिपदा में प्रारम्भ होने की बात में प्रमाण के रूप में ब्रह्मगुप्त के **"चैत्रसितादेरुदयाद् भानोर्"** इत्यादि (ब्रा.स्फु.सि.१।४) पद्यको प्रस्तुत किया है।

सोलहवीं शताब्दी के धर्मशास्त्रनिबन्धकार गोविन्दानन्द ने भी **वर्षक्रिया-कौमुदी** में[3] ब्रह्मगुप्तवचन को प्रमाण के रूप में लिया है।

स्यात् ब्रह्मगुप्त के वचन के आधार में ही किसी ने चैत्रादि मासों का निर्णय करने की व्यवस्था दिखाई है[4]।

यहाँ पर ब्रह्मगुप्त का वेदाङ्गज्योतिष का सीधे विरोध करने का साहस कैसे हो सका? वैदिक पञ्चवर्षात्मक युग का वैदिक धार्मिक क्षेत्र में

---

१. मेषाद्युपक्रान्तेषु प्रतिपदुपक्रमदर्शान्तेषु चान्द्रेषु (वैशाखादिशब्दाः) गौणाः।
—धर्मरत्न, कालविवेकखण्ड, पृ.१००।

२. चैत्रसितादेरुदयाद् भनोर् दिन-मास-युग-कल्पाः।
सृष्ट्यादौ लङ्कायां समं प्रवृत्ता दिनेऽर्कस्य॥—ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त १।४।

३. मेषग-रविसङ्क्रान्तिः शशिमासे भवति यत्र तच् चैत्रम्।
एवं वैशाखाद्या वृषादिसङ्क्रान्तियोगेन॥—वर्षक्रियाकौमुदी, पृ.२२८।

४. मेषादिस्थे सवितरि योयो दर्शः प्रवर्तते।
चान्द्रमासास् तत्तदन्ताश् चैत्राद्या द्वादश स्मृताः॥
तेषु याया पौर्णमासी सासा चैत्र्यादिका स्मृता।
कादाचित्केन योगेन नक्षत्रस्येति निर्णयः॥
—आपस्तम्बधर्मसूत्रव्याख्या हरदत्तकृत उज्ज्वला १।३।१।१[१।९।१]।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विरोध नहीं किया जा सकने की बात[1] ब्रह्मगुप्त के ध्यान में कैसे नहीं आई? ऐसी वेदबाह्य बात करनेवाले ब्रह्मगुप्त के वचन को धर्मनिरूपण में प्रमाण के रूप में जीमूतवाहन, चण्डेश्वर, हेमाद्रि इत्यादि धर्मशास्त्रनिबन्धकारों ने कैसे लिया? वेदाङ्गज्योतिष से अथवा वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, पुराण, इतिहास इत्यादि ग्रन्थों की वैदिक पञ्चवर्षात्मक युग की मान्यता से विमुख होने पर भी वर्तमान काल में भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तो में प्रचलित सूर्यसिद्धान्त, आर्यभटीय, ब्रह्मसिद्धान्त इन ग्रन्थों को धर्मशास्त्रनिबन्धकारों ने और अर्वाचीन ज्योतिषग्रन्थकारों ने कैसे मान्यता दी यह भारतवर्षीय ज्योतिष का एक अत्यन्त ज्वलन्त प्रश्न है।

---

१. युगमार्षं हि पञ्चाब्दं ब्रह्मगुप्तादिजल्पितैः।
नाऽनार्षैर् बाध्यते धर्मे परं मानमृषिर् यतः ॥—वैदिकमन्त्रसङ्ग्रह, (स्वाद्ध्यायशाला, काठमाण्डु), २०५२ वै., पृ.१३७; सारस्वती सुषमा [अनुसन्धानपत्रिका] (सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी), ५० व. ३–४ अ., मार्गशीर्ष-फाल्गुनपूर्णिमा २०५२ वै., पृ.२६१।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का दूसरा ज्वलन्त प्रश्न

नववर्षारम्भ माघ में अथवा चैत्र में?

लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष में तपश्शुक्लप्रतिपदा में अर्थात् वेदाङ्गज्योतिष के अनुकूल परिभाषा के माघ की शुक्लप्रतिपदा में वर्ष का आरम्भ बताया गया है। यह माघ वर्तमान काल में प्रचलित मकर, कुम्भ, मीन मेष इत्यादि राशियों से परिभाषित माघ नहीं है। भारतसम्प्रशासन (भारतसरकार) से नियुक्त पञ्चाङ्गसुधारसमिति के सदस्यसचिव रहे हुए निर्मलचन्द्र लाहिडी ने भी इस विषय में ध्यान न देकर अपने एफिमेरिज में वैदिक अथवा वेदाङ्गज्योतिषोक्त माघ मास को आधुनिक राशिपरिभाषित माघ मास मान कर इसी राशिपरिभाषित माघ मास की शुक्लप्रतिपदा से वैदिक अथवा वेदाङ्गज्योतिषोक्त नववर्ष का आरम्भ मानने की परम्परा चलाई हैं[1]। किन्तु वह बात गलत है। मूल वैदिक वाङ्मय के प्राचीन ग्रन्थों में मकर, कुम्भ, मीन, मेष इत्यादि राशि का उल्लेख ही न होने से राशिपरिभाषित महीनों का उनमें उल्लेख होने की बात नहीं मानी जा सकती है। वेदाङ्गज्योतिषोक्त माघ मास तो वास्तविक दिनमान के अथवा शङ्कुच्छाया के निरीक्षण से निश्चित होनेवाले दृक्सिद्ध सौर उत्तरायणबिन्दु से नियन्त्रित होनेवाला माघ मास है। इस मास का राशि से अथवा नक्षत्र से नियन्त्रण नहीं होता है। यह माघ तो ऋतुविशेष से सम्बद्ध है। इस विषय का और स्पष्टीकरण आगे किया जाएगा। तपश्शुक्लप्रतिपदा से वर्ष का आरम्भ कहने से सौर-चान्द्र शिशिर ऋतु के प्रारम्भ से वैदिक कालगणना का प्रकृतिसम्मत आधारभूत वर्ष का आरम्भ समझा जाना चाहिए। इस विषय में वेदाङ्गज्योतिष के प्राचीन व्याख्याकार सोमाकर का कथन[2] अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनके कथन का आशय यह है कि वेदों में वसन्तादि ऋतुओं का उल्लेख तो ब्राह्मणादि वर्णों के अग्न्याधान-अग्निष्टोमसोमयाग इत्यादि कृत्यों के प्रयोग के अभिप्राय से किया गया है, काल की गणना तो प्रकृतिसम्मत शिशिरादि वर्षारम्भ से ही होती है, क्योंकि शिशिर

---

१. उदाहरण के लिए Lahiri's Indian Ephemeris of Planets' Positions for 2005 के पृष्ठसङ्ख्या ११ के वेदाङ्गज्योतिषानुसारी कहकर दिया गया नववर्षसम्बद्ध उल्लेख को देखें।

२. ननु यद्येवं कथमृतूनां वसन्तो जायते आद्यस् तत्पूर्वाः सर्वाः श्रुतय इति। उच्यते तास् तु वर्णानां क्रमानुष्ठानाभिधायकत्वेन प्रवृत्ताः, यस्माच् छिशिरस्यैवाऽऽद्यं जन्म श्रूयते 'शिशिरं वा अग्नेर् जन्म' (काठकसंहिता ८।१) इति।—वेदाङ्गज्योतिष-सोमाकरभाष्य, श्लोक ६।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋतु का ही प्रथम उत्पत्ति वेद में बताई गई है। उन्होंने इस विषय के समर्थन के लिए शिशिर ऋतु में सभी वर्णों के लिए कर्माधिकार माने जाने की बात भी **"अत एवाऽत्र सर्ववर्णानां कर्माऽधिकारः, तस्मात् तदाद्यैव मुख्यप्रवृत्तिः"** इस वाक्य से (वेदाङ्गज्योतिष, श्लोक ६) स्पष्ट की है। अग्न्याधान के विषय में शाङ्खायन-श्रौतसूत्र में **"शिशिरः सर्ववर्णानाम्"** (२।१।५) ऐसा कहकर, आपस्तम्बश्रौतसूत्र में **"शिशिरः सार्ववर्णिकः"** (५।१।३।२०) ऐसा बताकर, सत्याषाढकृत हिरण्यकेशि-श्रौतसूत्र में **"सर्वेषां शिशिरः"** (३।२) ऐसा कहकर, भारद्वाजश्रौतसूत्र में **"शिशिरः सार्ववर्णिकः"** (५।२।५) ऐसा बताकर, वाराह-मैत्रायणीयश्रौतसूत्र में **"सार्ववर्णिकं शिशिरम्"** (१।४।२) ऐसा कहकर, मानव-मैत्रायणीय-श्रौतसूत्र में **"अग्नीनादधीत वसन्ते ब्राह्मणो ग्रीष्मे राजन्यः शरदि वैश्यः शिशिरं सर्वेषाम्"** (१।५।१।१) ऐसा बताकर और वैखानसश्रौतसूत्र में भी **"सर्वे शिशिर इत्येके"** (१।१) ऐसा कहकर शिशिर ऋतु को ग्राह्य बताया गया है। भारद्वाजगृह्यसूत्र में तो उपनयन के विषय में भी **"शिशिरे वा सर्वान्"** (१।१) ऐसा कहकर शिशिर ऋतु को ग्राह्य बताया गया है। इससे सोमाकर की उक्ति समर्थित होती है। इससे और अन्य बहूत कारणों से भी वैदिकों के प्रकृतिसम्मत ऋतु-मास-गणनादि के आधारभूत वर्ष का आरम्भ वेदाङ्गज्योतिष में बताए गए शिशिर ऋतु में (तपश्शुक्लप्रतिपदा में [वैदिक आर्तव माघशुक्लप्रतिपदा में]) होने की बात समर्थित होती है।

भारतवर्षीय परम्परा में दिव्य कालगणना में और मानुष कालगणना में सामञ्जस्य रखा जाता है और मुख्य रूप में दिव्य कालगणना को लेकर ही मनुष्य के सत्य-त्रेतादि युगों को परिभाषित किया जाता है। दिव्य कालगणना में और मानुष कालगणना में सामञ्जस्य का सूत्र आत्रेयतैत्तिरीयशाखा के कृष्ण-यजुर्वेदब्राह्मण के (तैत्तिरीयब्राह्मण के) मनुष्यों के एक वर्ष से देवों का एक दिन होने की बात को बतानेवाले **"एकं वा एतद् देवानामहर् यत् संवत्सरः"** (३।९।२२।१) इस वाक्य में उपलब्ध होता है। इसी सूत्र को ध्यान में रखकर स्मृति पुराण इत्यादि ग्रन्थों में युगों का प्रतिपादन किया गया है। मनुस्मृति में[1] दिव्य वर्षों को लेकर सत्ययुगादि युगों को बताया गया है। कूर्मपुराण में[2], नारदीयपुराण में[3], पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड में और विष्णुपुराण में[4], ब्रह्मपुराण में और विष्णुपुराण

---

१. चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत् कृतं युगम्।—इत्यादि मनुस्मृति १।६९।

२. दिव्यैर् वर्षसहस्रैस् तु कृतत्रेतादिसञ्ज्ञितम्।—इत्यादि कूर्मपुराण १।५।९।

३. दिव्यैर् वर्षसहस्रैर् द्वा-दशभिर् दैवतं युगम्।—इत्यादि नारदीयपुराण १।५।२६।

४. दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसञ्ज्ञितम्।—पद्म.सृष्टि.३।७-१८, विष्णु.१।३।११-१३ इत्यादि।

Prof. Amedavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में[1], ब्रह्मवैवर्तपुराण में[2], ब्रह्माण्डपुराण में (पूर्वभाग २९।२५), भविष्यपुराण में (१।२।९१–१००), मत्स्यपुराण में (१४२।१९)[3], भागवत में (विष्णुभागवत में)[4], देवीभागवत में[5], मार्कण्डेयपुराण में[6], लिङ्गपुराण में[7], वायुपुराण में (१।५७।२३,२४) और शिवपुराण में (७।१।८।१३,१४)[8], विष्णुधर्मोत्तरपुराण में[9], स्कन्दपुराण के आवन्त्य खण्ड में[10], स्कन्दपुराण-सूतसंहिता में[11], महाभारत में वनपर्व में तथा शान्तिपर्व में[12] और महाभारत के ही खिलभाग के रूप में प्रसिद्ध

---

१. मासैर् द्वादशभिर् वर्षमहोरात्रं तु तद् दिवि।
त्रिभिर् वर्षशतैर् वर्षं षष्ट्या चैवाऽसुरद्विषाम्॥
तैस् तु द्वादशसाहस्रैश् चतुर्युगमुदाहृतम्।
चतुर्युग-सहस्रं तु कथ्यते ब्रह्मणो दिनम्॥—ब्रह्मपु.१२४।१०,११; विष्णुपु.६।३।१०,११।

२. त्रिशतैश् च षष्ट्यधिकैर् युगैर् दिव्यं युगं स्मृतम्।
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः॥—ब्रह्मवैवर्तपुराण ब्रह्मखण्ड ५।६–७।
वर्षे पूर्णे नराणां च देवानां च दिवानिशम्।—इत्यादि (प्रकृतिखण्ड ७।७३–७४),

३. चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत् कृतं युगम्।—इत्यादि।

४. कृतं त्रेता द्वापरश् च कलिश् चेति चतुर्युगम्।
दिव्यैर् द्वादशभिर् वर्षैः सावधानं निरूपितम्॥
चत्वारि त्रिणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम्।
सङ्ख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च॥—भागवत ३।११।१८,१९।

५. वर्षे पूर्णे नराणां च देवानां च दिवानिशम्।—देवीभागवत ९।८।६९–७० इत्यादि।

६. दिव्यैर् वर्षसहस्रैस् तु कृतत्रेतादिसञ्ज्ञितम्।
चतुर्युगं द्वादशभिस् तद्विभागं शृणुष्व मे॥—मार्कण्डेयपुराण ४३।२६।

७. लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः।
एतद् दिव्यमहोरात्रमिति लैङ्गेऽत्र पठ्यते॥—लिङ्गपुराण १।४।१४-१५।

८. चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्। इत्यादि।

९. समाशतैर् द्वादशभिर् दिव्यैस् तिष्ययुगं स्मृतम्।—विष्णुधर्मोत्तरपुराण १।७३।१७।

१०. मानुषेण तु मानेन यो वै संवत्सरः स्मृतः।
देवानां तदहोरात्रं दिवा चैवोत्तरायणम्॥—स्कन्दपुराण आवन्त्यखण्ड १।४८।१४–१५।

११. दिव्यैर् द्वादशसाहस्रैर् वर्षैः प्रोक्तं चतुर्युगम्।
कृतं तत्र युगं विप्राः सहस्राण्णां चतुष्टयम्॥—इत्यादि स्कन्दपुराण-सूतसंहिता १।८।८।

१२. चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत् कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश् च तथाविधः॥
—महाभारत वनपर्व १८८।२२–२३, शान्तिपर्व २३१।२०।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हरिवंश में भी[1] दिव्य वर्षों के मान से ही मानुष सत्ययुगादि का प्रतिपादन किय गया है। इससे मानुष कालमान में और दिव्य कालमान में सामञ्जस्य सर्वथ आवश्यक होने की बात भी प्रमाणित होती है। पुराणों में दिव्य कालमान से हं सत्य-त्रेतादि युगों के मान बताए जाने की बात कण्ठरव से भी स्पष्ट रूप में[2] हं बताई गई है। स्मृति-पुराणों में एक हजार दिव्य युगों से ब्रह्मा का एक दिन होने का वर्णन आने से भी मानुष कालमान में और दिव्यकालमान में सामञ्जस्य सर्वथा आवश्यक होने की बात ही पुष्ट होती है। एक हजार दिव्ययुगों से ब्रह्मा क एक दिन होने की बात निरुक्त परिशिष्ट में[3], बृहद्देवता में[4], मनुस्मृति मे (१।७२,७३), भविष्यपुराण में (१।२।९८-१००)[5], कूर्मपुराण में[6], नारदीयपुराण में[7], ब्रह्माण्डपुराण के पूर्वभाग में[8], ब्रह्मपुराण में[9], मार्कण्डेयपुराण में[10], विष्णुपुराण

---

१. चत्वार्येव सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्।
तावच्छती भवेत् सन्ध्या सन्ध्यांशश् च तथा नृप॥—इत्यादि हरिवंश १।८।१२।
दिव्यं द्वादशसाहस्रं युगं तु कवयो विदुः।
एतत्सहस्रपर्यन्तं तदहो ब्राह्ममुच्यते॥—हरिवंश ३।८।२०।

२. इत्येवमृषिभिर् गीतं दिव्यया सङ्ख्यया त्विह।
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसङ्ख्याप्रकल्पनम्॥
—ब्रह्माण्डपुराण पूर्वभाग २९।२२,मत्स्यपुराण १४२।१६, वायुपुराण १।५७।२१,
द्र.– लिङ्गपुराण १।४।२२-२४, शिवपुराण ७।१।८।१०–११।

३. तदेतदहर् युगसहस्रं जागर्ति।—इत्यादि निरुक्तपरिशिष्ट २।४।

४. सहस्रयुगपर्यन्तमहर् ब्राह्मं स राध्यते।—बृहद्देवता ८।९८।

५. दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसङ्ख्यया।
ब्राह्ममेकमहर् ज्ञेयं तावतीं रात्रिमेव च॥—मनुस्मृति १।७२; भविष्यपु. १।२।९८-१००।

६. ब्राह्ममेकमहः कल्पस् तावती रात्रिरिष्यते।
चतुर्युग-सहस्रं तु कल्पमाहुर् मनीषिणः॥—कूर्मपुराण १।५।१७-१८।

७. दिव्यैर् वर्षसहस्रैर् द्वा-दशभिर् दैवतं युगम्।
दैवे युगसहस्रे द्वे ब्राह्मः कल्पौ तु तौ नृणाम्॥—नारदीयपुराण १।५।२६-२७।

८. एषा चतुर्युगाऽऽवृत्तिरा सहस्राद् गुणीकृता।
ब्रह्मणस् तदहः प्रोक्तं रात्रिश् चैतावती स्मृता॥—ब्रह्माण्डपुराण पूर्वभाग ३१।११४-११५।

९. तैस् तु द्वादशसाहस्रैश् चतुर्युगमुदाहृतम्।
चतुर्युगसहस्रं तु कथ्यते ब्रह्मणो दिनम्॥—ब्रह्मपुराण १२४।११।

१०. एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या कविभिः कृता।
एतत् सहस्रगुणितमहो ब्राह्ममुदाहृतम्॥—मार्कण्डेयपुराण ४३।३१।

Prof. Amodvardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में[1], विष्णुधर्मोत्तरपुराण में[2], शिवपुराण में[3], स्कन्दपुराण के माहेश्वरखण्ड में[4], स्कन्दपुराण के आवन्त्य खण्ड में[5], महाभारत के वनपर्व में[6], महाभारत के ही भीष्मपर्व में (३२।१७) [गीता में (८।१७)][7] और शान्तिपर्व में (२३१।३१) तथा अन्यत्र् भी शान्तिपर्व में ही (२३१।२९)[8] बताई गई है।

उक्त वस्तुस्थिति से दिव्य अहोरात्र और मानुष वर्ष का साथसाथ ही आरम्भ होने की बात सिद्ध मानी जानी चाहिए। मानुष वर्ष में कौन भाग दिव्य अहर् (दिन) है और कौन भाग दिव्य रात्रि है यह बात भी निरूपणीय होती है। इस विषय में मानुष उत्तरायण को ही देवों का दिन माना गया है। माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-शतपथब्राह्मण में **"स (सूर्यः) यत्रोदङ्ङावर्तते देवेषु तर्हि भवति देवाँस् तर्ह्यभिगोपायति"** ऐसा वाक्य मिलता है (२।१।३।३)। इससे सूर्य का उदगयन का काल देवों का दिन माने जाने की बात सूचित होती है। इस बात को विष्णुस्मृति में अथवा विष्णुधर्मसूत्र में[9] स्पष्ट रूप में बताया गया है। मनुस्मृति में **"अहस् तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद् दक्षिणायनम्"** (१।६७) ऐसा कहा गया है। कूर्मपूराण में (१।५।९) पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड में (३।७) और विष्णुपुराण में

---

१. कृतं त्रेता द्वापरश् च कलिश् चैव चतुर्युगम्।
प्रोच्यते तत्सहस्रं च ब्रह्मणो दिवसं मुने ॥—विष्णुपुराण १।३।१५।

२. चतुर्युगसहस्रं तु कल्पमाहुर् मनीषिणः।
कल्पश् च दिवसः प्रोक्तो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥—विष्णुधर्मोत्तरपुराण १।७३।३६-३७।

३. चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते।
रात्रिश् च तावती तस्य मानमेतत् क्रमेण ह ॥—शिवपुराण २।१।१०।१६।

४. आयुर् मनोर् युगानां च साऽधिका ह्येकसप्ततिः।
चतुर्दशमनूनां च कालेन ब्रह्मणो दिनम् ॥—स्कन्दपुराण माहेश्वर खण्ड २।३९।५९।

५. ब्रह्मणस् तदहः प्रोक्तं कल्पश् चेति स उच्यते।
सहस्रयुगपर्यन्तं सा निशा प्रोच्यते बुधैः ॥—स्कन्दपुराण आवन्त्य खण्ड १।४८।२८-२९।

६. एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या परिकीर्तिता।
एतत्सहस्रपर्यन्तमहो ब्राह्ममुदाहृतम् ॥—महाभारत वनपर्व १८८।२७-२८।

७. सहस्रयुगपर्यन्तमहर् यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥
—महाभारत भीष्मपर्व ३२।१७ [सात.३०।१७] (गीता ८।१७), शान्तिपर्व २३१।३१।

८. एतां द्वादशसाहस्रीं युगाख्यां कवयो विदुः।
सहस्रपरिवर्तं तद् ब्राह्मं दिवसमुच्यते ॥—महाभारत शान्तिपर्व २३१।२९।

९. यदुत्तरायणं तदहर् देवानाम्।—विष्णुस्मृति [विष्णुधर्मसूत्र] २०।१।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१।३।१०) भी एक ही वाक्य से[1] तथा नारदीयपुराण में[2] भी यही बात बताई गई है। ब्रह्माण्डपुराण के पूर्व भाग में (२९।१४), भविष्यपुराण में (१।२।९२), लिङ्गपुराण में (१।४।१६), वायुपुराण में (१।५७।१३), स्कन्दपुराण में (१।२।२९।५४) और महाभारत के शान्तिपर्व में भी (२३१।१७) समान वाक्य से[3], मत्स्यपुराण में[4], मार्कण्डेयपुराण में[5], शिवपुराण में[6], स्कन्दपुराण के वैष्णवखण्ड में[7], स्कन्दपुराण के ही आवन्त्यखण्ड में और हरिवंश में[8] भी समान वचन से ही और स्कन्दपुराण के ही नागरखण्ड में[9] भी उत्तरायण को देवों का दिन बताया गया है।

उक्त वस्तुस्थिति से और माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्ल-यजुर्वेदशाखा-शतपथब्राह्मण के **"विष्णुक्रमैर् वै प्रजापतिरहरसृजत वात्सप्रेण रात्रिम्"** (६।७।४।७) इस वाक्य से पहले दिन की और पीछे रात्रि की सृष्टि होने की बात अवगत होने से तथा देवदिनरूप उत्तरायण की सृष्टि पहले होने की बात विदित होने से वर्ष के दो अयनों में उत्तरायण ही पहला माना जाना चाहिए। अत एव ब्रह्माण्डपुराण के पूर्व भाग में (२४।१३९–१४३), लिङ्गपुराण में (१।६१।५०–५४) और वायुपुराण में भी (१।५३।१११–११५) आए हुए[10] वचन में प्राप्त **"अयनानां तथोत्तरम्"** इस वाक्य में अयनों में उत्तरायण को ही आदि बताया गया है।

---

१. अयनं दक्षिणं रात्रिर् देवानामुत्तरं दिनम्।—कूर्म.१।५।९, पद्म.सृष्टि.३।७, विष्णु.१।३।१०।

२. उत्तरं दिवसं प्राहू रात्रिर् वै दक्षिणायनम्।—नारदीयपुराण १।५।२५।

३. अहस् तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद् दक्षिणायनम्।

४. अहस् तु यदुदक् चैव रात्रिर् या दक्षिणायनम्।—मत्स्यपुराण १४२।१०।

५. तद् देवानामहोरात्रं दिनं तत्रोत्तरायणम्।—मार्कण्डेयपुराण ४३।२५।

६. एतद् दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रस्य निश्चयः।
दक्षिणं चाऽयनं रात्रिस् तथोदगयनं दिनम्॥—शिवपुराण ७।१।८।८।

७. देवासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
उत्तरं दक्षिणं भानोरयने ते यथाक्रमम्॥—स्कन्दपुराण वैष्णव खण्ड १।३६।३२।

८. मानुषेण तु मानेन यो वै संवत्सरः स्मृतः।
देवानां तदहोरात्रं दिवा चैवोत्तरायणम्॥—स्कन्द.आवन्त्य.१।४८।१४–१५, हरिवंश१।८।९।

९. अयनं चोत्तरं शुक्लं यद् देवानां दिनं तु तत्।
यद् दक्षिणं तु सा रात्रिः शुभकर्मविगर्हिता॥—स्कन्दपुराण नागर खण्ड २७२।८।

१०. सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते।
ताराग्रहाणां शुक्रस् तु केतूनां चैव धूमवान्॥
ध्रुवः कीलो ग्रहाणां तु विभक्तानां चतुर्दिशम्।
नक्षत्राणां श्रविष्ठा स्यादयनानां तथोत्तरम्॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जैसे चान्द्र मुख्य मास पूर्ण दो पक्षों से बनता हे वैसे ही वर्ष भी पूर्ण दो अयनों से बनता है। इस बात को वेदाङ्गज्योतिषादि अनेक ग्रन्थों में स्पष्ट रूप में बताया गया है। यह बात वेदाङ्गज्योतिष में **"अब्दः षट् चर्तवोऽयने"** (श्लो.२८) कहकर बताई गई है। यही बात कौटलीय अर्थशास्त्र में **"द्व्ययनः संवत्सरः"** (२।२०) कहकर और सुश्रुतसंहिता में **"अयने द्वे युगपत् संवत्सरः"** (१।६।९) कह कर बताई गई है। पुराणों में और अन्य ग्रन्थों में भी यही बात प्रतिपादित है। **"वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे"** (कूर्मपु. १।५।८, मार्कण्डेयपु.४३।२५, विष्णुपु. १।३।१०), **"तद्द्वयेन भवेदब्दः"** (नारदीयपु.१।५।२४), **"वर्षमयने दक्षिणोत्तरे"** (पद्मपु.सृष्टि.३।६), **"अब्दस् तु चाऽयने द्वे वै"** (ब्रह्मवैवर्तपु. कृष्णजन्म. ९६।६२), **"दिव्ये रात्र्यहनी वर्षम्"** (ब्रह्माण्डपु. पूर्वभाग २९।१३, मत्स्यपु. १४२।१०, वायुपु. १।५७।१३), **"द्वेऽयने वर्षमुच्यते"** (वायुपु.१।५०।१७७), **"द्वेऽयने वर्षसंज्ञिते"** (विष्णुपु. २।८।७०), **"वर्षं द्वे चाऽयने मतम्"** (शिवपु.७।१।८।७), **"वत्सरो भवेत्। अयनद्वितयाकारः"** (स्कन्दपु. वैष्णव.१।३६।३१), **"अब्दं द्वे अयने स्मृतम्"** (स्कन्दपु. आवन्त्य. १।४८।११), **"अयने द्वे तु वत्सरम्"** (स्कन्दपु.नागर.१९४।१४, २७२।७), **"वर्षं स्यादयनद्वये"** (स्कन्दपु. प्रभास.१।१९।१२), **"अब्दं स्यादयनद्वयात्"** (स्कन्दपु.प्रभास. १।१०५।३६), **"द्वेऽयने वर्षम्"** (स्कन्दपु.सूतसंहिता १।८।६), **"संवत्सरं द्वे त्वयने वदन्ति"** (शान्तिपर्व २३१।१४), **"अब्दं द्व्ययनमुक्तं च"** (हरिवंश १।८।६), **"अयने द्वे गतिरुदग् दक्षिणाऽर्कस्य वत्सरः"** (अमरकोष, प्रथम काण्ड, कालवर्ग, श्लो.१३), **"द्व्ययनः संवत्सरः"** (काव्यमीमांसा, अध्याय १८), **"अयनद्वयं वत्सरो भवति"** (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद्, पूर्वकाण्ड, तृतीय अध्याय) इत्यादि वचनों से अनेक स्थलों में दो अयनों का एक वर्ष होने की बात बताई गई है।

इस स्थिति में मूल वैदिक परम्परा में ऋतु-मासादि-गणना के आधारभूत प्रकृतिसम्मत वर्ष का आरम्भ उदगयनारम्भ की तपश्शुक्लप्रतिपदा में (वेदाङ्गज्योतिषानुसारी आर्तव माघशुक्लप्रतिपदा में) माने जाने की बात अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है।

वर्षाणामपि पञ्चानामाद्यः संवत्सरः स्मृतः।
ऋतूनां शिशिरश् चाऽपि मासानां माघ एव च॥
पक्षाणां शुक्लपक्षश् च तिथीनां प्रतिपत् तथा।
अहोरात्रविभागानामहश् चाऽपि प्रकीर्तितम्॥
मुहूर्तानां तथैवाऽऽदिर् मुहूर्तो रुद्रदैवतः॥
—ब्रह्माण्डपु.पूर्वभाग २४।१३९–१४३, लिङ्गपु.१।६१।५०–५४, वायुपु. १।५३।१११–११५।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उक्त शास्त्रीयस्थिति में आर्यभट ने कलिवर्ष वा युधिष्ठिराब्द ३६०० में रचित आर्यभटीय में[1] ब्रह्मगुप्त ने ५५० शकान्ताब्द में रचित ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में[2] और भास्कर ने १०७२ शकान्ताब्द में रचित सिद्धान्तशिरोमणि में[3] और प्रचलित नवीन सूर्यसिद्धान्तकार ने[4] कैसे वैदिक मूलपरम्परा के विरुद्ध रूप में चैत्रशुक्लप्रतिपदा में अथवा मेषमास के आदि में वर्ष का आरम्भ बताया? इसको ग्यारहवीं शताब्दी के धारेश्वर (भोज), और उनके बाद के लक्ष्मीधर, जीमूतवाहन, चण्डेश्वर, हेमाद्रि, माधव, गोविन्दानन्द, रघुनन्दन, कमलाकर-भट्ट, नीलकण्ठभट्ट, मित्रमिश्र इत्यादि अर्वाचीन धर्मशास्त्रनिबन्धकारों ने कैसे आँख मूँदकर स्वीकार किया? यह भारतवर्षीय ज्योतिष की कालगणना-पद्धति का दूसरा बहुत ही बडा ज्वलन्त प्रश्न है।

इस प्रश्न के विषय में विचार करने के प्रसङ्ग में अधोलिखित विषय भी सम्यक् विचारणीय है।

धारेश्वर (भोज), लक्ष्मीधर, जीमूतवाहन, चण्डेश्वर, हेमाद्रि, माधव, गोविन्दानन्द, रघुनन्दन, कमलाकरभट्ट, नीलकण्ठभट्ट, मित्रमिश्र इत्यादि ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी से इधर के प्राचीन-अर्वाचीन धर्मशास्त्रनिबन्धकारों ने तिथिकृत्यों के लिए संवत्सर का चैत्र मास से आरम्भ होना स्वीकृत किया है। लक्ष्मीधर ने कृत्यकल्पतरु के नियतकालकाण्ड नाम के तृतीय काण्ड में एक वचन[5] लिखा है। चण्डेश्वर ने भी लक्ष्मीधर का अक्षरशः अनुसरण करते हुए उस वचन को गृहस्थरत्नाकर, कृत्यरत्नाकर, पूजारत्नाकर, दानरत्नाकर, शुद्धिरत्नाकर, व्यवहारत्नाकर, विवादरत्नाकर इन खण्डों से युक्त स्मृतिरत्नाकर नाम के धर्म-

---

१. युग-वर्ष-मास-दिवसाः समं प्रवृत्तास्तु चैत्रशुक्लादेः ।–आर्यभटीय, कालक्रियापाद, पद्य ११।

२. चैत्रसितादेरुदयाद् भानोर् दिनमासवर्षयुगकल्पाः ।
सृष्ट्यादौ लङ्कायां समं प्रवृत्ता दिनेऽर्कस्य ॥–ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त १।४।

३. लङ्कानगर्यामुदयाच् च भानोस् तस्यैव वारे प्रथमं बभूव।
मधोः सितादेर् दिन-मास-वर्ष-युगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः ॥–सिद्धान्तशिरोमणि १।१।१५।

४. मेषादयो द्वादशैते मासास् तैरेव वत्सरः ।–सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लो. १०।

५. चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रं तु यदा सूर्योदये सति॥
ततः प्रभृति यो धर्मः पूर्वैः पूर्वतरैः कृतः ।
अद्याऽपि गूढः सुतरां कर्तव्योऽसौ प्रयत्नतः ॥
–कृत्यकल्पतरु, नियतकालकाण्ड, तृतीय भाग, पृ.३७७।

Prof. Amodavardhana Kaundinyayana Collection, Kathmandu, Nepal.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शास्त्रनिबन्ध के कृत्यरत्नाकर नाम के खण्ड में (पृ.१०३-१०८), लिखा है। चण्डेश्वर से कृत्यरत्नाकर में (पृ.८१) लिखे गए वाक्य का अनुसरण सा करते हुए हेमाद्रि ने भी **चतुर्वर्गचिन्तामणि** के व्रतखण्ड नाम के प्रथमखण्ड के पञ्चम अध्याय में[1] कुछ वाक्यों को ब्रह्मपुराणोक्त कहकर वत्सरारम्भविधि लिखा है। चण्डेश्वर का और हेमाद्रि का अनुसरण करते हुए माधव ने भी **कालमाधव** नाम के धर्मशास्त्रनिबन्धग्रन्थ के संवत्सर प्रकरण में **"चान्द्रः संवत्सरश् चैत्रशुक्ल-प्रतिपदादिः फाल्गुनदर्शान्तः सौरस् तु मेषादिर् मीनान्तः"** ऐसा लिखकर चान्द्र संवत्सर का चैत्र मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा में आरम्भ और फाल्गुन मास की अमावास्या में समाप्ति होने की बात और सौर संवत्सर का मेषमास में (मेष-सङ्क्रान्ति में) प्रारम्भ और मीनमास के अन्त में समाप्ति होने की बात भी बताई है। उन्हों ने **"अत एव ब्रह्मपुराणेऽभिहितं चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि"** इत्यादि भी लिखा है। लक्ष्मीधर, चण्डेश्वर इत्यादि का अनुसरण करते हुए कमलाकरभट्ट ने निर्णयसिन्धु में भी द्वितीय परिच्छेद के प्रारम्भ में **"चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा"** इत्यादि श्लोक लिखा है।

उक्त विवरण से चैत्रादि वर्ष पुराणसम्मत अवगत होता है। किन्तु इस विषय में गम्भीर और तलस्पर्शी विचार आवश्यक है।

वेदो में भी पुराण का उल्लेख है। किन्तु वेदों में पुराणशास्त्र का उल्लेख माना जाता है, वर्तमान काल में पाए जानेवाले ब्रह्मपुराणादि पुराणों का नहीं, क्योंकि ब्रह्मपुराणादि ग्रन्थ पौरुषेय (पुरुषविशेष से दूसरे प्रमाण से ज्ञात विषयों को लेकर रचे गए) ग्रन्थ माने जाते हैं। इनका अध्ययन जैसे मन्त्ररूप और ब्राह्मणरूप वेद का अध्ययन गुरु के अध्ययन के अनुसार ही अनादिपरम्परा से सिद्ध रूप में किया जाता है वैसे नहीं किया जाता है। अत एव इन ब्रह्मपुराणादि पुराणों का अध्ययन केवल लिखित पुस्तक को लेकर भी किया जाता है। इसी कारण से लेखक के प्रमाद से अथवा आग्रह-विशेष से वर्तमान काल में उप-लभ्यमान पुराणग्रन्थों में प्रक्षेप अथवा निरसन अथवा त्रुटि हो सकने की बात प्राचीन और अर्वाचीन विद्वान् लोगों ने मानी है। कोलकाता के मनसुखराय मोर से मुद्रापित स्मृतिसन्दर्भ के षष्ठ भाग में सङ्गृहीत मार्कण्डेयस्मृति में वेदों में प्रक्षिप्त

---

१. **चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।**
शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति॥
प्रवर्तयामास तथा कालस्य गणनामपि।
ग्रहान् नागानृतून् मासान् वत्सरान् वत्सराधिपान्॥ इत्यादि,
—चतुर्वर्गचिन्तामणि, व्रतखण्ड, पञ्चम अध्याय, पृ.३६०।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रन्थांश न हो सकने की और स्मृतियों में और पुराणों में प्रक्षिप्त ग्रन्थांश हो सकने की बात बताइ गई है, जैसे–

पदस्य वर्णमात्रस्य वा वाक्यस्य स्वरस्य वा।
व्यत्यासो यत्रकुत्राऽपि भेदः प्रक्षेप एव वा॥
घटते नैव सुतरां वेदमात्रे शिवात्मके।
तत्राऽत्यन्तं जागरूकास् तत्तद्विशदकर्मीणि॥
प्रस्तावचरणव्यूहलक्षणान्यखिलान्यपि।
किञ्च वेदाश् च सूत्राणि कल्पाः शाखाः समन्ततः॥
अध्यापनाऽध्ययनतः पदक्रममुखेन वै।
अतिस्पष्टाः सुप्रसिद्धाः प्राजापत्यादिसंज्ञया॥ इत्यादि[1]
तस्माद्देतेषु सर्वेषु विद्याभेदेषु कृत्स्नशः।
उपदिष्टेषु विशयो नास्त्येव सुतरां खलु॥
नैवं स्मृतिषु सर्वासु पुराणेष्वखिलेषु वा।
तस्मात् तन्मध्यसम्प्राप्तप्रक्षिप्तग्रन्थविस्तरैः॥
तानि सर्वाण्यप्रामाण्यकलङ्कितशरीरतः।
आचारसंशयेष्वत्र सम्यक् स्युर् न विधायकाः॥[2]

इसी प्रकार से वल्लालसेन के १०९१ शकान्ताब्द में (१२२६ वैक्रमाब्द में) रचित दानसागर में भी उपक्रमणिका भाग में (श्लो. ६२-६६) पुराणों में खण्डों का खण्ड प्रक्षिप्त होने की बात मानी गई है, जैसे–

प्रचरद्रूपतः स्कन्दपुराणैकांशतोऽधिकम्।
यत् खण्डत्रितयं पौण्ड्र-रेवा-ऽवन्तिकथाश्रयम्॥
तार्क्ष्यं पुराणमपरं ब्राह्ममाग्नेयमेव च।
त्रयोविंशतिसाहस्रं पुराणमपि वैष्णवम्॥
षट्सहस्रमितं लैङ्गं पुराणमपरं तथा।
दीक्षा-प्रतिष्ठा-पाषण्डयुक्ति-रत्नपरीक्षणैः॥
मृषावंशानुचरितैः कोषव्याकरणादिभिः।
असङ्गतकथाबन्ध-परस्परविरोधतः॥
तन् मीनकेतनादीनां भण्डपाषण्डलिङ्गिनाम्।
लोकवञ्चनमालोक्य सर्वमेवाऽवधीरितम्॥

---

१. मार्कण्डेयस्मृति, मनसुखरायमोरप्रकाशित स्मृतिसन्दर्भ, षष्ठ भाग, पृ.६४।

२. वहीं, पृ.६६।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वैक्रमाब्दों के तेरहवीं शताब्दी में रचित जगन्मोहन नाम के ज्योतिषग्रन्थ के प्रथमभाग के तिथिफलाध्याय में लक्ष्मणाचार्य से भी पद्मपुराण इत्यादि कतिपय पुराणों में अनेक कृत्रिम (प्रक्षिप्त) वाक्य रहने की बात स्पष्ट रूप से बताई गई है, जैसे—

पुराणवचनेषु पद्मपुराणादिकतिपयपुराणेषु कृत्रिमवचनानि बहूनि दृश्यन्ते।

—जगन्मोहन, प्रथम भाग, तिथिफलाध्याय, पृ.२०७।

काशी में १६६८ वैक्रमाब्द में पूर्ण किए गए निर्णयसिन्धु में कमलाकर भट्ट ने भी श्राद्ध में पाणिहोम के निरूपण के प्रकरण में (निर्णयसागर, पञ्चम संस्करण, पृ.३१३) बृहन्नारदीय पुराण के वचन में वृद्धों का अनादर होने से वह उपेक्षणीय होने की बात बताई है, जैसे—

यत् तु बृहन्नारदीये 'अनग्निर् दूरभार्यश् च... इति' तद् वृद्धाऽनादरादुपेक्ष्यम्।

वैक्रमाब्दों के सत्रहवीं शताब्दी के मित्रमिश्र ने वीरमित्रोदय के संस्कार-प्रकाश में (वाराणसीसंस्करण, पृ.६५५) भी पुराण अव्यवस्थित होने की बात **"पुराणानामव्यवस्थितत्वात् इत्याहुः"** ऐसा कहकर बताई है।

अभी अभी बीते हुए हरिहरानन्द-करपात्र ने भी चातुर्वर्ण्यसंस्कृतिविमर्श नाम के ग्रन्थ के दूसरे भाग में (पृ.९५) **"व्यासोक्तपुराणानां श्रुतिस्मृत्यनुसारेणैव व्यवस्था युक्ता"** इस वाक्य से 'व्यास से रचे गए पुराणों की बातों की व्यवस्था श्रुति-स्मृति के अनुकूल रूप में ही मानना उचित होता है' ऐसा कहा है।

इस शिष्टादिसम्मत शास्त्रीय वस्तुस्थिति में पुराणों के वेद-वेदाङ्गों के प्रतिकूल पाठों में विश्वास नहीं किया जा सकता है। इस समय में प्राप्त वेङ्कटेश्वरमुद्रणालय में मुद्रित ब्रह्मपुराण में वह लक्ष्मीधरादि से उल्लिखित वचन नहीं पाया जाता है। इससे **"चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि"** इत्यादि वचन पञ्चम शताब्दी के आर्यभट के आर्यभटीय ग्रन्थ में, वराहमिहिर से रचित पञ्चसिद्धान्तिका में सङ्गृहीत रोमकसिद्धान्त–पौलिशसिद्धान्तों में और ५५० शकान्ताब्द में (६८५ वैक्रमाब्द में) रचित ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में भी प्रतिपादित चैत्रशुक्ल में वर्ष का आरम्भ होने की बात को बताने बाले वचन से प्रभावित किसी संस्कृतज्ञ व्यक्ति से ब्रह्मपुराण के किसी हस्तलिखित पुस्तक में प्रक्षिप्त किया गया मालूम होता है और उसी प्रकार के ब्रह्मपुराण के पुस्तक से लक्ष्मीधर से लिया गया अवगत होता है । लक्ष्मीधर के ग्रन्थ से प्रभावित होकर ही चण्डेश्वर, हेमाद्रि, माधव इत्यादि से गतानुगतिक रूप से उस वचन को लिया गया प्रतीत होता है। वर्तमान काल में पाए जानेवाले ब्रह्मपुराण में नहीं पाया

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जानेवाला वह वचन प्राचीन काल में पाए जानेवाले ब्रह्मपुराण के हस्तलिखित पुस्तक में रहा हुआ और अर्वाचीन लोगों से वह वचन हटाया गया भी नहीं माना जा सकता है, क्योंकि वह वचन वेदाङ्गज्योतिषरूप महास्मृति का विरुद्ध होने से वेद-वेदाङ्गों की पुष्टि करनेवाले पुराण में उसका रहना ही उचित नहीं माना जा सकता है। इस लिए उस वचन को ब्रह्मपुराण की किसी किसी हस्तलिखित पोथियों में लोगों से प्रक्षिप्त ही मानना मूल वैदिक परम्परा के विचार से युक्ति-युक्त सिद्ध होता है। प्रामाणिक वेदाङ्ग-ग्रन्थ वेदाङ्गज्योतिष में माघशुक्ल-प्रतिपदा में वर्ष का प्रारम्भ बताए जाने से **"चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा"** इत्यादि वचन वेदाङ्ग-महास्मृतिरूप वेदाङ्गज्योतिष का विरुद्ध ही है।

प्रचलित ब्रह्मपुराण में उक्त **"चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा"** इत्यादि वचन नहीं मिलने पर भी नारदीयपुराण में तो[1] वैसा वचन मिलता ही है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी[2] वैसा वचन मिलता ही है। इस लिए कोई लोग चैत्र-शुक्ल-प्रतिपदा में वर्ष का प्रारम्भ होने की बात को पुराणसम्मत मानने में आग्रह करते हैं। किन्तु इस विषय में यह विचार करना चाहिए कि नारदीयपुराण में[3] वेद में और वेदाङ्गज्योतिष में भी नहीं बताए गए तिथि के वृद्धि-क्षय इत्यादि विषयों को पुराणों में प्रतिपादित किए जाने की बात बताई गई है। यह तिथि की वृद्धि का और क्षय का विषय वराहमिहिर से ४२७ शकान्ताब्द में रचे गए पञ्चसिद्धान्तिका नाम के ग्रन्थ में सङ्गृहीत रोमकसिद्धान्त में और पौलिशसिद्धान्त में वर्तमान

---

१. चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रं वै तदा सूर्योदये सति॥
वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च।
पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत् सर्वदा बुधैः॥–नारदीयपुराण १।११०।५,६।

२. चैत्रशुक्लसमारम्भे जगतां जगदीश्वरः।
सर्वं चक्रे तदा राजँस् ततस् तस्मिन् सदा दिने॥
संवत्सरेशः क्रियते ब्रह्मणा तु सदा ग्रहः।
नागो यज्ञश् च धर्मज्ञ गन्धर्वश् च तथैव च॥
सप्तच्छिन्ने तु यः शेषः कलिपातसमागणे।
आदित्यादिः स बोद्धव्यो ग्रहः संवत्सराधिपः॥–विष्णुधर्मोत्तरपुराण १।८२।३४-३६।

३. • न वेदे ग्रहसञ्चारो न शुद्धिः कालबोधिनी।
तिथिवृद्धिः क्षयो वाऽपि पर्वग्रहविनिर्णयः॥–नारदीयपुराण २।२४।२९।

• यन् न दृष्टं हि वेदेषु तत् सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ।
उभयोर् यन् न दृष्टं हि तत् पुराणैः प्रगीयते॥–नारदीयपुराण २।१४।२०–२१।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवगत होता है। इससे तिथि की वृद्धि का और क्षय का विषय भारतीय अर्वाचीन ज्योतिषियों से रोमक सिद्धान्तादि से ही लिया गया विदित होता है। ५५० शकान्ताब्द व्यतीत होने पर ब्राह्म-स्फुट-सिद्धान्त नाम का ज्योतिषग्रन्थ बनानेवाले ब्रह्मगुप्त ने भी रोमकसिद्धान्त इत्यादि वेदबाह्य सिद्धान्तों से ही वेद-वेदाङ्ग-बाह्य तिथिपरिभाषा को लेकर अपने को स्फुटतिथि का यथार्थ परिमाण जाननेवाला मानकर **"युगमाहुः पञ्चाब्दं रविशशिनोः संहिताङ्गकारा यत्। अधिमासा-ऽवमरात्र-स्फुटतिथ्यज्ञानतस् तदसत्"** (११।२) ऐसा कहकर वेदाङ्गज्योतिषकार को स्फुट (स्पष्ट) तिथिमान न जाननेवाला बताया है। इससे पुराणों में जो तिथि की वृद्धि और क्षय इत्यादि विषय आए हैं, वे सब ही अर्वाचीन काल में पुराणों में प्रक्षिप्त ही अवगत होते हैं। अत एव उक्त प्रकार के विषयों से युक्त नारदीयपुराण के, विष्णुधर्मोत्तरपुराण के और अन्य पुराण-उपपुराणों के भी वेद-वेदाङ्ग से समन्वय नहीं रखनेवाले जो जो वचन और विषय हैं वे सब अर्वाचीन काल में पुराणों में प्रक्षिप्त ही अवगत होते हैं। इस लिए **"चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा"** इत्यादि वचन मूल वैदिक परम्परा की दृष्टि से अमान्य ही ठहरते हैं। वैदिक परम्परा में स्वीकृत प्रकृतिसम्मत धार्मिक और व्यवहारिक सौर-चान्द्र वर्ष के प्रारम्भ के निरूपण में नारदीयपुराणादि का **"चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा"** इत्यादि वचन प्रमाण नहीं हो सकता है। ब्रह्माण्डपुराण के पूर्वभाग में (२४।१४१,१४२), लिङ्गपुराण में (१।६१।५२-५४) और वायुपुराण में (१।५३।११३,११४) भी पाए जानेवाले और मासों में माघमास को पहला बतानेवाले[1] वचन के विरुद्ध होने से भी नारदीय-पुराणादि का "चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा" इत्यादि वचन मान्य नहीं हो सकता है। जहाँ समान कक्षा के वाक्यों में परस्पर विरोध होता है वहाँ बहुसङ्ख्यक वाक्यों का प्रामाण्य होने की बात को बतानेवाले कात्यायनस्मृति अथवा गोभिलस्मृति अथवा कर्मप्रदीप अथवा छन्दोगपरिशिष्ट कहे जानेवाले ग्रन्थ के **"विरोधो यत्र वाक्यानां प्रामाण्यं तत्र भूयसाम्। तुल्यप्रमाणकत्वे तु न्याय एवं प्रकीर्तितः"** (२८।१७) इस वचन से और जैमिनीय धर्ममीमांसासूत्र के **"विप्रतिषिद्धधर्माणां समवाये भूयसां स्यात् सधर्मत्वम्"** (१२।२।२२) इस वचन से भी ब्रह्माण्डपुराण के, लिङ्गपुराण के और वायुपुराण के (तीन महापुराणों के) वाक्यों से विरुद्ध होने से भी **"चैत्रे मासि"**

---

१. **वर्षाणामपि पञ्चानामाद्यः संवत्सरः स्मृतः।**
ऋतूनां शिशिरश् चाऽपि मासानां माघ एव च॥
पक्षाणां शुक्लपक्षश् च तिथीनां प्रतिपत् तथा।
अहोरात्रविभागानामहश् चाऽपि प्रकीर्तितम्॥

 Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इत्यादि वचन वैदिक परम्परा में अननुसरणीयत्वरूप अप्रामाण्य का भागी ही ठहरता है।

शिशिर ऋतु का और माघ मास का निर्णय वेदाङ्गज्योतिष के तात्पर्यार्थ को लेकर निश्चित किए गए सिद्धान्त को लेकर किया जाना चाहिए। उसके लिए वास्तविक सौर उत्तरायण के आरम्भ के दिन में (वर्ष के सब से छोटे दिन में) वर्तमान तिथि को देखना चाहिए। यदि वह तिथि शुक्लपक्ष की तिथि है तो उसी शुक्लपक्ष की प्रतिपदा में वैदिक शिशिर ऋतु का और वैदिक चान्द्र माघ मास का भी प्रारम्भ होता है। उसी प्रतिपदा से वैदिक सौर-चान्द्र उदगयन का भी प्रारम्भ होता है। यदि वह तिथि कृष्णपक्ष की कोई तिथि है तो वह तिथि यदि कृष्णनवमी है अथवा उससे पहले की तिथि है तो उस कृष्णपक्ष से पहले आए हुए शुक्लपक्ष की प्रतिपदा में ही वैदिक शिशिर ऋतु का और वैदिक चान्द्र माघ-मास का प्रारम्भ होता है। यदि वह तिथि कृष्णनवमी से पीछे का दशम्यादि तिथि है तो आनेवाली अमावास्या में पूर्ण होनेवाला मास **वैदिक अधिकमास** होता है और उसके बाद आनेवाली शुक्लप्रतिपदा में वैदिक शिशिर ऋतु का और वैदिक चान्द्र माघमास का (तपोमास का) प्रारम्भ होता है।

नित्य स्वाध्यायाध्ययन में (ब्रह्मयज्ञ में) पढे जानेवाले और **"वेदमधीत्य स्नायात्.... विधिर् विधेयस् तर्कश् च वेदः, षडङ्गमेके"** इत्यादि (पारस्कर-गृह्यसूत्र २।६।१,५।६) शास्त्रविधि के अनुसार पढ़े जानेवाले वेदाङ्गज्योतिषरूप महास्मृति से विरुद्ध होने से भी **"चैत्रे मासि"** इत्यादि वचन वैदिक परम्परा में अप्रामाणिक ही ठहरता है। "चैत्रे मासि" इत्यादि वचन वेदाङ्गज्योतिष के **"माघशुक्लप्रपन्नस्य"** (श्लोक ५) इत्यादि वचन का विरुद्ध ही है।

स्मृति से विरुद्ध होने पर ही पुराण का वचन अप्रमाण हो जाता है तो वेदाङ्गस्मृतिरूप महास्मृति से विरुद्ध होने पर तो पुराण का वचन सुतराम् (अत्यन्त) अप्रमाण हो ही जाता है। पुराण के वचन में और स्मृति के वचन में विरोध दिखाई देने पर स्मृति का वचन ही प्रमाण माना जाता है। यही मूल वैदिक परम्परा की मान्यता है। कहा ही गया है–

श्रुति-स्मृति-पुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणं स्यात् तयोर् द्वैधे स्मृतिर् वरा॥

—वेदव्यासस्मृति १।४।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्।
एतत्त्रयोक्त एव स्याद् धर्मो नाऽन्यत्र कुत्रचित्॥
विरोधो यत्र तु भवेत् त्रयाणां च परस्परम्।
श्रुतिस् तत्र प्रमाणं स्याद् द्वयोर् द्वैधे स्मृतिर् वरा॥

—देवीभागवत (११।१।२१,२४)।

स्मृतिर् बलीयसी ज्ञेया द्वैधे स्मृति-पुराणयोः।
स्मृतीनां श्रुतिमूलत्वात् पुराणं स्मृतिसाधनम्॥

—कातीयमन्त्रभ्रान्तिहरसूत्र (सूत्रमन्त्रप्रकाशिका) श्लोक १०६-१०७।

शास्त्र के प्रामाण्य की इस व्यवस्था में स्मृति के अविरुद्ध पुराणवचन ही प्रमाण हो सकने से और "चैत्रे मासि" इत्यादि पुराणवचन "माघशुक्ल-प्रपन्नस्य" इत्यादि वेदाङ्गज्योतिषरूप महास्मृति के वचन से विरुद्ध होने से भी वैदिक ऋतुमासादि की गणना के आधारभूत प्रकृतिसम्मत धार्मिक और व्यावहारिक सौरचान्द्रवर्षों की गणना में प्रमाण नहीं माना जा सकता है।

इस शास्त्रीय वस्तुस्थिति में वैदिक परम्परा के लक्ष्मीधर, चण्डेश्वर, हेमाद्रि, माधव इत्यादि धर्मशास्त्रनिबन्धकारों ने और वैदिक परम्परा के भास्करादि ज्योतिषियों ने विना विवेचन कैसे चैत्रशुक्लप्रतिपदा में वर्षारम्भ माना यह धर्मशास्त्र का और ज्योतिष का भी बडा ज्वलन्त प्रश्न है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का तीसरा ज्वलन्त प्रश्न

संवत्सर-परिवत्सरादि की उपेक्षा क्यों?

कोलकाता के मनसुखराय मोर से प्रकाशित स्मृतिसन्दर्भ के षष्ठ भाग में सङ्गृहीत मार्कण्डेयस्मृति में संवत्सर-परिवत्सरादि वर्षों में तिल-यवादि के दान से बडा पुण्य मिलने की बात बताई गई है (पृ.१३४)। यह बात विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी आई है (३।३१७।२,३)। इस दानविशेष का प्रतिपादन हेमाद्रि ने भी चतुर्वर्गचिन्तामणि के दानखण्ड में बारहवें अध्याय मे संवत्सरदानप्रकरण में (पृ.८९०) किया है। माधवाचार्य ने भी कालमाधव में उपोद्घातप्रकरण में चौदहवें श्लोक में और संवत्सरप्रकरण में भी इस दान का प्रतिपादन किया है (पृ.३५)। हेमाद्रि ने चतुर्वर्गचिन्तामणि के परिशेषखण्ड के श्राद्धकल्प में ग्यारहवें अध्याय में श्राद्ध के सङ्कल्प में संवत्सर-परिवत्सरादि के पञ्चवर्षात्मक युग का उल्लेख करके वर्तमान संवत्सर-परिवत्सरादि का उल्लेख करने की बात बताई है (पृ.११५३)। इस स्थिति में वैदिक कृत्यविशेषों के लिए वर्तमान वैदिक चान्द्र-संवत्सरादि का ज्ञान आवश्यक होता है। किन्तु सौरपक्ष के मूल ग्रन्थ आधुनिक प्रचलित सूर्यसिद्धान्त में अथवा आर्यपक्ष के मूलग्रन्थ आर्यभटीय में अथवा ब्राह्म पक्ष के मूलग्रन्थ ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में भी संवत्सर-परिवत्सरादि वर्तमान चान्द्र वत्सर को जानने के लिए कोई करणसूत्र नहीं मिलता है। वैदिक परम्परा के धार्मिक कृत्य के लिए जिन वर्तमान संवत्सर-परिवत्सरादि का ज्ञान आवश्यक है उसके लिए आवश्यक करणसूत्र सूर्यसिद्धान्तादि में क्यों नहीं मिलता है? यद्यपि वराहमिहिर की बृहत्संहिता के बृहस्पतिचाराध्याय में प्रभवादि संवत्सर जानने के लिए करणसूत्र **"गतानि वर्षाणि शकेन्द्रकालात्"** इत्यादि (पद्य २०) और **"संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरोऽर्कः"** (पद्य २४) इत्यादि है ही, सूर्यसिद्धान्त में मध्यमाधिकार में **"द्वादशघ्नाः"** इत्यादि श्लोक में विजयादि साठ संवत्सरों को जानने का करणसूत्र (श्लो.५५) दिया ही है, नारदसंहिता में भी प्रभवादि संवत्सरों का प्रतिपादन है (३।७–१३), किन्तु वह सब बार्हस्पत्य प्रभवादि संवत्सरों के विषय में है, चान्द्र प्रभवादि के अथवा चान्द्र संवत्सर-परिवत्सरादि को जानने के विषय में नहीं। शाकद्वीपीय मग ब्राह्मण वराहमिहिर ने बार्हस्पत्य प्रभवादि संवत्सरों में वैदिक चान्द्र संवत्सर परिवत्सरादि के नाम हठात् आरोपित किए हैं। यद्यपि बार्हस्पत्य प्रभवादि साठ संवत्सरों के और चान्द्र प्रभवादि साठ संवत्सरों के नामों में सामान्यतया समानता है, तथापि उनके आरम्भ में और समाप्ति में अन्तर है। चान्द्र प्रभवादि का बृहस्पति के चार से (गति से) कोई सम्बन्ध नहीं है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चान्द्र प्रभवादि संवत्सरों का कभी भी क्षय नहीं होता है। बार्हस्पत्य संवत्सरों का लगभग ८५ सौर वर्षों में एक बार्हस्पत्य वत्सर का क्षय होना माना जाता है। इस लिए चान्द्र प्रभवादि संवत्सरों का और वैदिक चान्द्र संवत्सर-परिवत्सरादि संवत्सरों का अभेद होने से उनका सर्वदा साथसाथ प्रारम्भ और साथसाथ अन्त होता है। किन्तु बार्हस्पत्य प्रभवादि संवत्सरों में और चान्द्र संवत्सर-परिवत्सरादि संवत्सरों में भेद होने से उनका सर्वदा एक साथ प्रारम्भ नहीं हो सकता है। चान्द्र संवत्सर लगभग ३५४ दिनों का होने से और बार्हस्पत्य संवत्सर लगभग ३६१ दिनों का होने से उनका सर्वदा एकसाथ प्रारम्भ और अन्त हो ही नहीं सकता है। संवत्सर-परिवत्सरादि वैदिक वर्ष चान्द्र हैं। वैदिक वर्ष अधिकमास की व्यवस्था से सूर्यगति से नियन्त्रित माने जाने पर भी वे मुख्य रूप में चान्द्र ही हैं। यह बात वेदों से ही सिद्ध है और माधवाचार्य ने कालमाधव में संवत्सरप्रकरण में **"अथ चान्द्रस्याऽवान्तरभेदा उच्यन्ते। संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सरोऽनुवत्सरः इद्वत्सरः इत्येते पञ्च भेदाः।"** इस वचन से स्पष्ट रूप में प्रतिपादित किया है। वैदिक परम्परा में बार्हस्पत्य संवत्सर किसी भी धर्मकार्य के लिए आवश्यक नहीं है। इसी लिए लगधमुनि से वेदाङ्गज्योतिष में केवल सावन, चान्द्र, नाक्षत्र और सौर ये चार प्रकार के कालमान ही बताए गए हैं (श्लो.३१)। सोमाकर से वेदाङ्ग-ज्योतिष की व्याख्या में (श्लो.११) और श्रीधर से विष्णुपुराण की व्याख्या में (२।८।७१) उद्धृत[1] (वृद्ध)गर्ग के वचन में भी केवल चार प्रकार के मानों का ही उल्लेख है, बार्हस्पत्य मान की कोई चर्चा नहीं है। जैमिनीय धर्ममीमांसासूत्र के भाष्यकार शबरस्वामी ने भी[2] बार्हस्पत्य संवत्सर का तो कोई उल्लेख नहीं किया है। पुराणों में ब्रह्माण्डपुराण में भी[3] सावन, सौर चान्द्र और नाक्षत्र इन चार मानों का ही उल्लेख अवगत होता है। निर्णयसिन्धु में प्रारम्भ में ही[4] बार्हस्पत्य मान का

---

१. **सावनं चाऽपि सौर्यं च चान्द्रं नाक्षत्रमेव च।**
चत्वार्येतानि मासानि यैर् युगं प्रविभज्यते॥—विष्णुपुराणव्याख्योद्धृत वचन।

२. **विचाली हि संवत्सरशब्दः सावनोऽपि गणितदिवसकः, शीतोष्णवर्षालक्षणोऽपि, चान्द्रमसोऽपि।**—शाबरभाष्य ६।७।३८।

३. **संवत्सरादयः पञ्च चतुर्मानविकल्पिताः।**
निश्चयः सर्वकालस्य युगमित्यभिधीयते॥—ब्रह्माण्डपुराण पूर्वभाग २१।१३०–१३१।

४. **तत्राऽब्दो माधवमते पञ्चधा सावनः, सौरः, चान्द्रः, नाक्षत्रः, बार्हस्पत्य इति। गुरोर् मध्यमराशिभोगेन बार्हस्पत्यः, स च ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धः। हेमाद्रिस् तु अन्त्ययोर् धर्मशास्त्रेऽनुपयोगात् तिस्र एव विधा आह।**
—निर्णयसिन्धु, निर्णयसागरमुद्रणालय, पञ्चमसंस्करण, पृ.२।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वैदिक धर्मशास्त्र में उपयोग न होने की बात उल्लिखित की गई है। चतुर्वर्ग- चिन्तामणि के परिशेषखण्ड के कालनिर्णय प्रकरण में एक ब्रह्मसिद्धान्त क वचन[1] हेमाद्रि ने दिखाया है और बार्हस्पत्य संवत्सरों के विषय में बार्हस्पत्य संवत्सर का ज्योतिष में वर्षफल प्रतिपादन में उपयोग होने की और धर्मानुष्ठान मे उपयोग न होने की बात[2] भी की है। इससे वराहमिहिर का धार्मिक कृत्य मे प्रयुक्त होनेवाले संवत्सर-परिवत्सरादि का बार्हस्पत्य प्रभव-विभवादि में आरोपि करना और वैदिक संवत्सर-परिवत्सरादि का बार्हस्पत्य प्रभव-विभवादि से ऐक्य के भ्रम की सृष्टि करना उचित कार्य नहीं माना जा सकता है। वराहमिहिरादि मगब्राह्मण फलित-ज्योतिष-विद्या में निपुण होते थे और शासकों के सम्मत होते थे। यह बात बाणभट्टरचित-हर्षचरित के चतुर्थ उल्लास में आए हुए[3] कथन से भी समर्थित होती है। इन भोजक (मग) लोगों ने उनकी फलादेश विद्या को वेदसम्बद्ध दिखाने का प्रयास भी किया होगा। वैदिक परम्परा में फलादेशजीवी ज्योतिषी निन्दित माना जाता है[4]। बृहत्संहिता में फलादेश विद्या जाननेवाले

---

१. चान्द्र-सावन-सौराणां मासानां तु प्रभेदतः।
चान्द्र-सावन-सौराख्यास् त्रयः संवत्सरा अपि।
—चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड, कालनिर्णय, पृ.१७

२. तज् ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धशुभाशुभफलप्रतिपादनार्थम्, न तु धर्मानुष्ठानार्थमिति मन्तव्यम्।
—चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड, कालनिर्णय, पृ.१८

३. तस्मिन्नेव च काले राज्ञः परमसम्मतः ... ...त्रिकालज्ञानभाग् भोजकस् तारको नाम गणकः समुपसृत्य विज्ञापितवान्।—हर्षचरित, चौखम्बा विद्याभवन, २०२१; पृ.२१८।

४. • आह्वायका देवलका *नाक्षत्रा* ग्रामयाजकाः।
एते ब्राह्मणचाण्डला महापथिकपञ्चमाः॥—महाभारत, शान्तिपर्व ७६।६।

• चिकित्सकः काण्डपृष्ठः पुराध्यक्षः पुरोहितः।
सांवत्सरो वृथाध्यायी सर्वे ते शूद्रसम्मिताः॥—महाभारत, अनुशासनपर्व १३५।११।

• विश्रम्भघाती व्यङ्गो हि तथा *नक्षत्रसूचकः*।
वर्जनीया द्विजा ह्येते श्राद्धकर्मणि नित्यशः॥
—काश्यपधर्मसूत्र, Journal of Oriental Research, vol XIII, पृ. २७१

• हस्ति-गो-ऽश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर् यश् च जीवति।
पक्षिणां पोषको यश् च युद्धाचार्यस् तथैव च॥—मनुस्मृति ३।१६२।

• असत्प्रतिग्रहीता तु नरके यात्यधोमुखे।
[illegible] चैव तथा *नक्षत्रसूचकः*॥—विष्णुपुराण २।६।१८।

Prof. Amodavardhana Kaundinyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

फलादेशशास्त्रज्ञ को दोषमुक्त बताने के प्रयास में लिखा गया श्लोक[1] भी मिलता है। ऐसे ही किसी कारण से वराहमिहिर ने अपने वर्षफल बताने में उपयोगी बार्हस्पत्य संवत्सरों को वैदिक संवत्सर-परिवत्सरादि से जोडा होगा।

वस्तुतः विचार करने पर बार्हस्पत्य साठ वर्षों के पञ्चवर्षात्मक युगों में विभक्त करने में कोई युक्ति नहीं दिखाई देती है। इस लिए बार्हस्पत्य प्रभवादि साठ संवत्सर और चान्द्र प्रभवादि साठ संवत्सर अलग अलग वस्तु हैं। इसमें अर्वाचीन ज्योतिषियों में और धर्मशास्त्री कर्मकाण्डी लोगों मे कैसे भ्रम फैला यह एक विचारणीय प्रश्न है। माधवाचार्य ने तो कालमाधव नाम के धर्मशास्त्रनिबन्ध के उपोद्घात प्रकरण में[2] संवत्सर-परिवत्सरादि वैदिक चान्द्र वत्सरों का चान्द्र प्रभव-विभवादि साठ वर्षों से ही सम्बन्ध दिखाया है, बार्हस्पत्य प्रभव-विभवादि साठ वर्षों से नहीं। सायण से मन्त्रब्राह्मण नाम से भी बताए जानेवाले छान्दोग्य-ब्राह्मण की व्याख्या में भी[3] चान्द्र प्रभव-विभवादि से ही वैदिक चान्द्र संवत्सर-परिवत्सरादि का ऐक्य बताया गया है। तैत्तिरीयब्राह्मण की सायणव्याख्या में (१।४।१०।१) भी ऐसा ही कहा गया है। रघुनन्दन ने भी **स्मृतितत्त्व** नाम के धर्मशास्त्र-निबन्ध के **मलमासतत्त्व** नाम के प्रकरण में[4] वर्तमान **चान्द्र संवत्सर-परिवत्सरादि**

- सांवत्सरेण ज्योतिषा *ज्ञाननक्षत्रसूचकः*।
  न स भोज्यो भवेद् राजन् यस्येयं जीविका भवेत्॥—भविष्यपुराण १।२१०।४८।
- प्रयत्नात् पित्र्ये परीक्षेत, हीनाधिकाङ्गान् विवर्जयेत्, विकर्मस्थाँश् च, बैडालव्रतिकान्, वृथालिङ्गिनः, *नक्षत्रजीविनः*, देवलकाँश् च।—विष्णुधर्मसूत्र ८२।२-८।
- *नक्षत्राऽऽदेशवृत्तिर्* ब्रह्मपुरुषो मद्यपो ब्रह्मविक्रयी कितवः कूटकारको मानुषपशुविक्रयिणश् चेत्यपाङ्क्तेयाः।—शङ्खलिखितवचन, चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड श्राद्धकल्प, षष्ठाध्याय, पृ.४९२।

१. अविदित्वैव यच् छास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते।
स पङ्क्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः॥—बृहत्संहिता २।१६ (स.सं.वि.वि., पृ.७६)।

२. चान्द्राणां प्रभवादीनां पञ्चकेपञ्चके युगे।
सम्परीदान्विदित्येतच्छब्दपूर्वास् तु वत्सराः॥—कालमाधव, उपोद्घातप्रकरण, श्लो.१३।

३. चान्द्राः प्रभवादिवत्सराः क्रमेण संवत्सरपरिवत्सरेदावत्सरानुवत्सरेद्वत्सरनाम्ना पुनःपुनरावर्तन्ते। तथा च पूर्वेषां वचनम्- चान्द्राणां प्रभवादीनां पञ्चकेपञ्चके युगे। संपरीदान्विदित्येतच्छब्दपूर्वास्तु वत्सरा इति।—सायणव्याख्या, मन्त्रब्राह्मण (छान्दोग्यब्रा.) २।१।१२।

४. शकाब्दात् पञ्चभिः शेषात् समाद्यादिषु वत्सराः।
सम्परीदानुपूर्वाश् च तथोदापूर्वका मताः॥
वत्सरफलमुक्तं विष्णुधर्मोत्तरे—

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के ज्ञान का उपाय, संवत्सर-परिवत्सरादि में तिल, यव (जौ) इत्यादि के दान का फल और ज्योतिषियों का इससे भिन्न रूप में बार्हस्पत्य प्रभवादि का और संवत्सर-परिवत्सरादि का मानना भी दिखाया है। इससे वैदिक परम्परा में चान्द्र प्रभवादि वत्सरों से चान्द्र संवत्सरादि का ऐक्य माने जाने की बात भी स्पष्ट होती है। चान्द्र प्रभव-विभवादि का प्रतिपादन गार्ग्य के वचन से **निर्णयसिन्धु** में भी किया गया है ही (निर्णयसागरमुद्रणालय, पञ्चम संस्करण, पृ.२)। **धर्मसिन्धु** में भी द्वितीय परिच्छेद के अन्त में परिच्छेदद्वयशेषाख्य प्रकीर्णप्रकरण में ऐसी ही बात है (निर्णयसागरमुद्रणालय, द्वितीय संस्करण, १९०४ क्रै., पृ.१०४)। साथ ही निर्णयसिन्धु में धार्मिक कृत्य के सङ्कल्प में चान्द्र संवत्सर का ही स्मरण करने का मुख्य विधान आर्ष्टिषेण के वचन से दिखाया गया है–

स्मरेत् सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संवत्सरं सदा।
नाऽन्यं यस्माद् वत्सरादौ प्रवृत्तिस् तस्य कीर्तिता॥

धर्मसिन्धु में तो प्रारम्भ में ही **"कर्मादौ सङ्कल्पे चान्द्रवत्सर एव स्मर्तव्यो नाऽन्यः"** कहकर धार्मिक कृत्य के सङ्कल्प में चान्द्र संवत्सर का ही उल्लेख करने का अन्य (बार्हस्पत्य संवत्सर) का उल्लेख न करने का निर्विकल्प विधान दिखाया गया है।

उक्त शास्त्रीय वस्तुस्थिति में सूर्यसिद्धान्त, आर्यभटीय, ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त इत्यादि ज्योतिषग्रन्थों ने चान्द्र संवत्सरों का और संवत्सर-परिवत्सरादि पाँच चान्द्र संवत्सरों का भी प्रतिपादन क्यों नहीं किया और ऐसे वैदिक परम्परा से विमुख ग्रन्थों को वैदिक कर्मकाण्डियों ने कैसे मान्य ठाना यह भी भारतवर्षीय ज्योतिष की कालगणना का एक ज्वलन्त प्रश्न ही है।

संवत्सरे तथा दानं तिलस्य तु महाफलम्।
परिपूर्वे तथा दानं यवानां च द्विजोत्तम॥
इदापूर्वेऽन्नवस्त्राणां धान्यानां चाऽनुपूर्वके।
उदासंवत्सरे दानं रजतस्य महाफलम्॥
ज्योतिर्विदस् त्विज्यमध्यात् प्रभवादेश् च सम्भवम्।
ऊचुस् तद्वत् समाद्यादिवर्षाणामपि सम्भवम्॥

–स्मृतितत्त्व, मलमासतत्त्व प्रकरण, पृ. ७६४।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का चौथा ज्वलन्त प्रश्न

चान्द्र वर्षों की उपेक्षा और बार्हस्पत्य वर्षों का स्वीकार क्यों?

यद्यपि लगधमुनि से विरचित वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ में भी सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र चार ही प्रकार के वर्षों का उल्लेख **"त्रिशत्यह्नां सषट्षष्टिरब्दः"** (श्लोक २८) इत्यादि श्लोक में बताया गया है, तथापि वैदिक परम्परा में मुख्य वर्ष चान्द्र ही है। यह बात लगध मुनि ने भी अपने वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ में **"माघ-शुक्लप्रपन्नस्य पौषकृष्णसमापिनः"** (श्लोक ५) इत्यादि श्लोक से पञ्चवर्षात्मक वैदिक युग का **माघशुक्ल में प्रारम्भ और पौषकृष्ण में समाप्ति** बताकर स्पष्ट किया है। वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, पुराण इत्यादि ग्रन्थों में भी धार्मिक कृत्यों में लिए जानेवाले वर्ष अयन ऋतु मास इत्यादि के गणना का आधारभूत प्रकृतिसम्मत वर्ष चान्द्र ही होने की बात स्पष्ट है। ऋग्वेद के शाङ्खायनीय आरण्यक में **"अहोरात्रा अर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरश्च सन्धीयन्ते"** (७।२१) ऐसा उल्लेख मिलता है। इस में चान्द्र तिथि, पक्ष, मास, ऋतु इस क्रम में ही संवत्सर का उल्लेख होने से संवत्सर भी चान्द्र ही लिए जाने की बात स्पष्ट है। इसी प्रकार का उल्लेख माध्य-न्दिनीयवाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदसंहिता में **"अहोरात्रेभ्यः स्वाहा"** (२२।२८) इत्यादि वाक्य में, **"उषसस् ते कल्पन्ताम्"** (२७।४५) इत्यादि वाक्य में, शतपथब्राह्मण में **"तस्याऽहोरात्राण्यर्धमासाः"** (१०।२।६।१) इत्यादि अनेक वाक्यों में (१०।२।६।७, १०।४।३।२१, १२।८।३।१४, १४।६।८।९), तैत्तिरीय संहिता के **"अहोरात्रेभ्यः स्वाहा"** इत्यादि वाक्यों में (७।१।१५।१, ७।५।२५।१) तथा जैमिनीयसामवेद-ब्राह्मण में (२।३९१) भी मिलता है। इन उल्लेखों से वैदिक मुख्य वर्ष चान्द्र होने की बात स्पष्ट होती है।

वेदों में वर्ष के तेरहवें महीने का उल्लेख अनेक स्थलों में मिलता है। ऋग्-वेद की[1] ऋचा में ही तेरहवें मास का उल्लेख मिलता है। शाङ्खायनीयऋग्वेद के ब्राह्मण में **"यस् त्रयोदशो मासस् तस्याऽऽप्त्यै"** (१।१) ऐसा उल्लेख है। इसी ग्रन्थ में **"एतावान् वै संवत्सरो यदेव त्रयोदशो मासः"** इत्यादि उल्लेख भी (५।८, ७।१०, १९।२) मिलते हैं। ऐतरेयिब्राह्मण में भी **"तं त्रयोदशान् मासादक्रीणंस् तस्मात् त्रयो-दशो मासो नाऽनुविद्यते"** (३।१[१।१२]) ऐसा तेरहवें मास का उल्लेख है। तेरहवें मास का उल्लेख तैत्तिरीयसंहिता में **"त्रयोदश मासाः संवत्सरः"** ऐसा कहकर

---

१. **वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते।—ऋग्वेदसंहिता १।२५।८।**

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(५।६।७।१-२) और **"अस्ति त्रयोदशो मास इत्याहुः"** ऐसा कहकर (६।५।३।४) ... किया गया है। इसी प्रकार का उल्लेख **"अस्ति मासस् त्रयोदशः"** इस वाक्य ... मैत्रायणीयसंहिता में भी अनेक स्थलों में (१।४।१४, १।५।६, ३।४।१०, ४।६।७) किय गया है। काठककृष्णयजुर्वेदसंहिता में **"मलिम्लुचो नामाऽसि त्रयोदशो मासः"** ऐस वाक्य आया है (३८।१४)। माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शतपथब्राह्मण में भी **"असि त्रयोदशो मासः"** ऐसा वाक्य (४।३।१।५) आया है। वहाँ **"द्वादश वा वै त्रयोदश व संवत्सरस्य मासाः"** (२।२।३।२७) इत्यादि प्रकार के वाक्य भी अनेक स्थलों में पा जाते हैं (३।६।४।२४, ५।४।५।२३, ८।४।१।२५, १०।२।५।१५, १२।३।२।२, १३।५।१।१५) **"त्रयोदश मासाः संवत्सरः"** ऐसा उल्लेख काठकसंहिता में (२१।५, ३४।९) कपिष्ठल-कठसंहिता में (३१।२०) और मैत्रायणीयसंहिता में (१।११।८, ३।४।२) भी पाय जाता है। **"य एवाऽसावधिचरस् त्रयोदशो मासस् तमेव तदाप्नोति"** ऐसा उल्लेख जैमिनीयसामवेदब्राह्मण में (१।१३२) मिलता है। वहाँ अन्यत्र भी तेरहवें महीने क उल्लेख (२।२०, ३।३८६) है। तेरहवें महीने का उल्लेख सामवेदियों के पञ्चविंश-ब्राह्मण में भी (१०।३।२, २३।२।३) मिलता है। अथर्ववेदी शौनकियों के मन्त्रसंहित में (५।६।४, १३।३।८) और गोपथब्राह्मण में भी (१।५।५, २।१।२६) तेरहवें महीने क उल्लेख पाया जाता है।

उक्त तथ्य से और चान्द्र वर्ष में ही तेरहवाँ महीना हो सकने से वेदोक्त मुख्य वर्ष चान्द्र ही अवगत होता है।

तेरहवें महीने को सातवाँ ऋतु मानकर वर्ष में सात ऋतु माने जाने की बात भी ऋग्वेदादि वैदिक ग्रन्थों में पाई जाती है। ऋग्वेद के **"साकञ्जानां सप्तथमाहु-रेकजम्"** (१।१६४।१५) इत्यादि ऋचा में और **"सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रम्"** इत्यादि ऋचा में भी (१।१६४।२) सातवें ऋतु का उल्लेख व्याख्याकार वेङ्कटमाधव ने और सायण ने दिखाया है। **"सप्तर्तवः संवत्सरः"** इत्यादि रूप में सातवें ऋतु का उल्लेख शतपथब्राह्मण में अनेक स्थलों में पाया जाता है (६।६।१।१४, ८।४।१।१६, ८।४।१।१७, ८।४।१।२३, ८।४।१।२५, १०।२।५।१५, १२।३।२।१)। अथर्ववेदियों के गोपथब्राह्मण में भी **"सप्त वा ऋतवः संवत्सरस्य"** (१।५।५) ऐसा उल्लेख मिलता है। इससे भी वैदिकों का वर्ष मुख्य रूप में चान्द्र ही होने की बात पुष्ट होती है।

बारह चान्द्र मासों के दोदो पक्षों को लेकर चौबीस पक्षों का संवत्सर माने जाने की बात भी वेदो में अनेक स्थलों में आई है[1]। ऐसा उल्लेख शाङ्खायनीय

---

१. चतुर्विंशतिर् वै संवत्सरस्याऽर्धमासाः।
—शाङ्खायनब्राह्मण (१६, १९।८) और शाङ्खायनारण्यक (१।१, १९।८)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋग्वेद के ब्राह्मण में (९।६, १९।८) आया है। शाङ्खायनीय ऋग्वेद के आरण्यक में (१।१,२।५) भी ऐसा उल्लेख मिलता है। ऋग्वेदियों के ऐतरेयिब्राह्मण में भी **"चतुर्विंशत्यर्धमासो वै संवत्सरः"** ऐसा उल्लेख (१४।१ [३।३९], ३६।४[८।४]) प्राप्त होता है। **"चतुर्विंशतिरर्धमासाः संवत्सरः"** ऐसा उल्लेख तैत्तिरीयसंहिता में (५।१।८।५, ५।६।७।२, ७।४।१।३, ७।४।११।४, ७।५।१।३-४, द्र.– ७।४।२।५-६, ७।४।३।४) पाया जाता है और तैत्तिरीय-आरण्यक में (२।८।१) भी मिलता है। तैत्तिरीयब्राह्मण में भी **"चतुर्विंशत्यर्धमासः संवत्सरः"** ऐसा उल्लेख है (१।२।६।२)। **"चतुर्विंशतिर् वा अर्धमासाः संवत्सरः"** ऐसा उल्लेख मैत्रायणीय कृष्णयजुर्वेदसंहिता में प्राप्त होता है (३।४।६)। **"चतुर्विंशतिस् संवत्सरस्याऽर्धमासाः"** ऐसा उल्लेख काठक-कृष्णयजुर्वेद संहिता में (१०।७, २१।५, २२।१, ३३।२, ३३।३) और कपिष्ठलकठ-कृष्णयजुर्वेदसंहिता में (३१।२०) भी मिलता है। माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्ल-यजुर्वेदियों के शतपथब्राह्मण में **"चतुर्विंशतिर् वै संवत्सरस्याऽर्धमासाः"** ऐसा उल्लेख पाया जाता है (२।२।२।५, ५।४।५।२१, १२।३।२।२)। वहाँ **"चतुर्विंशत्यर्ध-मासो वै संवत्सरः"** (६।२।१।२१), **"संवत्सरो वाव योनिश् चतुर्विंशस् तस्य चतुर्-विंशतिरर्धमासाः"** (८।४।१।१८, द्र.– ८।४।१।१९,२०, २१, २२, २३, २४), **"तस्माच् चतुर्विंशत्यर्धमासः संवत्सरः"** (१०।४।२।१८) इत्यादि उल्लेख भी मिलते हैं। सामवेदियों के पञ्चविंशब्राह्मण में (६।३।४) और षड्विंशब्राह्मण में (३।४।२०,२१) भी **"चतुर्विंशतिरर्धमासाः संवत्सरः"** ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है। सामवेदियों के जैमिनीयब्राह्मण में **"चतुर्विंशत्यर्धमासास् संवत्सरः"** (२।४, ३।१७६) यह उल्लेख मिलता है। **"चतुर्विंशतिरर्धमासाः संवत्सरस्य"** ऐसा कथन अथर्ववेदियों के गोपथब्राह्मण में (१।५।५) भी मिलता है।

मनुस्मृति में (१।६६) भी चान्द्र मास का ही कालगणना में उल्लेख[1] देखे जाने से वैदिक परम्परा में मुख्य रूप में चान्द्र वर्ष का ही ग्रहण विदित होता है।

पुराणों में कूर्मपुराण में[2] चान्द्रमासों से ही वर्ष निष्पन्न होने की बात कही गई है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में **"तिथिपञ्चदशेनैव"** इत्यादि शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष के

---

१. पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस् तु पक्षयोः।
कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी॥—मनुस्मृति १।६६।

२. अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः।
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे॥—कूर्मपुराण १।५।८।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kaṭhmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्पष्ट उल्लेख से युक्त वचन से[1] भागवत में "पक्षः पञ्चदशाऽहानि" इत्यादि वचन से (३।११।१०-१२), मार्कण्डेयपुराण में "अहोरात्रं मुहूर्तानाम्" (४३।२४-२५) इत्यादि वचन से, वायुपुराण में पूर्वार्ध में "द्वौ पक्षौ तु भवेन् मासः" (५०।१७७) इत्यादि वचन से, विष्णुपुराण में "अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः" इत्यादि (१।३।९-१०) वचन से, शिवपुराण में "त्रिंशत्सङ्ख्यैरहोरात्रैर् मासः पक्षद्वयात्मकः" इत्यादि (७।१।८।५-७) वचन से, स्कन्दपुराण में "पक्षौ द्वौ तौ कृतो मासः" इत्यादि (५।१।४८।११) वचन से शुक्ल-कृष्णपक्षात्मक चान्द्र मास से ही वर्ष निष्पन्न होने की बात की गई है।

सुश्रुतसंहिता में भी सूत्रस्थान में "पञ्चदशाऽहोरात्राणि पक्षः। स द्विविधः शुक्लः कृष्णश् च। तौ मासः" इत्यादि वचन से (६।५) चान्द्र मान के आधार में ही वर्ष बताया गया है।

कौटलीय अर्थशास्त्र में भी कालगणना में पक्षयुक्त मास का उल्लेख (२।२०, ३।१, ९।१) होने से और "राजवर्षं मासः पक्षो दिवसश्च व्युष्टम्। वर्षा-हेमन्त-ग्रीष्माणां तृतीयसप्तमा दिवसोनाः पक्षाः शेषाः पूर्णाः" (२।६)'ऐसी व्यवस्था देखी जाने से और "पञ्चदशाऽहोरात्राः पक्षः, सोमाऽऽप्यायनश् शुक्लः, सोमा-ऽवच्छेदनो बहुलः, द्विपक्षो मासः" ऐसा उल्लेख (२।२०) पाए जाने से तथा मासों से ही वर्ष निष्पन्न होने की बात उल्लिखित होने से भी कालगणना में व्यवहार में भी चान्द्र वर्ष का ही वैदिक परम्परा में प्रचलन स्पष्ट होता है।

शतपथब्राह्मण में ही स्पष्ट रूप में "चन्द्रमसि ह्ययं संवत्सरऽ ऋतुभि-रासक्तः" (६।७।१।१९) इस वाक्य से चन्द्रमा को ही संवत्सर का नियामक बताया गया है। शतपथब्राह्मण में ही[2] एक सन्दर्भ में चान्द्रमासों से ही वर्ष निष्पन्न होने की बात बताई गई है। शतपथब्राह्मण में ही "एष वै (चान्द्रः) मासः परिप्लवमानः

---

१. तिथिपञ्चदशेनैव पक्षमानं प्रकीर्तितम्।
पक्षद्वयेन मासः स्याच् छुक्लकृष्णाभिधेन च।
ऋतुर् मासद्वयेनैव तत्षट्केनैव वत्सरः ॥—ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्मखण्ड ९६।५५-५६।

२. देवाश् च वाऽ असुराश् चोभये प्राजापत्याः प्रजापतेः पितुर् दायमुपेयुरेतावेवार्धमासौ य एवाऽऽपूर्यति तं देवा उपायन् योऽपक्षीयते तमसुराः। ते देवा अकामयन्त कथं न्विममपि संवृञ्जीमहि योऽयमसुराणामिति, तेऽर्चन्तः श्राम्यन्तश् चेरुस् तऽ एतं हविर्यज्ञं ददृशुर् यद् दर्शपूर्णमासौ, ताभ्यामयजन्त ताभ्यामिष्ट्वैतमपि समवृञ्जत यऽ एषोऽसुराणामासीत्, यदा वाऽ एता उभौ परिप्लवेतेऽ अथ मासो भवति, मासशः संवत्सरः, सर्वं वै संवत्सरः, सर्व-मेव तद् देवा असुराणां समवृञ्जत।—मा.वा.शुक्लयजुर्वेदशतपथब्राह्मण १।७।२।२२-२४।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संवत्सरं करोति" (११।२।५।४) इस वाक्य से भी चान्द्र मासों से ही वर्ष निष्पन्न होने का विषय प्रतिपादित है।

उक्त विवरण से वैदिक कालगणना की परम्परा में मुख्य रूप में चान्द्र वर्ष का ही ग्रहण होने की बात स्पष्ट होती है।

चान्द्र षष्टिसंवत्सरात्मक युगसङ्घों के वर्तमान प्रभव-विभवादि चान्द्रसंवत्सरों को और वर्तमान संवत्सर-परिवत्सरादि वैदिक चान्द्र वत्सरों को जानने की रीति भी स्पष्ट करके ही आए हैं (द्रष्टव्य- गत पृष्ठ ३१-३४)।

तथापि वर्तमान काल में प्रचलित सूर्यसिद्धान्त में चान्द्र वर्ष की उपेक्षा करके क्यों मेषादि राशि के आधार में मेषमासादि बारह महीनों से एक वर्ष निष्पन्न होने की बात[1] ही प्रमुख रूप में बताई गई? कैसे ऐसे ग्रन्थ को वैदिक परम्परा में श्रद्धा रखनेवाले द्विजातियों ने अपनाया? कैसे इस ग्रन्थ का प्राबल्य स्थापित हुआ? यह भी भारतवर्षीय ज्योतिष की कालगणना में उपस्थित होनेवाला एक बडा ज्वलन्त प्रश्न है।

---

१. द्विराशिनाथा ऋतवस् ततोऽपि शिशिरादयः।
मेषादयो द्वादशैते मासास् *तैरेव* वत्सरः।—मानाध्याय, श्लोक १०।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का पाँचवाँ ज्वलन्त प्रश्न

सौरचान्द्र अयन की उपेक्षा क्यों?

मुख्य वैदिक परम्परा की कालगणना में युग, संवत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि सब ही मुख्य रूप में चान्द्र और सूर्यगतिसापेक्ष भी होने से गौण रूप में सौर भी हैं। अत एव इन सबको सौर-चान्द्र माना जाता है। युग के प्रतिपादन में लगधमुनि ने चान्द्र मान को लेकर और सौर मान को लेकर भी युग को बताया है। इससे युग का सौरचान्द्रत्व स्पष्ट होता है। संवत्सर का सौर-चान्द्रत्व अधिमास-व्यवस्था से भी अवगत होता है। इससे संवत्सर केवल चन्द्र की गति के आधार में ही नहीं घूमता है किन्तु सूर्य से भी नियन्त्रित होता है यह बात अवगत होती है। इसी से वैदिक वर्ष मुख्य रूप में चान्द्र होने पर भी सौर भी होता है, यह बात ज्ञात होती है। अत एव वैदिक वर्ष सौर-चान्द्र माना जाता है। यद्यपि वेदाङ्ग ज्योतिष में सौर अयन के प्रतिपादक **"घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः"** इत्यादि (८-११ श्लोक, ४०-४१ श्लोक) अनेक वचन हैं ही, तथापि वे वचन सौर-चान्द्र अयन के ज्ञान के साधन के रूप में ही आए हुए ज्ञात होते हैं। वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ यज्ञकालरूप प्रयोजन के सिद्धि के लिए ही विरचित है। वहाँ **"यज्ञकालार्थसिद्धये"** ऐसा कहा ही गया है (श्लोक २)। लगधमुनि ने भी अयन के अन्त में ही अधिमास योजित करने की व्यवस्था का प्रतिपादन करके अयनों में भी सौरचान्द्रत्व स्थापित किया ही है—

द्व्यूनं द्विषष्टिभागेन दिनं सौराच् च पार्वणम्।
यत्कृतावुपजायेते मध्येऽन्ते चाऽधिमासकौ॥—वे. ज्यो., श्लो. ३७।

वर्ष का दो अयनों से युक्तत्व भी लगधमुनि ने **"त्रिशत्यह्नाम्"** इत्यादि श्लोक से (श्लोक २८) बताया ही है। श्रौतसूत्रकार मुनि भी अयन के आदि में अथवा अन्त में अथवा वर्ष-वर्ष में किए जानेवाले निरूढपशुबन्ध याग का चान्द्रमास के तिथिविशेष में कर्तव्यत्व बताते ही हैं। वैदिकों के सौरचान्द्र ऋतु के और सौरचान्द्र वर्ष के मध्य में आनेवाले अयन का भी सौर-चान्द्रत्व ही युक्ति-सङ्गत होने से भी वैदिकों का अयन भी सौरचान्द्र ही माना जाना चाहिए।

---

१. **माघशुक्लप्रपन्नस्य पौषकृष्णसमापिनः।**
युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते॥—वेदाङ्गज्योतिष, श्लो. ५।

त्रिशत्यह्नां सषट्षष्टिरब्दः षट् चर्तवोऽयने।
मासा द्वादश सौराः स्युरेतत् पञ्चगुणं युगम्॥—वेदाङ्गज्योतिष, श्लो. २८।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यद्यपि अयनमुख में कर्तव्य निरूढपशुबन्ध याग के अनुष्ठान में कर्कोपाध्याय ने कात्यायनश्रौतसूत्र के व्याख्यान में (६।१।२) पौर्णमासी की और अमावास्या की अपेक्षा न होने की बात बताई है, वहाँ देवयाज्ञिक ने भी मूल वैदिक वाङ्मय में मेषादिराशिमूलक सङ्क्रान्तियों के उल्लेख के सर्वथा अभाव में ध्यान न देकर सङ्क्रान्ति के पूर्व दिन में अथवा उत्तरदिन में निरूढपशुबन्धयाग करने की बात कही है, और विद्याधर गौड ने कात्यायन-श्रौतसूत्र की सरला टीका में भी (६।१।२) देवयाज्ञिक का ही अनुसरण करके[1] सङ्क्रान्ति के दिन में ही निरूढपशुबन्ध याग करने की बात बताई है, तथापि आपस्तम्ब-श्रौतसूत्र में[2] और बौधायन-श्रौतसूत्र में भी[3] पूर्णिमा का अथवा अमावास्या का उल्लेख होने से निरूढपशुबन्ध याग का दिन भी पूर्णिमा वा अमावास्या ही होने की बात अवगत होती है। वैखानस-श्रौतसूत्र में तो[4] स्पष्ट रूप से ही पूर्णिमा का अथवा अमावास्या का निरूढपशुबन्ध याग करने के लिए प्राथमकल्पिकत्व (मुख्यकालत्व) बताया गया है। सत्याषाढश्रौतसूत्र के[5] **"आवृत्तिमुखआवृत्तिमुखे"** इस अंश के व्याख्यान में महादेवकृत प्रयोगवैजयन्ती नाम की व्याख्या में अपने मत के रूप में **"सङ्क्रान्त्यनन्तरपर्वणि"** कहकर महादेव ने चान्द्र पर्व में ही निरूढपशुबन्ध याग होने की बात बताई है। माधवाचार्य ने कालमाधव ग्रन्थ के संवत्सरप्रकरण में[6] निरूढपशुबन्ध याग के लिए चान्द्र संवत्सर ही लिए जाने की बात बताई है। इस लिए निरूढपशुबन्ध के लिए विहित अयनमुख भी चान्द्र ही लिए जाने की बात अवगत होती

---

१. दक्षिणायनसङ्क्रान्तिदिने उत्तरायणसङ्क्रान्तिदिने वा प्रतिवर्षं यावज्जीवं पशुना यजेत।

२. सर्वाल्ँ लोकान् पशुबन्धयाज्यभिजयति, तेन यक्ष्यमाणोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां वा षड्ढोतारमनुद्रुत्याऽऽहवनीये सग्रहं जुहोति सूर्यं ते चक्षुरिति।—आपस्तम्बश्रौ.सू. ७।१।१–२।

३. बौधायनश्रौतसूत्र में "पशुना यक्ष्यमाणो भवति" ऐसा कहकर "अथाऽमावास्येन हविषेष्ट्वा" (४।१) इत्यादि कहा गया है।

४. ऐन्द्राग्नेन सौर्येण प्राजापत्येन वा निरूढपशुबन्धेन प्रतिसंवत्सरं प्रत्ययनं प्रतिषण्मासं वा यक्ष्यमाणः पौर्णमास्याममावास्यायामापूर्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे वा यजेत।
—वैखानसश्रौतसूत्र १०।१।

५. ऐन्द्राग्नेन पशुना षाण्मास्येषाण्मास्ये यजत आवृत्तिमुखआवृत्तिमुखे संवत्सरेसंवत्सरे वा।
—सत्याषाढश्रौतसूत्र ४।१।१।

६. यच्च निरूढपशुबन्धप्रकरणे श्रूयते— "तेन संवत्सरेसंवत्सरे यजेत" इति "पशुना संवत्सरो नाऽतीयात्" इति च। तत्राऽपि चान्द्र एव (संवत्सरः) द्रष्टव्यः, "सर्वाल्ँ लोकान् पशुबन्धयाज्यभिजयति तेन यक्ष्यमाणोऽमावास्यायां वा पौर्णमास्यां वा" इति कल्पसूत्रकारैश्चान्द्रतिथौ तदनुष्ठानविधानात्।—कालमाधव, चौखम्भासंस्कृतसंस्थान, २०४५ वै., पृ.२९।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। दर्शयाग के अथवा पौर्णमासयाग के दिन में पशुबन्ध याग होने की बात को सूचित करनेवाले आङ्गिरसस्मृति के[1] वचन से भी वही बात विदित होती है।

पुराणादि ग्रन्थों में दी गई अयन-परिभाषा से भी वैदिक परम्परा में अयन भी चान्द्र अथवा सौरचान्द्र ही लिए जाने की बात स्पष्ट होती है। पुराणों में दो दो चान्द्र मासों के तीन ऋतुओं से अथवा छः चान्द्र मासों से ही एक अयन होने की बात बताई गई है। कूर्मपुराण में[2] दो पक्षों से युक्त छः चान्द्र मासों से एक अयन बनने की बात स्पष्ट रूप में बताई गई है। यही बात पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड में (३।६) भी है। नारदीयपुराण के[3] वचन से भी वही बात अवगत होती है। भागवत के **"पक्षः पञ्चदशाऽहानि शुक्लः कृष्णश् च मानद"** (३।११।१०-११) इत्यादि वचन में भी छः चान्द्र मासों से ही एक अयन होने की बात कही गई है। मार्कण्डेयपुराण के[4] वचन से भी वही बात बताई गई है। विष्णुपुराण में भी[5] कूर्मपुराण और पद्मपुराण की तरह ही छः चान्द्र महीनों से एक अयन होने की बात भी बताई गई है। शिवपुराण में भी[6] छः चान्द्र मासों से एक अयन होने की बात स्पष्ट रूप में ही कही गई है। स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड में भी[7] दो पक्षों से युक्त छः चान्द्र मासों से एक अयन होने की बात प्रतिपादित की गई है। हरिवंश में भी[8] दो पक्षों से

---

१. पौर्णमासं च दर्शं च पशुबन्धं च तद्दिने।
समागतं समाप्याऽऽदौ पश्चाच् छ्राद्धं समाचरेत्॥
—आङ्गिरसस्मृति(२), पूर्वाङ्गिरस, श्लो.३०-३१, स्मृतिसन्दर्भ, पञ्चम भाग, पृ.२९५२।

२. अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः।
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।—कूर्मपुराण १।५।८।

३. त्रिंशद्दिनैर् भवेन् मासः पक्षद्वितयसंयुतः।
ऋतुर् मासद्वयेन स्यात् तत्त्रयेणाऽयनं स्मृतम्॥—नारदीयपुराण १।५।२३-२४।

४. अहोरात्रैश् च त्रिंशद्भिः पक्षौ द्वौ मास उच्यते।
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे॥—मार्कण्डेयपुराण ४३।२४-२५।

५. अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः।
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे॥—विष्णुपुराण १।३।९-१०।

६. ज्ञेयं पित्र्यमहोरात्रं मासः कृष्णसितात्मकः।
मासैस् तैरयनं षड्भिर् वर्षं द्वे चाऽयने मतम्॥—शिवपुराण ७।१।८।६-७।

७. तैः पञ्चदशभिः पक्षो द्विपक्षो मास उच्यते।
मासैश्चैवाऽयनं षड्भिर् वर्षं स्यादयनद्वये॥—स्कन्द.प्रभास.१।१९।११-१२; द्र.-१।१०५।३६।

८. अहोरात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभिशब्दितः।
द्वौ पक्षौ तु स्मृतो मासो मासौ द्वावृतुरुच्यते॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युक्त दो चान्द्र मासों से एक ऋतु और वैसे तीन ऋतुओं से एक अयन होने की बात बताई गई है। अत्यन्त प्राचीन आर्ष आयुर्वेदग्रन्थ सुश्रुतसंहिता के सूत्रस्थान में भी चान्द्र मासों से बननेवाले तीन ऋतुओं से एक अयन बनने की बात बताई गई है (६।४-९)। उसमें यह विशेषता है कि वहाँ अयन को सौरचान्द्र रूप में बतानेवाला **"त एते शीतोष्णवर्षलक्षणाश् चन्द्राऽऽदित्ययोः कालविभागकरत्वादयने द्वे भवतो दक्षिणमुत्तरं च"** (६।७) यह वाक्य भी है। अमरकोश में भी[1] शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष से बननेवाले दोदो मासों से एक ऋतु होने की और वैसे तीन ऋतुओं से एक अयन होने की बात बताई गई है। इन सब बातों से वैदिक परम्परा में अयन भी मुख्य रूप में चान्द्र और गौण रूप में सौर माने जाने की बात स्पष्ट होती है।

यहाँ पर यह भी समझना उचित है कि हमने पक्षशब्द से पुराणों के वचनों में चान्द्र मास के शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष लिए हैं। और उसी आधार में उन वचनों में प्रतिपादित मासों को चान्द्र और उन चान्द्र मासों में आधृत होने से ऋतुओं को और अयन को भी मुख्य रूप में चान्द्र माना है। यद्यपि सोमाकर से प्रदर्शित (वेदङ्गज्योतिषव्याख्या, श्लोक ११) गर्गवाक्यों में सावन मास के अर्ध को, और सौर मास के अर्ध को, चान्द्र मास के अर्ध को और आर्क्ष मास के अर्ध को भी पक्ष कहा गया है, और माधवाचार्य ने कालमाधव ग्रन्थ के द्वितीय प्रकरण में पक्षनिरूपण के सन्दर्भ के अन्त में भी **"रूढो वाऽयं पक्षशब्दः। स च द्वेधा विभक्तस्य मासस्यैकमर्धं ब्रूते"** इत्यादि कहकर किसी प्रकार के भी मास के अर्ध को पक्ष कहे जाने की बात का सा उल्लेख किया है, तथापि लोक में कालवाचक पक्षशब्द का चान्द्र मास के शुक्लपक्ष-कृष्णपक्षरूप पक्षों में ही प्रसिद्ध होने से और वेद में भी ऐतरेयिब्राह्मण में[2], शाङ्खायनीयब्राह्मण में[3], शाङ्खायनीयारण्यक में[4], माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदियों के शतपथब्राह्मण में[5]

अब्दं द्व्ययनमुक्तं च अयनं त्वृतुभिस् त्रिभिः।
दक्षिणं चोत्तरं चैव सङ्ख्यातत्त्वविशारदैः ॥—हरिवंश १।८।५,६।

१. पक्षौ पूर्वापरौ शुक्ल-कृष्णौ मासस् तु तावुभौ।
द्वौद्वौ मार्गादिमासौ स्यादृतुस् तैरयनं त्रिभिः ॥—अमरकोश १।४।१२-१३।

२. तस्मादापूर्यमाणपक्षेषु यजन्त एतदेवोपेप्सन्ते।—ऐतरेयि-ब्राह्मण १९।५ (४।२७)।

३. यद्यु नक्षत्रमुपेप्सेत् पूर्वपक्षे नक्षत्रमुदीक्ष्य यस्मिन् नक्षत्रे कामयेत तस्मिन् यजेत।—४।१२।

४. शुद्धपक्षे वा पुण्ये नक्षत्रे।—शाङ्खायनीयारण्यक ४।३।

५. • य एवाऽऽपूर्यतेऽर्धमासः स देवा योऽपक्षीयते स पितरः।—मा.वा.शु.य.वे.शतपथ २।१।३।१।
• अथाऽस्याऽऽपूर्यमाणपक्षे सर्वोऽग्निश् चीयते।—मा.वा.शतपथब्राह्मण ६।२।२।२८।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तैत्तिरीयसंहिता में[1], काठकसंहिता में (७।५) और कपिष्ठलकठसंहिता में (५।४)[2] जैमिनीय-सामवेदब्राह्मण में[3] और ताण्डिब्राह्मण में[4] भी एक ही प्रकार के वाक्य तथा अन्य श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्रादिवाक्यों में भी पक्षशब्द का चान्द्र महीनों के पक्ष ही प्रयोग देखे जाने से पुराणों में भी पक्षशब्द चान्द्र मास के पक्षों को बताने के लिए ही प्रयुक्त अवगत होता है। कई प्रयोगों में पक्ष के शुक्ल और कृष्ण विशेषण भी प्रयुक्त होने से तथा कई प्रयोगों में आपूर्यमाण और अपक्षीयमाण शब्द प्रयुक्त होने से उन स्थलों में पक्ष का चान्द्रमासपक्षत्व अत्यन्त स्पष्ट है। इस हेतु अनेक स्थल में अयन की परिभाषा में चान्द्र मास का और चान्द्र ऋतु का ग्रहण अत्यन्त स्पष्ट है। अत एव वहाँ अयन भी मुख्य रूप में चान्द्र ही अवगत होता है। अयन में सौर गति से नियन्त्रितत्व भी होने से वैदिक परम्परा की काल गणना में अयन भी सौरचान्द्र ही लिया जाता है। लगधमुनि ने भी अयनान्त में ही अधिकमास जोडने की व्यवस्था दिखाकर अयन को भी सौर-चान्द्र माने जाने की व्यवस्था स्पष्ट की है। यद्यपि अर्वाचीन ज्योतिषियों के अत्यधिक प्रभाव से माधवाचार्य ने कालमाधव ग्रन्थ में अयन को सौर माना है तथापि उनके समय में अयन को चान्द्र माननेवाले विद्वान् भी रहने की बात उनके 'कोई तो चान्द्र मान से दो अयन मानते हैं' ऐसा बतानेवाले **"केचित् तु चान्द्रमानेनाऽयनद्वयमभ्युपगच्छन्ति"** इस वाक्य से (पृ.३७) विदित होती है।

- तस्मात् पञ्चदशाऽऽपूर्यमाणस्य रूपाणि पञ्चदशाऽपक्षीयमाणस्य।—श.ब्रा.१०।४।२।१७।
- चन्द्रमा वै सोमो देवानामन्नं तं पौर्णमास्यामभिषुण्वन्ति सोऽपरपक्षेऽपऽ ओषधीः प्रविशति —माध्यन्दिनीयवाजसनेयिशुक्लयजुर्वेदशाखाशतपथब्राह्मण ११।१।५।
- या आपूर्यमाणपक्षस्य रात्रयस् ताः सर्वाः पौर्णमासीं समवयन्ति याऽ अपक्षीयमाणपक्षस्य रात्रयस् ताः सर्वाऽ अमावास्यां समवयन्ति।—मा.वा.शु.य.वे.शतपथब्राह्मण ११।१।७।४।
- तेऽर्चिरभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरह्नऽआपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद् यान् षण् मासानुदङ्ङादित्य एति।—मा.वा.शु.य.वे.शतपथब्राह्मण १४।९।१।१८।
- ते धूममभिसम्भवन्ति धूमाद् रात्रिं रात्रेरपक्षीयमाणपक्षमपक्षीयमाणपक्षाद् यान् षण् मासान् दक्षिणाऽऽदित्य एति।—मा.वा.शु.य.वे.शतपथब्राह्मण १४।९।१।१९।
- उदगयनऽ आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे द्वादशाहमुपसद्व्रती भूत्वा।—शतपथब्राह्मण १४।९।३।

१. पूर्वपक्षे सुत्या सम्पद्यते पूर्वपक्षं मासा अभिसम्पद्यन्ते ते पूर्वपक्ष उत्तिष्ठन्ति।—तै.सं.७।४।८।
२. अग्नीषोमीयया पूर्वपक्ष उपतिष्ठेत।...अग्नीषोमा एवैनं पूर्वपक्षाय परिदत्त इन्द्राग्नी अपरपक्षाय।
३. पञ्चदशाऽऽपूर्यमाणस्याऽर्धमासस्य रात्रयः।—जैमिनीयब्राह्मण १।२५१।
४. तमपक्षीयमाणपक्षं पौर्णमासेन यन्ति।—ताण्डिकौथुमराणायनीय-पञ्चविंशब्रा.२५।१०।८।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उक्त विवरण से मूल वैदिक परम्परा की कालगणना में अयन भी चान्द्र अथवा सौरचान्द्र माने जाने की बात स्पष्ट होती है।

उक्त शास्त्रीय वस्तुस्थिति में भास्कर ने सिद्धान्तशिरोमणि में **"वर्षाऽयनर्तु-युगपूर्वकमत्र सौरात्"** (१।१।३१) ऐसा कहकर अयन को केवल सौर कैसे माना और भास्कर को ही मानकर हेमाद्रि-माधव-कमलाकरादि धर्मशास्त्रनिबन्धकारों ने भी अयन को केवल सौर कैसे माना यह ज्वलन्त प्रश्न उपस्थित होता है।

उसमें भी मा.वा.शु.य.वे.शतपथब्राह्मण में आए हुए एक अर्थवाद-प्रसङ्ग को निमित्त बनाकर अथवा केवल एक प्रकार की भौतिक दृष्टि को लेकर सूर्य के उत्तरगोलावलम्बन को उत्तरायण मानने की दृष्टि भी सूर्यसिद्धान्तादि में पाई जाती है। शतपथब्राह्मण में **"वसन्तो ग्रीष्मो वर्षास् ते देवाऽ ऋतवः, शरद् धेमन्तः शिशिरस् ते पितरः"** (२।१।३।१) इत्यादि वचन को देखकर कोई सूर्य का उत्तरगोलावलम्बन को ही उत्तरायण मानने की बात करते हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी[1] सूर्य के उत्तरगोलावलम्बन को देवताओं का दिन और दक्षिणगोलावलम्बन को देवताओं की रात्रि कहा गया है। वहाँ द्वितीयखण्ड में भी ६७वें अध्याय में (२६५ पत्र पूर्वपृष्ठ) ऐसी बात आई है। ऐसी ही बात आधुनिक प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त में भी भूगोलाध्याय में[2] बताई गई है। सिद्धान्तशिरोमणि में भी सूर्य-सिद्धान्त के उक्त कथन का समर्थन करते हुए भास्कर ने गोलाध्याय के त्रिप्रश्न-वासना के प्रकरण में ऐसी ही बात की है[3]।

इसमें यह विचारणीय है कि क्या वासन्त विषुव से शारद विषुव[4] तक सूर्य का उत्तरगोलावलम्बन ही उदगयन (उत्तरायण) माना जाता है अथवा सूर्य के

---

१. ऋतुत्रयं चाऽयनं स्यात् तद्द्वयं च समा स्मृता।
देवतानामहोरात्रं स च राम प्रकीर्तितः॥
मेषादिषट्कगे सूर्ये तेषां दिवस उच्यते।
तुलादिषट्कगे सूर्ये तेषां रात्रिः प्रकीर्तिता॥—१।७३।१२-१३।

२. देवासुरा विषुवति क्षितिजस्थं दिवाकरम्।
पश्यन्त्यन्योन्यमेतेषां वामसव्ये दिनक्षपे॥—श्लोक ४७।

३. दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं निशेतरत् सांहितिकैः प्रकीर्तितम्।
दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन् मतं निशा तथा तत्फलकीर्तनाय तत्॥
द्वन्द्वान्तमारोहति यैः क्रमेण तैरेव वृत्तैरवरोहतीनः।
यत्रैव दृष्टः प्रथमं स देवैस् तत्रैव तिष्ठन् न विलोक्यते किम्॥—श्लोक ११,१२।

४. विषुव-दिन कहने से जिस दिन में दिन और रात बराबर होते हैं वह दिन समझा जाता है। ऐसे दिन एकवर्ष में दो होते हैं, ये वासन्तविषुव और शारदविषुव कहे जाते हैं।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्तराभिमुखीभाव के प्रारम्भ से दक्षिणाभिमुखीभाव तक उदगयन (उत्तरायण) माना जाता है?

इस विषय में मैत्रायणीय आरण्यक, बौधायन-श्रौसूत्र, वेदाङ्गज्योतिष, कौटलीयार्थशास्त्र, पाणिनीयव्याकरणभाष्य, चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, लौगाक्षि-स्मृति, ब्राह्मण्डपुराण, वायुपुराण, विष्णुपुराण इत्यादि ग्रन्थों के वचनों के विचार से सूर्य के उत्तराभिमुखीभाव के प्रारम्भ से दक्षिणभिमुखीभाव तक ही उदगयन (उत्तरायण) मानने का पक्ष ही शास्त्रसम्मत देखा जाता है। उन ग्रन्थों के वचनों को भी देखिए—

सूर्यो योनिर् वै कालस्य तस्यैतद् रूपं यन् निमेषादिकालात् सम्भृतं द्वादशात्मकं वत्सरम्, एतस्याऽऽग्नेयमर्धमर्धं वारुणम् मघाद्यं श्रविष्ठार्धमाग्नेयं क्रमेणोत्क्रमेण सार्पाद्यं श्रविष्ठार्धान्तं सौम्यम्।—मैत्रायणीयारण्यक ६।१४।

षट्सुषट्सु मासेष्वाहिताऽग्निना पशुना यष्टव्यं भवति, उभे काष्ठे अभियजेत, माघमासे धनिष्ठाभिरुत्तरेणैति भानुमान्, अर्धाश्लेषस्य श्रावणस्य दक्षिणेनोपनिवर्तत इत्येते काष्ठे भवतः।—बौधायनश्रौतसूत्र २६।२९।

स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदाऽऽदियुगं माघस् तपःशुक्लोऽयनं ह्युदक्॥

—वेदाङ्गज्योतिष श्लो.६।

प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पाऽर्धे दक्षिणाऽर्कस् तु माघश्रावणयोः सदा॥ —वहीं श्लो.७।

शिशिराद्युत्तरायणम्, वर्षादि दक्षिणायनम्। —कौटलीय अर्थशास्त्र २।२०

शिशिरवसन्तावुदगयनस्थौ। —पाणिनीयव्याकरणभाष्य २।२।३४, वा.३।

तत्राऽऽदित्यस्योदगयनमादानं च त्रीनृतूञ् छिशिरादीन् ग्रीष्मान्तान् व्यवस्येत्। —चरकसंहिता, सूत्रस्थान ६।४।

चन्द्राऽऽदित्ययोः कालविभागकरत्वादयने द्वे भवतो दक्षिणमुत्तरं च, तयोर् दक्षिणं वर्षाशरद्धेमन्ताः, ... उत्तरं च शिशिरवसन्तग्रीष्माः।

—सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान ६।७।

तदुत्तरायणे कार्यं माघादिष्वेव केवलम्।
मुख्येषु कुर्याद् गौणेषु न कदाचन तां क्रियाम्॥

—लौगाक्षिस्मृति, मनसुखरायमोरमुद्रापित स्मृतिसन्दर्भ, षष्ठ भाग, पृ.२४४।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तपस्-तपस्यौ मधु-माधवौ च शुक्रः शुचिश् चाऽयनमुत्तरं स्यात्।
नभोनभस्याविषऊर्जसंज्ञौ सहःसहस्याविति दक्षिणं स्यात्॥
—ब्रह्माण्डपुराण पूर्वभाग २१।१५१, वायुपुराण १।५०।२०१,
विष्णुपुराण २।८।८१।

कर्कटावस्थिते भानौ दक्षिणायनमुच्यते।
उत्तरायणमप्युक्तं मकरस्थे दिवाकरे॥—विष्णुपुराण २।८।६८।

उक्त विवरण से अयन के विषय में सिद्धान्तशिरोमणि में आई हुई भास्कर की "वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरात्" (१।१।३१) यह अयन को केवल सौर बतानेवाली उक्ति मूल वैदिक परम्परा में अयन भी सौर-चान्द्र ही होने से मूल वैदिक परम्परा की काल गणना की दृष्टि से अयथार्थ ही ठहरती है।

ऐसे विषयों में वैदिक परम्परा के ज्योतिषियों का और धर्मशास्त्रियों का क्यों ध्यान नहीं जाता है। जैसे अर्वाचीन ज्योतिषियों के सौर मासों की सौर सङ्क्रान्ति में सूर्य का सङ्क्रमण दिन में अपराह्ण में अथवा रात में अर्धरात्रि से पहले होने पर पूर्ववर्ती दिन–प्रारम्भ के सूर्योदय से ही सौर मेषमासादि मासों के दिनों की गणना होती है और अर्धरात्रि से पीछे रात में ही सूर्यसङ्क्रमण होने पर भी सौर मासों के दिनों की गणना उत्तरवर्ती सूर्योदयकाल से ही होती है, वैसे ही वैदिक परम्परा की कालगणना में भी सूर्य का उत्तराभिमुखीभाव पीछे होने पर भी सूर्य के उत्तराभिमुखीभाव से पहले की आसन्न शुक्लप्रतिपदा से ही उत्तरायण की गणना होती है, और सूर्य के उत्तराभिमुखीभाव अत्यन्त निकटवर्ती (५-६ दिन ही पहले) होने पर सूर्य के उत्तराभिमुखीभाव से पीछे आनेवाली सन्निहित शुक्लप्रतिपदा से भी उत्तरायण की गणना होती है। ऐसे विषयों में वैदिक परम्परा के ज्योतिषी लोग और धर्मशास्त्री लोग क्यों ध्यानं नहीं देते हैं? ऐसी अविवेकपूर्ण और अपनी मूल कालगणना परम्परा को अज्ञान और विस्मृति के गर्त में डाल देनेवाली स्थिति भारतवर्ष में कैसे आई और कब से आई? यह भी वैदिक परम्परा के ज्योतिष की कालगणना के विषय में उठनेवाला एक बडा ही ज्वलन्त प्रश्न है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का छठा ज्वलन्त प्रश्न

चान्द्र ऋतुओं का अनादर क्यों?

वैदिक धार्मिक कृत्यों में ऋतुज्ञान की आवश्यकता होती है। शिशिर ऋ में अग्नि का आधान सभी वर्णों के लिए उचित होने की बात और वसन्त ब्राह्मण के लिए, ग्रीष्म में क्षत्रिय के लिए, शरद् में वैश्य के लिए अग्नि क आधान उचित होने की बात भी काठकसंहिता में (८।१) देखी जाती है। आश्व लायनश्रौतसूत्र, शाङ्खायनश्रौतसूत्र, बौधायनश्रौतसूत्र, आपस्तम्बश्रौतसूत्र, कात्य यनश्रौतसूत्र इत्यादि श्रौतसूत्रों में भी उस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। बौधायन गृह्यसूत्र में वसन्त ऋतु में ब्राह्मण बटु का, ग्रीष्म ऋतु मे क्षत्रिय बटु का, शरद् ऋ में वैश्य बटु का और वर्षा ऋतु में रथकार बटु का उपनयन (व्रतबन्ध वा जनेऊ करने का विधान है। इस प्रकार के ऋतुसापेक्ष विधान विभिन्न वैदिक ग्रन्थों मिलते हैं। उसके लिए ऋतुओं का परिचय और गणनाप्रकार आवश्यक होता है।

ऋतुओं का परिचय देने का कार्य ऋतुलक्षणों के वर्णन से शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थों में किया गया है। इसका विवरण हमने वाराणसी के चौखम्ब विद्याभवन से प्रकाशित (२००५) वेदाङ्गज्योतिष के कौण्डिन्न्यायनव्याख्यान (श्लो. १०, पृ.२७३-२७४) दिया है। ऋतुओं की गणना का आधार लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष के **"माघशुक्लप्रपन्नस्य"** (श्लोक ५) इत्यादि श्लोक में औ **"स्वराक्रमते सोमाऽर्कौ"** (श्लोक ६) इत्यादि श्लोक में मुख्य रूप में प्रतिपादित है और उसका दिक्प्रदर्शन **"वसुस् त्वष्टा"** इत्यादि श्लोक में (श्लोक १०) औ **"एकान्तरेऽह्नि"** इत्यादि श्लोक में (श्लोक ११) किया गया है। साथ ही **"घर्म वृद्धिरपां प्रस्थः"** इत्यादि श्लोक में (श्लोक ८), **"प्रथमं सप्तमम्"** इत्यादि श्लो में (श्लोक ९), **"विषुवन्तम्"** इत्यादि श्लोक में (श्लोक २३), **"त्रिंशत्यह्ना** इत्यादि श्लोक में (श्लोक २८), **"ससप्तकं भयुक् सोमः"** इत्यादि श्लोक (श्लोक ३९) और **"यदुत्तरस्याऽयनतो गतं स्यात्"** इत्यादि श्लोक में (श्लोक ४० भी सौर ऋतु से सम्बन्ध रखनेवाली बातें बताई गई हैं। इन प्रसङ्गों में अ श्लोकों में तो सौर ऋतुओं का और चान्द्र ऋतुओं का परस्पर सम्बन्ध दिखाने क काम ही हुआ है। **"माघशुक्लप्रपन्नस्य"** इत्यादि में (श्लोक ५) और **"स्वराक्रमे सोमार्कौ"** इत्यादि श्लोक में (श्लोक ६) ही ऋतुओं की गणना का आधार निर्दि है। उन श्लोकों में भी **"स्वराक्रमेते सोमार्कौ"** इत्यादि श्लोक में ऋतुगणना क मुख्य आधार स्पष्ट किया गया है। उससे हम लोगों को समझना चाहिए कि व

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के सब से छोटे दिन में (सब से न्यून दिनमानवाले दिनों के मध्य के दिन में) पडनेवाली तिथि को देखकर यदि वह तिथि शुक्लपक्ष की तिथि है तो उस शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से वैदिक चान्द्र तपोमास का (वैदिक चान्द्र माघमास का) प्रारम्भ मानना चाहिए, यदि वह तिथि कृष्णपक्ष की तिथि है तो नवमी अथवा नवमी से पहले की तिथि होने पर उस कृष्णपक्ष से पूर्ववर्ती शुक्लपक्ष की प्रतिपदा में ही वैदिक चान्द्र तपोमास का (वैदिक चान्द्र माघमास का) प्रारम्भ मानना चाहिए, नवमी से पीछे की दशम्यादि तिथि होने पर उस कृष्णपक्ष से पूर्ववर्ती शुक्लप्रतिपदा से प्रवृत्त होकर अमावास्या में समाप्त होनेवाला चान्द्र मास वैदिक **चान्द्र अधिक सहस्यमास** अथवा वैदिक **चान्द्र अधिक वा द्वितीय पौषमास (मलमास)** होता है और उस अमावास्या के बाद के शुक्लप्रतिपदा में वैदिक चान्द्र तपोमास (वैदिक चान्द्र माघमास) प्रवृत्त होता है। जब इस प्रकार वैदिक चान्द्र तपोमास निरूपित होता है तब वैदिक चान्द्र तपस्य इत्यादि मास सुख से निरूपित होते हैं। इसी लिए वर्ष का आदि निरूपित होने पर ही अयन ऋतु, पक्ष, तिथि निरूपित हो सकनेवाली बात को सोमाकर से वेदाङ्गज्योतिष के दशवें श्लोक की व्याख्या में उद्धृत गर्गवचन स्पष्ट करता है[1]। उस प्रकार वर्ष के आदि का तपोमास निरूपित होने पर तपोमास-तपस्यमासों से शिशिर ऋतु, मधुमास-माधवमासों से वसन्त ऋतु इत्यादि रूप से ऋतुओं का निरूपण और गणना करना भी आसान हो जाता है। प्रचलित तिथिपत्रों में (पञ्चाङ्गों में) जिस दिन दर्शश्राद्ध लिखा गया होता है, सामान्यतया उस दिन में वैदिक चान्द्रमास पूर्ण होता है, उत्तर दिन में शुक्ल प्रतिपदा और नवीन वैदिकमास की प्रवृति मानी जाती है। इस प्रकार वैदिक ऋतुओं का निरूपण होता है।

वैदिक ऋतु मुख्य रूप में चान्द्र हैं। अधिकमास की व्यवस्था से चान्द्र ऋतु भी सूर्यगतिस्थिति से भी सम्बद्ध हो जाते हैं। अत एव वैदिक ऋतुओं को सौर-चान्द्र भी कहा जा सकता है। मुख्य रूप में तो वैदिक ऋतु चान्द्र ही हैं।

शैशिरीय-शाकल-ऋग्वेदसंहिता के **"पूर्वापरं चरतो माययैतौ"** (१०।८५।१८) इत्यादि मन्त्र में **"ऋतूँरन्यो विदधज् जायते पुनः"** इस अंश से चन्द्र का ऋतु-कारकत्व बताए जाने की बात सायण से भी प्राचीन ऋग्वेदव्याख्याकार वेङ्कट-

---

१. **अयनान्यृतवो मासाः पक्षास् त्वृक्षं तिथिर् दिनम्।**
तत्त्वतो नाऽधिगम्यन्ते यदाऽब्दो नाऽधिगम्यते॥
यदा तु तत्त्वतोऽब्दस्य क्रियतेऽधिगमो बुधैः।
तदैवैषाममोहः स्यात् क्रियाणाञ् चाऽपि सर्वशः॥—गर्गवचन, वे.ज्यो.भाष्य, श्लो. १०।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

माधव ने और सायणविद्वन्मण्डली ने भी बताई है। तैत्तिरीयारण्यक में स्पष्ट रू में ही[1] चन्द्रमा को ऋतुओं का कारक बताया गया है। इन ही श्रुतिसन्दर्भों को ध्यान में रखकर हेमाद्रि, सायण इत्यादि से भी प्राचीन और १३२३ संवत् में कातीयगृह्यकारिका बनानेवाले रेणु दीक्षित से भी उल्लिखित[2] भास्करमिश्र ने आपस्तम्बसूत्रध्वनितार्थकारिका नाम के त्रिकाण्डमण्डन नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ में वैदिक धर्मकृत्य के ऋतुओं को चान्द्र बताया है। यह बात हेमाद्रि से चतुर्वर्ग चिन्तामणि के परिशेषखण्ड के कालनिर्णय नाम के भाग में (पृ.१४) उद्धृत भास्करमिश्र के अधोलिखित वचन से अवगत होती है–

श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वाः कुर्याच् चान्द्रमसर्तुषु।
तदभावे तु सौरर्तुष्विति ज्योतिर्विदां मतम्॥
ऋतौ चान्द्रनिमित्तत्वं मन्त्रवर्णात् प्रतीयते।
ऋतूनन्यो विदधज् जायते पुनरित्यतः॥
पुनःपुनर् यो जायते स एव विदधदृतून्।
चन्द्रः पुनःपुनर्जन्मा तस्माच् चन्द्रवशादृतुः॥
होतृप्रकरणे चन्द्रं प्रकृत्य प्राह तित्तिरिः।
स ऋतून् कल्पयतीति चन्द्रोऽयमृतुकल्पकः॥

माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-शतपथब्राह्मण में भी संवत्सर के साथसाथ ऋतुओं का भी चान्द्रत्व प्रतिपादन करनेवाला[3] वचन आया है।

माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-मन्त्रार्षसंहिता, आत्रेय-तैत्तिरीय-कृष्णयजुर्वेद-संहिता, काठकसंहिता, कपिष्ठलकठसंहिता, मैत्रायणीयसंहिता, शाङ्खायनीयारण्यक, तैत्तिरीयब्राह्मण, तैत्तिरीयारण्यक, शतपथब्राह्मण इन ग्रन्थों में आए हुए अर्धमासरूप पक्ष, मास, ऋतु इनके क्रमबद्ध उल्लेखों से भी वैदिक ऋतुओं का चान्द्रत्व अवगत होता है। वे उल्लेख अधोलिखित हैं –

अहोरात्रेभ्यः स्वाहाऽर्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहऽ ऋतुभ्यः स्वाहऽ र्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा।

—माध्यन्दिनीयवाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदमन्त्रसंहिता २२।२८
मैत्रायणीय-कृष्णयजुर्वेदसंहिता ३।१२।७

---

१. चन्द्रमाः षड्ढोता स ऋतून् कल्पयति।—तैत्तिरीय आरण्यक ३।७।३।

२. कातीयगृह्यकारिका, अन्नप्राशनप्रकरण, श्लो.२७, जयपुर, १९८९ क्रै., पृ. ३५; अधिकारिनिरूपण प्रकरण, श्लो.४४, पृ. २५१।

३. चन्द्रमसि ह्ययं संवत्सर ऋतुभिरासक्तः।—मा.वा.शतपथब्राह्मण ६।७।१।१९।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उषसस् ते कल्पन्तामहोरात्रास् ते कल्पन्तामर्धमासास् ते कल्पन्ताम् मासास् ते कल्पन्तामृतवस् ते कल्पन्तां संवत्सरस् ते कल्पताम्।

—माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदमन्त्रसंहिता २७।४५।

अहोरात्रेभ्यस् स्वाहाऽर्धमासेभ्यस् स्वाहा मासेभ्यस् स्वाहर्तुभ्यस् स्वाहा संवत्सराय स्वाहा।

—काठक-कृष्णयजुर्वेदसंहिता ४१।६, आत्रेय-तैत्तिरीय-कृष्णयजुर्वेदसंहिता ७।१।१५।१, आत्रेय-तैत्तिरीय-कृष्णयजुर्वेदब्राह्मण ३।१।६।१।

सोऽहोरात्रैः सोऽर्धमासैः स मासैः स ऋतुभिः परियज्ञं बभूव।
संवत्सरस्य महिमानमेतं शुनासीरमिन्द्रमद्या हुवेम॥

—मैत्रायणीय-कृष्णयजुर्वेदसंहिता ४।१०।६।

अहोरात्रे निमेषोऽर्धमासाः पर्वाणि मासाः सन्धानान्यृतवोऽङ्गानि संवत्सर आत्मा।—आत्रेय-तैत्तिरीय-कृष्णयजुर्वेदसंहिता ७।५।२५।१।

यानि दारूणि ते मासा ये स्थूला अङ्गारास् ते ऋतवो येऽणीयांसस् तेऽर्धमासा मुर्मुरा अहोरात्राणि।

—काठककृष्णयजुर्वेदसंहिता ६।७, कपिष्ठलकठकृष्णयजुर्वेदसंहिता ४।६; द्र.– मैत्रायणीयकृष्णयजुर्वेदसंहिता १।८।६।

ऋतवस् ते कल्पन्तां मासास् ते कल्पन्तामर्धमासास् ते कल्पन्तामहोरात्राणि ते कल्पन्ताम्।—काठककृष्णयजुर्वेदसंहिता ४०।६।

तस्यामेतस्यां संहितायां ध्वंसयो निमेषाः काष्ठाः कलाः क्षणा मुहूर्ता अहोरात्रा अर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सराश् च सन्धीयन्ते।

—शाङ्खायनीयऋग्वेदारण्यक ७।२१।

चन्द्रमा वा अकामयताऽहोरात्रानर्धमासान् मासानृतून् संवत्सरमाप्त्वा चन्द्रमसः सायुज्यं सलोकतामाप्नुयामिति।

—आत्रेय-तैत्तिरीयकृष्णयजुर्वेदब्राह्मण ३।१।६।१।

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
कला मुहूर्ताः काष्ठाश् चाऽहोरात्राश् च सर्वशः।
अर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरश् च कल्पताम्।

—आत्रेय-तैत्तिरीयकृष्णयजुर्वेदाऽऽरण्यक (खिलकाण्ड, नारायणोपनिषद्) १०।१।

संवत्सरो वै प्रजापतिरेकशतविधः तस्याऽहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः षष्टिर् मासस्याऽहोरात्राणि मासि वै संवत्सरस्याऽहोरात्राण्याप्यन्ते चतुर्विंशति-

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रर्धमासास् त्रयोदश मासास् त्रय ऋतवस् ताः शतं विधाः संवत्सर एवैक-शततमी विधा।

—माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-शतपथब्राह्मण १०।२।६।१।

एत उ वाव लोका यदहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरः।

—वहीं १०।२।६।७।

यथा संवत्सरस्याऽहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतव एवमस्यैतानि सर्वाणि रूपाणि।—वहीं १०।४।३।२१।

ऋतवोऽङ्गानि मासाश् चाऽर्धमासाश्च पर्वाण्यहोरात्राणि प्रतिष्ठा।

—वहीं १०।६।४।१, काण्व-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-बृहदारण्यकोपनिषद् १।१।१।

अहोरात्राण्येवैतदर्धमासान् मासानृतून् संवत्सरे प्रतिष्ठापयति तानीमान्यहो-रात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरे प्रतिष्ठिताः।

—माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-शतपथब्राह्मण १२।८।३।१४।

प्रायः सभी पुराणादि ग्रन्थों में भी दो चान्द्र मासों से ही ऋतु बनने की बात बताई गई है, जैसे—

अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः॥
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।—कूर्मपुराण १।५।८।

त्रिंशद्दिनैर् भवेन् मासः पक्षद्वितयसंयुतः।
ऋतुर् मासद्वयेन स्यात् तत्त्रयेणाऽयनं स्मृतम्॥

—नारदीयपुराण १।५।२३-२४।

काष्ठास् त्रिंशत् कला, त्रिंशत् कला मौहूर्तिको विधिः॥
तावत्सङ्ख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर् मानुषं स्मृतम्।
अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः॥
तैष् षड्भिरयनं वर्षमयने दक्षिणोत्तरे।—पद्मपुराण सृष्टिखण्ड ३।५-६।

तिथिपञ्चदशेनैव पक्षमानं प्रकीर्तितम्।
पक्षद्वयेन मासः स्याच् छुक्लकृष्णाभिधेन च॥
ऋतुर् मासद्वयेनैव तत्षट्केनैव वत्सरः। ....
अब्दस् तु चाऽयने द्वे वै चोत्तरे दक्षिणायने।
माघादिषड्भिर् निर्मितमुत्तरायणमीप्सितम्।
श्रावणादिमासषट्कं दक्षिणायनमेव च॥

—ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्मखण्ड ९६।५५-६३।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पक्षः पञ्चदशाऽहानि शुक्लः कृष्णश्च मानद।
तयोः समुच्चयो मासः पितॄणां तदहर्निशम्॥
द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि।
अयने चाऽहनी प्राहुर् वत्सरो द्वादश स्मृतः॥—भागवतपुराण ३।११।१०–११।

अहोरात्रैश्च त्रिंशद्भिः पक्षौ द्वौ मास उच्यते॥
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।—मार्कण्डेयपुराण ४३।२४–२५।

तथा पञ्चदशाहानि पक्ष इत्यभिधीयते।
द्वौ पक्षौ तु भवेन् मासो द्वौ मासावन्तरावृतुः॥
ऋतुत्रयमयनं स्याद् द्वेऽयने वर्षमुच्यते।—वायुपुराण १।५०।१७७।

काष्ठास् त्रिंशत् कला, तास् तु त्रिंशन् मौहूर्तिको विधिः॥
तावत्सङ्ख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर् मानुषं स्मृतम्।
अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः॥
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।—विष्णुपुराण १।३।८–१०।

त्रिंशत्सङ्ख्यैरहोरात्रैर् मासः पक्षद्वयात्मकः॥
ज्ञेयं पित्र्यमहोरात्रं मासः कृष्णसितात्मकः॥
मासैस् तैरयनं षड्भिर् वर्षं द्वे चाऽयने मतम्॥—शिवपुराण ७।१।८।५–७।

विनाडिकानां षष्ट्या स्यान् नाडिकैका दिनं भवेत्।
तत्षष्ट्या, दिवसास् त्रिंशन् मासः पक्षद्वयात्मकः॥
मासौ द्वावृतुरित्युक्तस् तैष् षड्भिर् वत्सरो भवेत्।
अयनद्वितयाकारः शीतवर्षोष्णसंश्रयः॥
—स्कन्दपुराण वैष्णवखण्ड १।३६।३०,३१।

अहोरात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभिशब्दितः।
पक्षौ द्वौ तौ कृतौ मासो मासौ द्वावृतुरुच्यते॥
अयनं चर्तुभिस् त्रिभिरब्दं द्वे अयने स्मृतम्।
दक्षिणं चोत्तरं चैव सङ्ख्यातत्त्वविशारदैः॥
मानेनाऽनेन यो मासः पक्षद्वयसमन्वितः।
पितॄणां तदहोरात्रमिति कालविदो विदुः॥
शुक्लपक्षस् त्वहस् तेषां कृष्णपक्षस् तु शर्वरी।
कृष्णपक्षे त्विह श्राद्धं पितॄणां वर्तते द्विज॥
—वहीं, आवन्त्यखण्ड १।४८।१०–१४।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विंशतिकलो मुहूर्तः स्याद् दिनं पञ्चदशैस् तु तैः ॥
दिनमाना निशा ज्ञेया अहोरात्रं द्वयाद् भवेत्।
तैः पञ्चदशभिः पक्षो द्विपक्षो मास उच्यते॥
मासैश् चैवाऽयनं षड्भिर् वर्षं स्यादयनद्वये।

—वहीं, प्रभासखण्ड १।१९।१०–१२, १।१०५।३५–३६।

पक्षद्वयेन मासः स्यान् मासैः षड्भिर् द्विजोत्तमाः।
अयनं द्वेऽयने वर्षं क्रमात् ते दक्षिणोत्तरे॥

—स्कन्दपुराणसूतसंहिता १।८।५–६।

अहोरात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभिशब्दितः।
द्वौ पक्षौ तु स्मृतो मासो मासौ द्वावृतुरुच्यते॥
अब्दं द्व्ययनमुक्तं च अयनं त्वृतुभिस् त्रिभिः।
दक्षिणं चोत्तरं चैव सङ्ख्यातत्त्वविशारदैः॥—हरिवंश १।८।५,६।

कालो हि नाम भगवान् स्वयम्भूरनादिमध्यनिधनः। अत्र रसव्यापत्-सम्पत्ती जीवितमरणे च मनुष्याणामायत्ते। स सूक्ष्मामपि कलां न लीयत इति कालः, सङ्कलयति कालयति वा भूतानीति कालः। तस्य संवत्सरात्मनो भगवानादित्यो गतिविशेषेणाऽक्षिनिमेष-काष्ठा-कला-मुहूर्ता-ऽहोरात्र-पक्ष-मासर्त्वयन-संवत्सरयुग-प्रविभागं करोति। तत्र लघ्वक्षरोच्चारणमात्रोऽक्षिनिमेषः। पञ्चदशाक्षिनिमेषाः काष्ठा। त्रिंशत् काष्ठाः कला। विंशतिकलो मुहूर्तः कलादशभागश् च। त्रिंशन्मुहूर्त-महोरात्रम्। पञ्चदशाऽहोरात्राणि पक्षः। स च द्विविधः शुक्लः कृष्णश् च। तौ मासः। तत्र माघादयो द्वादश मासा द्विमासिकमृतुं कृत्वा षड् ऋतवो भवन्ति। ते शिशिर-वसन्त-ग्रीष्म-वर्षा-शरद्-धेमन्ताः। तेषां तपस्-तपस्यौ शिशिरः। मधु-माधवौ वसन्तः। शुचि-शुक्रौ ग्रीष्मः (शुक्र-शुची ग्रीष्मः)। नभोनभस्यौ वर्षाः। इषोर्जौ शरत्। सहस्-सहस्यौ हेमन्तः इति। त एते शीतोष्णवर्षलक्षणाश् *चन्द्रादित्ययोः* कालविभागकरत्वादयने द्वे भवतो दक्षिणमुत्तरं च। तयोर् दक्षिणं वर्षा-शरद्-धेमन्ताः। तेषु भगवानाप्यायते सोमः, अम्ल-लवण-मधुराश् च रसा बलवन्तो भवन्ति, उत्तरोत्तरं च सर्वप्राणिनां बलमभिवर्धति। उत्तरं च शिशिर-वसन्त-ग्रीष्माः। तेषु भगवानाप्या-यतेऽर्कः, तिक्तकषायकटुकाश् च रसा बलवन्तो भवन्ति, उत्तरोत्तरं च सर्वप्राणिनां बलमपहीयते। भवति चाऽत्र—

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शीतांशुः क्लेदयत्युर्वीं विवस्वान् शोषयत्यपि।
तावुभावपि संश्रित्य वायुः पालयति प्रजाः॥

अथ खल्वयने द्वे युगपत् संवत्सरो भवति। ते तु पञ्च युगमिति संज्ञां लभन्ते। स एष निमेषादि-युगपर्यन्तः कालश् चक्रवत् परिवर्तमानः कालचक्रमुच्यत इत्येके।—सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान ६।३-९।

कालमानमत ऊर्ध्वम्। त्रुटो लवो निमेषः काष्ठा कला नाडिका मुहूर्तः पूर्वापरभागौ दिवसो रात्रिः पक्षो मास ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति कालाः। ... शिशिराद्युत्तरायणम्। वर्षादि दक्षिणायनम्। द्व्ययनः संवत्सरः। पञ्चसंवत्सरो युगमिति।—कौटलीय अर्थशास्त्र २।२०।

पक्षौ पूर्वापरौ शुक्ल-कृष्णौ मासस् तु तावुभौ।
द्वौद्वौ मार्गादिमासौ स्यादृतुस् तैरयनं त्रिभिः॥

—नामलिङ्गानुशासन (अमरकोश), प्रथमकाण्ड, कालवर्ग, श्लो.१२-१३।

उक्त वैदिक धार्मिक ऐतिहासिक स्थिति से वैदिक परम्परा की काल-गणना में ऋतु भी चान्द्र ही लिए जाने की बात अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है। लौगाक्षि-स्मृति में तो वैदिक धर्मकृत्यो में चान्द्र मान को ही लेने की आवश्यकता स्पष्ट रूप से दिखाई गई है, जैसे—

पक्षद्वयात्मको मास ऋतुर् मासद्वयात्मकः।
ऋतुः षडात्मकश् चाऽब्दो मधुर् माधव एव च॥
वसन्त इति वेदोक्तः शुक्रश् च शुचिरप्यथ।
ऋतुर् ग्रीष्म इति प्रोक्तो नभा नभस्य एव च॥
वर्षा इति समाख्यात इषश् चोर्जश् च शारदः।
सहश् चाऽपि सहस्यश् च हेमन्त इति चोदितः॥
तपश् चाऽपि तपस्यश् च शिशिराख्यो महात्मभिः।
मासपक्षर्तवः सर्वे तिथयो निखिला अपि॥
पक्षद्वयनिदानानि चान्द्रमाने तदात्मनि।
सम्यग् घटन्ते ते सर्वे न सौरे तु कदाचन॥
ततस् तेनैव मार्गेण श्रुत्युक्ते साऽखिलाः क्रियाः।
विशेषज्ञः प्रकुर्वीत न चेत् कर्माऽखिलं तु तत्।
वैगुण्यमेव लभते अतः श्राद्धं च तादृशम्॥

—लौगाक्षिस्मृति, स्मृतिसन्दर्भ षष्ठ भाग, पृ.३८२।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उक्त स्थिति में सिद्धान्तशिरोमणि के ग्रहगणिताध्याय के मध्यमाधिकार के कालमानाध्याय में ज्योतिषी भास्कर ने कैसे "वर्षाऽयनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरात्" (१।१।३१) ऐसा कहकर ऋतु को केवल सौर बताया? यद्यपि वेदों में और स्मृति-पुराणादिग्रन्थो में भी सूर्य को कालगणना का मूल माना ही गया है, और स्कन्दपुराण के नागरखण्ड में[1] ठण्डक, धूप, वर्षा, वृक्षों का और सस्यों का फलपाक इत्यादि प्राकृत कार्यों में सौर मान की प्रभावकारिता मानी ही गई है, तथापि वैदिक धर्मकृत्य में तो चान्द्र मान ही प्रधान है। वैक्रमाब्दों के दशम शतक में वर्तमान माने गए राजशेखर ने काव्यमीमांसा के अठारहवें अध्याय में स्पष्ट रूप में "अमुना च वेदोदितः कृत्स्नोऽपि क्रियाकल्पः" ऐसा कहकर चान्द्र मान से ही सम्पूर्ण वैदिक धर्मकृत्य किए जाने की बात बताई है। वाराणसी के सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय की अनुसन्धानपत्रिका सारस्वती सुषमा में (५१ वर्ष १-४ अङ्क, वि.सं. २०५३, पृ.१०४-१३४) प्रकाशित प्रमोदवर्धन कौण्डिन्न्यायन के "जैमिनीय-धर्ममीमांसाशास्त्रनिर्णीतानां वैदिककृत्यकालानां चान्द्रमाननियतत्वम्" नाम के निबन्ध में सम्पूर्ण वैदिक धर्मकृत्य चान्द्र मान के आधार में ही किए जाने की बात विस्तार से बताई गई है[2]। इस स्थिति में भास्कर ने सिद्धान्तशिरोमणि में ऋतु को कैसे केवल सौर बताया, अर्वाचीन ज्योतिषियों ने भी कैसे उसको ही माना, और कैसे आधुनिक तिथिपत्रों के (पञ्चाङ्गों के) रचयिताओं ने ऋतुओं को केवल सौर रूप में ही लिया, और श्रौत प्रथम अग्निष्टोम सोमयाग करने का अभिनय करनेवाले और अपने को माध्यन्दिनीय वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायी तथा कात्यायन-श्रौतसूत्रानुयायी कहनेवाले व्यक्ति से और उसका याजन करनेवाले ब्राह्मणों से भी केवल चान्द्र वसन्त ऋतु ही नहीं वास्तविक सौर वसन्त ऋतु भी बीत चुकने पर कथित राशिमूलक सौर वसन्त ऋतु के उत्तरार्ध के पश्चाद्वर्ती दिनों

---

१. शीताऽऽतपौ तथा वृष्टिः सौरमानेन जायते।
वृक्षाणां फलनिष्पत्तिः सस्यानां च तथा परा।—स्कन्दपुराण, नागरखण्ड २७३।११-१२।

२. इस विषय का प्रतिपादन नेपाल के साझा-प्रकाशन की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका "गरिमा" में (पौष, २०५५ संवत्) भी "वैदिक परम्परामा चान्द्र ऋतुहरूको स्थान" नाम के निबन्ध में (पृ.५१–५५) किया गया है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में प्रथम अग्निष्टोम सोमयाग करने का अभिनय करने में और कराने में अनौचित्य नहीं देखे जा सकने की स्थिति वैदिक शास्त्रीय धर्मकृत्यार्थक ऋतुओं के विषय में पर्याप्त चर्चा और विचार किए जा चुकने पर भी कैसे ब्राह्मणसमाज में अभीअभी तक भी (२०५६ वैक्रमाब्द के मेषमास के मध्यभाग तक भी) अनुवृत्त हो सकी? यह भी भारतवर्षीय ज्योतिष की कालगणना का और धर्मशास्त्र का भी एक ज्वलन्त प्रश्न ही है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का सातवाँ ज्वलन्त प्रश्न

ऋतुनियामक अथवा अधिकमासनियामक के रूप में आर्तव वर्ष को न लेकर नाक्षत्रवर्ष को कैसे लिया गया

मूल वैदिक परम्परा में आर्तव सौर वर्ष से चान्द्र तपः, तपस्य, मधु, माधव इत्यादि मासों का सामञ्जस्य रखा जाता है। मन्त्रसंहिताओं के उल्लेख से ही वैदिक तपस्-तपस्यादि मासों की चान्द्रमासता और आर्तववर्षसम्बद्धता भी स्पष्ट होती है।

वास्तविक ऋतुनियामकत्व सूर्य के उदगयन और दक्षिणायन का ही है, न कि सूर्य के नक्षत्रयोग का। वेदमन्त्रोक्त तपस्-तपस्य-मधु-माधवादि मासों का **"तपश् च तपस्यश् च शैशिरावृतू"** (मा.वा.शुक्लयजुर्वेद १५।५७), **"मधुश् च माधवश् च वासन्तिकावृतू"** (मा.वा.शुक्लयजुर्वेद १३।२५) इत्यादि मन्त्रवाक्य के प्रामाण्य से ऋतुबद्धता अवगत होती है। ब्राह्मणग्रन्थ-श्रौतसूत्रादि में माघ-फाल्गुन इत्यादि मासनामों के प्रयुक्त होने पर भी **"मन्त्रचोदनयोर् मन्त्रबलं प्रयोगित्वात्"** इस कात्यायनश्रौतसूत्र के वचन से (१।५।७) और **"मन्त्रतस् तु विरोधे स्यात् प्रयोगरूपसामर्थ्यात् तस्मादुत्पत्तिदेशः सः"** इस जैमिनीय धर्ममीमांसासूत्र के (५।१।१६) वचन से भी मन्त्रप्रयोग का ही प्राधान्य स्वीकर्तव्य होता है। अतः पाणिनीय-व्याकरणादिकृत प्रकृति-प्रत्यय-कल्पनामूलक माघादिपदनिर्वचन का वैदिकधर्ममीमांसकशिरोमणि कुमारिलभट्टकृत तन्त्रवार्तिक में (२।१।१७, आनन्दाश्रम., १९७० क्रै., पृ.४००) स्थित **"यत्राऽर्थस्य विसंवादः प्रत्यक्षेणोपलभ्यते। स्वर-संस्कारमात्रार्था तत्र व्याकरणस्मृतिः"** इस वचन के विचार से विषयव्यवस्था स्वीकर्तव्य होती है। **"प्रपद्येते श्रविष्ठादौ"** इत्यादि लगधमुनि के श्लोक में (श्लो.७) भी युगवर्षपरिच्छेदक के रूप में सूर्य का उदगयन और दक्षिणायन ही मुख्य प्रतिपाद्य है, ऐसा जानना चाहिए।

लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ में धनिष्ठास्थ सूर्य का उदगयन प्रतिपादित है। सूर्यप्रज्ञप्ति और कालालोकप्रकाश में अभिजिन्नक्षत्रस्थ सूर्य का उदगयन प्रतिपादित होने की बात शामशास्त्री ने कही है। बृहत्संहिता में आदित्यचाराध्याय में वराहमिहिरद्वारा उत्तराषाढास्थ (मकरादिस्थ) सूर्य का उदगयन प्रतिपादित है। इस समय तो मूलनक्षत्रस्थ (धनुःस्थ) सूर्य का उदगयन होता है। इस प्रकार सूर्योदगयननक्षत्र कालक्रम से परिवर्तित होता रहता है, यह

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बात अवगत होती है। अतः लगधमुनिकृत ग्रन्थ का वैदिककालगणनापद्धति के दिक्प्रदर्शनमात्र में तात्पर्य होने से उस तात्पर्य को विना समझे वराहमिहिर की तरह विभ्रष्टत्व वा विकृतत्व नहीं मानना चाहिए। अपने ग्रन्थ की दिक्प्रदर्शनमात्रपरता को लगधमुनि ने वेदाङ्गज्योतिष में **"इत्युपायसमुद्देशो भूयोऽप्येनं प्रकल्पयेत्"** (श्लो.४२) इस वचन से स्पष्ट रूप में प्रतिपादित भी किया ही है।

मैत्रायणीयारण्यक में **"मघाद्यं श्रविष्ठार्धमाग्नेयम्"** इत्यादि वचन से (६।१४) धनिष्ठा के मध्य में सूर्य के पहुँचने पर उदगयन का प्रारम्भ प्रतिपादित है, वेदाङ्गज्योतिष में तो धनिष्ठा के आदि में उदगयन का प्रारम्भ प्रतिपादित है। अतः वैदिक आर्यों से अयनचलन ज्ञात और स्वीकृत भी था, यह बात अवगत होती है। अतः शङ्करबालकृष्ण दीक्षित[1], बालगङ्गाधर तिलक[2] इत्यादि अध्येताओं का वेदाङ्गज्योतिषकाल में अयनचलन का ज्ञान नहीं था, ऐसा कथन भ्रमपूर्ण हैं, यह बात समझनी चाहिए। उन लोगों के कथनों को अविचारितरमणीय (अच्छी तरह विचार न करने पर ही ठीक दिखाई देनेवाला) माना जायगा।

आजकल के पञ्चाङ्गों में अयनचलन में ध्यान न देकर सूर्य उत्तराषाढा नक्षत्र के तीसरे पाद में (मकर राशि में) जाने पर मकरसङ्क्रान्ति और उत्तरायणारम्भ लिखते हैं। किन्तु अयनबिन्दु के चलन से आजकल अयनबिन्दु मूल के तीसरे पाद में आ गया है, और मूल के तीसरे पाद में सूर्य पहुँचने पर ही वास्तविक रूप में सूर्य के उदगयन का प्रारम्भ होता है, और उसी समय में सायन-मकरसङ्क्रान्ति मानी जाती है। यह सङ्क्रान्ति दिसम्बर २२ या २१ तारीख में पडती है। अतः आजकल निरयण मकरसङ्क्रान्ति से करीब २४ दिन पहले ही सायन मकरसङ्क्रान्ति होती है। अन्य सङ्क्रान्तियों में भी निरयण सङ्क्रान्तियों में और सायन सङ्क्रान्तियों में ऐसा ही फर्क पडता है। वैक्रमाब्द के

---

१. "वेदाङ्गज्योतिष में युगारम्भ उत्तरायणारम्भ में बतलाया है और धनिष्ठारम्भ में भी। इससे विदित होता है कि उस समय अयनचलन का ज्ञान नहीं था।"

—भारतीय ज्योतिष, शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित, अनु.शिवनाथ झारखण्डी, उत्तरप्रदेश हिन्दी समिति, सन् १९७५, पृ. १२६।

२. "The author of the 'Vedanga Jyotisha', whosoever he may be, had no knowledge of the gradual retrograde motion of the solstices or the equinoxes. He therefore, takes the seasons as fixed and gives rules for finding out when each of them commenced and ended."

–Vedic Chronology and Vedanga Jyotisha, B.G. Tilak, Poona City, 1925, p.24.

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रथम-द्वितीय शतक से ही विदेशी मूल के शक्तिशाली शासकों से अर्वाचीन निरयण गणनापद्धति के अनुसरण करने से वास्तविक अयनस्थिति के आधार पर गणना करने की वेदाङ्गज्योतिषोक्त पद्धति पीछे पड गई। उसके बाद निरयण गणनापद्धति का अनुसरण करने, किन्तु उससे व्रतपर्वों के समय में पडनेवाले दुष्प्रभाव की उपेक्षा करने की परम्परा स्थापित हो जाने से विभिन्न वार्षिक पर्व और अनुष्ठान उनके मौलिक निर्धारित वास्तविक ऋतु से पीछे चले जा रहे हैं। इस समय सौरमान के अयन और ऋतुओं में २३–२४ दिन का फर्क पड गया है, चान्द्रमान में तो अधिकतर वर्षों में एक महिने का ही फर्क पड गया है और त्यौहारों के और पर्वों के औचित्य में ही प्रश्नचिह्न लगने की स्थिति भी आने लगी है।

ब्राह्मणों का महत्त्वपूर्ण पर्व उपाकर्म वर्षाकाल के प्रारम्भ होने के साथ ही ओषधियों के प्रादुर्भाव होने के समय में आनेवाली पूर्णिमा में करने का विधान है। आजकल वर्षा का आरम्भ सामान्यतया वृषमास के अन्तिम सप्ताह (जून के दूसरे सप्ताह) से होता है। किन्तु प्रचलित पञ्चाङ्गों में यह पर्व कर्कटमास के १८वें दिन से सिंहमास के १५वें दिन तक (प्रायः अगस्त महीने में) रखा जाता है। उस समय वर्षा समाप्ति की ओर पहुँचती है। इस प्रकार यह पर्व तो वास्तविक समय से दो मास तक पीछे पहुँच गया है।

उसी प्रकार शरद् ऋतु की अमावास्या में अनुष्ठेय लक्ष्मीपूजा अथवा दीपावली पर्व भी जाडे में मनाए जानेवाला पर्व नहीं है, ऐसा जो कोई भी विदित कर सकता है। आजकल की परिपाटी के अनुसार पञ्चाङ्गों में २०५८ वैक्रमाब्द की दीपावली सौरनिरयणतुलामास के २९ वें दिन (२००१ नवम्बर १४ तारीख) में और भ्रातृपूजा सौरनिरयणवृश्चिकमास के प्रथम (पहले) दिन (२००१ नवम्बर १६ तारीख) में मनाने के लिए निर्धारित किए गए थे। इससे प्रचलित पञ्चाङ्गीय गणनापद्धति के कारण हमारे पौराण त्यौहार कितने पीछे ढकेले गए हैं, इसका ज्ञान किया जा सकता है। वास्तविक सौर हेमन्त ऋतु तो सौरनिरयणतुलामास के ६–७ वें दिन से (सायनवृश्चिक–सङ्क्रान्ति से) ही आरब्ध होता है यह बात भी यहाँ स्मरणीय है।

इस विषय में भी गुरु–पुरोहित–पण्डितों का और धर्मशास्त्रियों का भी ध्यान गया नहीं दीखता है। ऐसे गम्भीर धार्मिक विषय में सभी को ध्यान देना चाहिए।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चान्द्र ऋतुओं का सौर ऋतुओं से दूरविप्रकर्ष के परिहार के लिए (चान्द्र और सौर ऋतुओं के बीच में कभी भी एक महीने के काल से अधिक दूरी न हो इस लिए) चान्द्र अधिकमास की व्यवस्था आवश्यक होती है। अधिकमास की व्यवस्था न होने पर तो मुसलमानों के रमजान महीने की तरह हमारे माघादि चान्द्र मास भी कभी जाडे में पडेंगे कभी धूप में पडेंगे और कभी वर्षा में पडेंगे और सौर ऋतुओं के विभिन्न ऋतुओं में घूमते रहेंगे। ऐसा न हो, चान्द्र माघमास सदा काल जाडे में ही पडे, चान्द्र ज्येष्ठमास सदाकाल गर्मी में ही पडे, चान्द्र भाद्रमास सदाकाल वर्षा में ही पडे, इस प्रकार की व्यवस्था के लिए अधिकमास की व्यवस्था वैदिककालगणनासिद्धान्त में है।

अतः चान्द्र ऋतु का वास्तविक सौर ऋतु से सामञ्जस्य रखने के लिए स्वीकृत अधिकमास का नियन्त्रण भी वास्तव सौर उदगयन-दक्षिणायन (सायन सौर उदगयन-दक्षिणायन) से ही होता है।

किन्तु चान्द्र ऋतु का वास्तविक सौर ऋतु से सामञ्जस्य रखने के लिए स्वीकृत अधिकमास का नियन्त्रण भी वास्तव सौर उदगयन-दक्षिणायन (सायन उदगयन-दक्षिणायन) की अपेक्षा किए विना सौर निरयण नाक्षत्र मास से करने की पद्धति भारतीय परम्परा में कैसे चल गई और अधिकमास मानने की व्यवस्था ही निरर्थक होने की स्थिति कैसे आई यह भी एक अत्यन्त बडा ज्वलन्त प्रश्न है।

१६५७ संवत् में काशी में रचित प्रसिद्ध ज्योतिषग्रन्थ **मुहूर्तचिन्तामणि** में भी सङ्क्रान्तिप्रकरण में सायनसङ्क्रान्ति का महत्त्व बताया गया है। जैसे–

तथाऽयनांशाः ख-रसाहताश् चस्पष्टार्कगत्या विहता दिनाद्यैः।
मेषादितः प्राक् चलसङ्क्रमाः स्युर् दाने जपादौ बहुपुण्यदास् ते॥ (श्लोक ९)।

इस प्रकार राम दैवज्ञ ने **सायनसङ्क्रान्ति** को **चलसङ्क्रम** की सञ्ज्ञा देकर स्नान-दान और जप में वैसी सङ्क्रान्ति बहुपुण्यदायक होने की बात स्पष्ट शब्दों में कही है।

१६६० वैक्रमाब्द में काशी में ही लिखित मुहूर्तचिन्तामणि की **पीयूषधारा व्याख्या** में उक्त पद्य की व्याख्या में गोविन्द ज्योतिर्विद् ने वसिष्ठसिद्धान्त का और पुलस्त्य का वचन कहकर विभिन्न वचन दिखाकर सायनसङ्क्रान्ति ही वास्तविक और मुख्य सङ्क्रान्ति होने की बात को स्पष्ट करके सायनसङ्क्रान्ति में जोड दिया है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वसिष्ठसिद्धान्त के वचन कहकर पीयूषधारा में उद्धृत वचन–

> चलसंस्कृत–तिग्मांशोः सङ्क्रमो यः सुसङ्क्रमः।
> अजागलस्तन इव राशिसङ्क्रान्तिरुच्यते॥

पुलस्त्य का वचन कहकर उद्धृत वचन–

> अयनांशयुतो भानुर् गोले चरति सर्वदा।
> अमुख्या राशिसङ्क्रान्तिस् तुल्यकालविधिस् तयोः॥
> स्नान–दान–जप–श्राद्ध–व्रत–होमादिकर्मभिः।
> सुकृतं चलसङ्क्रान्तावक्षयं पुरुषोऽश्नुते॥

इन वचनों में से पहले वचन में तो सायनसङ्क्रान्ति (आर्तववर्षानुसारी सङ्क्रान्ति) ही वास्तविक सङ्क्रान्ति है, निरयणसङ्क्रान्ति या राशिसङ्क्रान्ति अजागलस्तन (बकरी के कण्ठ में अवलम्बित थन जैसा अङ्ग) जैसी व्यर्थ की है ऐसा कहा गया है। दूसरे वचन में भी राशिसङ्क्रान्ति को अमुख्य सङ्क्रान्ति और सायनसङ्क्रान्ति (चलसङ्क्रान्ति) को पुण्यदायक मुख्य सङ्क्रान्ति मानने की बात की गई है। इससे निरयणगणनापद्धति के अनुसरण से वास्तविक अयनसङ्क्रान्ति–विषुवसङ्क्रान्ति को ओझल में डालने का काम होने का और वह अनुचित होने का अनुभव करके सायनसङ्क्रान्ति ही मुख्य सङ्क्रान्ति होने के विषय में ध्यानाकर्षण कराने के लिए आज से ४०० वर्ष पूर्व ही विशेष प्रयास होने की बात भी स्पष्ट होती है। इससे भी सायनसङ्क्रान्ति (आर्तव सङ्क्रान्ति) को आधार मानकर व्रतपर्वों को पहले लाने की आवश्यकता की पुष्टि होती है। किन्तु मुहूर्तचिन्तामणि जैसे ग्रन्थ के इस प्रकरण में भी वर्तमान काल के धर्मशास्त्रि-ज्योतिषियों का ध्यान गया हुआ प्रायः नहीं पाया जाता है। **निर्णयसिन्धु** में और **धर्मसिन्धु** में भी सायनसङ्क्रान्ति के महत्त्व को दिखाया गया है। तथापि वर्तमान काल के धर्मशास्त्री लोग इस बात में भी ध्यान नहीं दे रहे हैं।

वास्तविक अयनारम्भस्थिति को देखकर पञ्चाङ्ग में सुधार न करने से वैदिकधर्मशास्त्रविपरीत काम होने की स्थिति उत्पन्न हुई है। वैदिक शास्त्र में दैवकर्म उत्तरायण में करने का निर्देश है। माध्यन्दिनीय–वाजसनेयि–शुक्लयजुर्वेदियों के गृह्यसूत्र पारस्करगृह्यसूत्र में विवाहप्रकरण में उदगयन में, शुक्लपक्ष में, पुण्याह में पाणिग्रहण करने का विधान है। इसी बात को जैमिनीयधर्ममीमांसा-शास्त्र ने भी समर्थन किया है। पहले सम्पूर्ण सौर निरयणमिथुनमास उत्तरायण के अन्तर्गत पडता था किन्तु वर्तमान काल में अयनचलन के कारण इस मास के ६-७ दिन बीतने पर (जून २१ तारीख के लगभग) ही सौर दक्षिणायन का आरम्भ

Prof. Amodavardhana Kaundinyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होता है और निरयण सौर मिथुनमास का अधिकांश भाग वास्तविक सौर दक्षिणायन में पडता है। चान्द्रमान से तो जून के आरम्भ से ही दक्षिणायन के आरम्भ होने से विवाह–व्रतबन्ध इत्यादि संस्काररूप शुभकर्म के लिए अविहित काल आ गया भी हो सकता है। जैसे २००५ में जून ७ तारीख में, २००६ में जून २६ तारीख में और २००७ में जून १५ तारीख में पडी हुई वैदिक नभःशुक्लप्रतिपदा से सौरचान्द्र दक्षिणायन का आरम्भ हुआ था। इसी प्रकार २००८ में जून ४ तारीख में, २००९ में जून २३ तारीख में, २०१० में जून १३ तारीख में और २०११ में जून २ तारीख में पडनेवाली वैदिक नभःशुक्लप्रतिपदा से दक्षिणायन का आरम्भ है।

उदगयन के (उत्तरायण के) अन्त्य में जिस वर्ष अधिकमास पडता है, उस वर्ष में तो निरयणसौरमिथुनमास ही नहीं पूरा सौर निरयणसौरवृषमास भी शुभकर्म के लिए अयोग्य होता है। उदाहरण के लिए २०६३ वैक्रमाब्द के वृषमास को लिया जा सकता है। उस वर्ष वैदिककालगणना–सिद्धान्तानुसार उत्तरायण के अन्त्य में अधिकमास था[1]। २०६३ में सौरनिरयणमेषमास के उपान्त्य दिन से सौरनिरयणवृषमास के बारहवें दिन तक (सन् २००६ मई १३ तारीख से २६ तारीख तक) कृष्णपक्ष था। निरयणसौरवृषमास के तेरहवें दिन से निरयणसौरमिथुनमास के ग्यारहवें दिन तक (मई २७ तारीख से जून २५ तारीख तक) अधिकमास (द्वितीयशुचिमास) था और निरयणसौरमिथुनमास के बारहवें दिन (जून २६) में पडी हुई वैदिक नभःशुक्लप्रतिपदा से दक्षिणायन का आरम्भ हुआ था।

इस प्रकार वेदाङ्गज्योतिषानुसार उत्तरायण के अन्त्य में जिस वर्ष अधिकमास पडता है उस वर्ष तो मिथुनमास ही नहीं, पूरा वृषमास भी दैव कर्म के लिए अयोग्य हो जाता है। किन्तु इस विषय में धर्मशास्त्रियों और ज्योतिषियों से ध्यान नहीं दिए जाने से वृषमास और मिथुनमास में भी दैवकर्म करने का प्रचलन आज तक भी कायम है। इससे धार्मिक भावना में और धर्मशास्त्र के मर्म में ही अतिक्रमण होने की विकराल स्थिति खडी हुई है, यह बात स्पष्ट होती है। यह स्थिति कैसे आई, कैसे भारतवर्षीय वैदिक धर्मशास्त्री और ज्योतिषी लोग ऐसे विषय की चेतना से शून्य हो गए, यह भी भारतवर्षीय ज्योतिष में एक बहूत ही बडा ज्वलन्त प्रश्न है।

---

१. उदगयन के (उत्तरायण के) अथवा दक्षिणायन के अन्त्य में किनकिन वर्षों में वेदाङ्गज्योतिषानुसारी अधिकमास हैं इसकी संक्षिप्त सूची इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट में दी गई है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का आठवाँ ज्वलन्त प्रश्न

चान्द्रमासों की प्रधानता कैसे भुला दी गई?

मूल वैदिक परम्परा में मुख्यतया मास चान्द्र ही लिए गए हैं। वेद के मन्त्रसंहिताओं में उल्लिखित तपः, तपस्य, मधु, माधव इत्यादि मास चान्द्र ही हैं। इस विषय में शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित के **"भारतीय ज्योतिष शास्त्रा चा इतिहास आणि परिचय"** नाम के मराठी भाषा में (१८९६ क्रै.) लिखे गए ग्रन्थ के शिवनाथ झारखण्डी से किए गए हिन्दी अनुवाद के रूप में प्रस्तुत और **हिन्दी समिति** (लखनऊ) से तृतीय संस्करण के रूप में १९७५ क्रैस्ताब्द में प्रकाशित **"भारतीय ज्योतिष"** नाम के ग्रन्थ में भी *"वेदोक्त मधु-माधवादि नाम सौर मासों के नहीं हैं- यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनके अर्थ का सम्बन्ध ऋतुओं से अर्थात् सूर्य से है, इतना ही नहीं, मध्वादिकों को ऋतु भी कहा है, परन्तु वेदों में ऐसा विधान कहीं नहीं मिलता जिससे यह प्रकट हो कि उन मासों की समाप्ति पूर्णिमा या अमावास्या के अतिरिक्त किसी अन्य दिवस में भी होती थी। पूर्णिमा और अमावास्या में मासान्त होने का निर्देश है। इससे सिद्ध होता है कि ये नाम पूर्णिमा या अमावास्या में समाप्त होने वाले चान्द्र मास के ही हैं"* (पृ.५४) ऐसा कहकर तपः, तपस्य, मधु, माधव इत्यादि मासों को चान्द्र ही माना गया है। वेदों में अर्धमासों के (पक्षों के) नैरन्तर्य से मासों का उल्लेख किए जाने से भी वैदिक मास मुख्यतया चान्द्र होने की बात अवगत होती है। यह बात[1] अनेक वेदवाक्यों में अर्धमासों का और मासों का नैरन्तर्य से आने से ज्ञात होती है। अधिकमासरूप अंहस्पतिमास से (अंहसस्पतिमास से) अथवा अंहस्पत्यमास से साहचर्य देखे जाने से भी मधु माधव इत्यादि शब्दों का चान्द्रमासवाचकत्व स्पष्ट होता है। शुक्ल

---

१. • अर्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहा।—मा.वा.शु.य.वे.सं.२२।२८, तैत्तिरीयसं.७।१।१५।१
• अर्धमासास् ते कल्पन्ताम् मासास् ते कल्पन्ताम्।—मा.वा.शु.य.वे.सं. २७।४५।
• अर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरे प्रतिष्ठिताः।—शतपथब्रा. १२।८।३।१४।
• अहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरा विधृतास् तिष्ठन्ति।—शतपथब्रा. १४।६।८।९।
• अधर्मासा मासा ऋतवः संवत्सर ओषधीः पचन्ति।—तैत्तिरीयसं. ५।७।२।५।
• अर्धमासानेव मासानृतून् संवत्सरं प्रीणाति।—तै.सं. ५।७।२।६।
• अर्धमासाः पर्वाणि मासाः सन्धानानि।—तै.सं. ७।५।२५।१।
• अर्धमासास् त्वा मासेभ्यः परिददतु।—सामवेद-मन्त्रब्राह्मण १।५।१५।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यजुर्वेदसंहिता में[1], मैत्रायणीयसंहिता में[2] और तैत्तिरीयसंहिता में[3] आए हुए वाक्यों से भी उक्त बात पुष्ट होती है। तैत्तिरीयसंहिता के व्याख्यान में सायण से भी बहुत प्राचीन भट्टभास्कर ने[4] तेरहवाँ मास चान्द्र होने से उसके साथ में उल्लिखित बारह मास भी चान्द्र ही हैं ऐसे तर्कपूर्ण रूप से वैदिक मधु-माधवादि मासों को चान्द्र बताया है। वेदों में वर्ष में तेरह मास भी बताए जाने से और अन्य प्रकार के मास कभी भी एक वर्ष में तेरह नहीं हो सकने से और अधिकमासयुक्त चान्द्र वर्ष में तेरह चान्द्र मास हो सकने से भी तेरहवें चान्द्र मास के साथ में बताए गए मधु-माधवादि मास भी चान्द्र ही ठहरते हैं। तेरहवें मास का उल्लेख तैत्तिरीयसंहिता में (६।५।३।४), मैत्रायणीयसंहिता में (१।४।१४, १।५।६, १।१०।८, ३।४।१०, ४।६।७), काठकसंहिता में (३४।१३, ३६।३, ३८।१४), शौनकियों की अथर्ववेदसंहिता में (५।६।४, १३।३।८), ऐतरेयिब्राह्मण में (३।१[१।१२]), शाङ्खायनीयब्राह्मण में (१।१, ५।८, ७।१०), शतपथब्राह्मण में (४।३।१।५, १३।१।२।२) और अन्य ग्रन्थों में भी पाया जाता है। उन स्थलों का अधिक निर्देश वाराणसी के चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित वेदाङ्गज्योतिष के **कौण्डिन्न्यायनव्याख्यान** की भूमिका में देखें (पृ. १२९-१३२)। ऋग्वेद की[5] एक ऋचा में भी बारह मासों से अतिरिक्त उत्पन्न होने-वाले तेरहवें मास का (अधिकमास का अथवा मलमास का) उल्लेख मिलता है।

ब्राह्मणग्रन्थो में और श्रौतसूत्र–गृह्यसूत्रादि में भी पाए जाने वाले माघ-फाल्गुन-चैत्र-वैशाखादि मासनाम तो चान्द्र मासों के ही नाम हैं। उनका चान्द्र-मासत्व तो पाणिनि के **"साऽस्मिन् पौर्णमासीति"** (अष्टाध्यायी ४।२।२१) इस व्युत्पत्ति से भी सूचित होता है। हेमाद्रि से और माधव से प्रदर्शित प्राचीन आचार्यों के[6] वचन

---

१. • उपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यंहसस्पतये त्वा।
—मा.वा.शु.य.वे.सं. ७।३०, द्र.–शतपथब्राह्मण ४।३।१।१४–२०।
• तपस्याय स्वाहाऽंहसस्पतये स्वाहा।—मा.वा.शु.य.वे.सं. २२।३१।

२. तपस्याय स्वाहा संसर्पोऽस्यंहस्पत्याय स्वाहा।—मै.सं.३।१२।१३।

३. तपश् च तपस्यश् चोपयामगृहीतोऽसि संसर्पोऽस्यंहस्पत्याय त्वा।
—तैत्तिरीयसंहिता १।४।१४।१, द्र.– ६।५।३।४।

४. मासाश् च चान्द्राः, त्रयोदशस्य चान्द्रत्वात्, पौर्णमासीनिमित्तस्य चैत्रादिव्यपदेशस्य चान्द्राणामेव सम्भवात्, अत एव मासानुविधायिमधुशब्दः।—तै.सं.व्याख्या १।४।१४।१।

५. वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते॥—ऋग्वेदसंहिता १।२५।८।

६. चैत्रो मासो मधुः प्रोक्तो वैशाखो माधवो भवेत्।
ज्यैष्ठमासश् च शुक्रः स्यादाषाढः शुचिरुच्यते॥ इत्यादि
—चतुर्वर्गचिन्तामणि,परिशेषखण्ड, कालनिर्णय, चौखम्भासंस्कृतसंस्थान, १९८५क्रै., पृ.१५; कालमाधव, चौखम्भासंस्कृतसंस्थान, २०४५ वै., पृ.४१-४२।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से भी वेदमन्त्रसंहिताओं में प्रसिद्ध प्राचीनतम मासनाम के मधु-माधवादि श
का और चैत्र–वैशाखादि शब्दों का पर्यायवाचकत्व और चान्द्रमासवाचकत्व
अवगत होता है। किन्तु यहाँ पर ध्यान देना चाहिए कि पहले लगधमुनिप्रो
वेदाङ्गज्योतिष के **"स्वराक्रमेते सोमार्कौ"** इत्यादि (श्लोक ६) वचन के आधार
(वेदाङ्गज्योतिष का हमारा व्याख्यान भी देखिए) तपः, तपस्य, मधु, मा
इत्यादि मास निश्चित किए जाने चाहिए और माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख इत्य
को क्रमशः तपः, तपस्य इत्यादि से अभिन्न माना जाना चाहए। आजकल
तिथिपत्रों के (पञ्चाङ्गों के) मूल वैदिक ग्रन्थों में अनुल्लिखित मकर, कु
मीन, मेष इत्यादि राशियों को लेकर परिभाषित करनेवाले[1] अर्वाचीन वचनों
परिभाषित किए गए माघ-फाल्गुनादि मासों से वैदिक तपः, तपस्य इत्यादि म
को अभिन्न मानने की भूल नहीं करनी चाहिए। निर्मलचन्द्र लाहिडी के ए
मेरिज में ऐसी भूल की गई देखी जाती है[2]। वैदिक धर्मशास्त्रियों को उ
सावधान होना चाहिए। यद्यपि पाणिनि का **"साऽस्मिन् पौर्णमासीति"** (अष्टाध्य
४।२।२१) सूत्र ने माघादि मासों के नामों की व्युत्पत्ति प्रदर्शित की है तथापि
व्युत्पत्ति माघादि पदों के स्वरनिरूपण में और संस्कारप्रदर्शन में ही उपयुक्त
है, माघादि पदों का अर्थ तो लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष के **"स्वराक्र**
इत्यादि श्लोक के अर्थ को अच्छी तरह समझकर ही निश्चित किया जाता
वेदमन्त्रों में देखे गए तपस्-तपस्यादि पदों के और माघ-फाल्गुनादि पदों के
में असामञ्जस्य होने पर[3] वेदमन्त्र के प्रमाण से ऋतुबद्धरूप में निश्चित तप
तपस्यादि मासों का ऋतुबद्धत्वानुकूलरूप में लगधमुनि से किया गया प्रतिप
ही ग्राह्य होता है। अत एव कुमारिल भट्ट ने भी[4] अर्थ से विसंवाद की
स्थिति में व्याकरणस्मृति को केवल स्वरसंस्कारार्थक मानकर विवक्षित अर्थ

---

१. • **मेषग-रविसङ्क्रान्तिः शशिमासे भवति यत्र तच् चैत्रम्।**
एवं वैशाखाद्या वृषादि-सङ्क्रान्तियोगेन॥—गोविन्दानन्द की वर्षक्रियाकौमुदी, पृ.२

• **मेषादिस्थे सवितरि योयो मासः प्रपूर्यति चान्द्रः।**
चैत्राद्यः स ज्ञेयः पूर्तिद्वित्वेऽधिमासोऽन्त्यः॥
—कालमाधव, संवत्सरप्रकरण, मलमासनिर्णय (चौ.सं.सं., २०४५ वै.), पृ.

२. द्रष्टव्य– इसी ग्रन्थ का पूर्वपृष्ठ २१,३७ ।

३. तपश् च तपस्यश् च शैशिरावृतू।—इत्यादि, मा.वा.शु.य.वे. १५।५७।

४. **यत्राऽर्थस्य विसंवादः प्रत्यक्षेणोपलभ्यते।**
स्वरसंस्कारमात्रार्था तत्र व्याकरणस्मृतिः॥
—तन्त्रवार्तिक २।१।१७ (आनन्दाश्रमसंस्करण, १९७० क्रै., पृ. ४०

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पकडने के और व्याकरण-स्मृति के स्वर-संस्कारर्थक व्युत्पत्ति से सूचित अर्थ को छोड देने को कहा है। कहीं पर कदाचित् मन्त्र के प्रयोग में और ब्राह्मण के प्रयोग में असामञ्जस्य दिखाई देने पर मन्त्र के प्रयोग का प्राबल्य होने की बात भी कात्यायनश्रौतसूत्र में (१।५।७)[1] बताई गई है। ऐसी ही बात कातीय-मन्त्रभ्रान्ति-हरसूत्र में भी पाई जाती है[2]। यह बात जैमिनीय-धर्ममीमांसासूत्र में भी निर्णीत है[3]। मन्त्र में प्रयुक्त तपस्-तपस्यादि मासवाचक शब्दों का किस कालविशेष में वाचकशक्ति है उसका लगधवचन से निश्चय करके तदनुसार ही वैदिक धर्मानुयायियों को माघादि पदों के अर्थों को समझना चाहिए। उक्त विवरण से वैदिक तपः, तपस्य, मधु, माधव इत्यादि मासों का चान्द्रमासत्व स्पष्ट होता है और माघ-फाल्गुन-चैत्र-वैशाखादि का भी तपः, तपस्य, मधु, माधव इत्यादि से अभेद होने से चान्द्रमासनामत्व स्पष्ट हो जाता है। इस प्रसङ्ग में मास शब्द ही चन्द्रसम्बद्ध काल का वाचक होने की बात को दिखानेवाला माधवाचार्य का सकारान्त मास् शब्द चन्द्र का वाचक है, उसका यह काल इस अर्थ में मास शब्द प्रयुक्त होता है ऐसा बतानेवाला[4] वचन भी स्मरणीय है। **"सूर्यामासा दृशे कम्"** इत्यादि वचनों में (ऋग्वेदसंहिता ८।९४।२) चन्द्रवाची मास् का वैदिक प्रयोग पाया ही जाता है। हेमाद्रि ने भी चतुर्वर्गचिन्तामणि के परिशेष खण्ड के कालनिर्णयभाग में[5] चैत्र, वैशाख इत्यादि शब्दों को चान्द्र मास को बतानेवाला ही निश्चित किया है। इस स्थिति में धर्मरत्ननामक धर्मशास्त्रनिबन्ध ग्रन्थ के कालविवेक नाम के खण्ड में आया हुआ तपस्-तपस्यादि पदों का सौरमास-वाचकत्व निश्चित होता है ऐसा कहनेवाला[6] जीमूतवाहन का वाक्य वैदिक

---

१. मन्त्रचोदनयोर् मन्त्रबलं प्रयोगित्वात्।—कात्यायनश्रौतसूत्र १।५।७।

२. मन्त्रचोदनयोर् मन्त्रः प्रयोगित्वाद् बलं यतः।

—कातीयमन्त्रभ्रान्तिहरसूत्र, श्लो. १०४ (शुक्लयजुर्विधानसूत्रम्, निर्णयसागरमुद्रणालय, १९४३ क्रै., पृ.६६३)।

३. मन्त्रतस् तु विरोधे स्यात् प्रयोगरूपसामर्थ्यात् तस्मादुत्पत्तिदेशः सः।

—जैमिनीयधर्ममीमांसासूत्र ५।१।१६।

४. तत्र सकारान्तं मासिति प्रातिपदिकं चन्द्रवाचि, तस्याऽयं काल इति मासः।

—कालमाधव, मासनिर्णय-प्रकरण, चौखम्भासंस्कृतसंस्थान, २०४५ वै., पृ. ४४।

५. तस्माच् चान्द्रमासवचना एव चैत्र-वैशाखादिशब्दाः।

—चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड, कालनिर्णय; चौखम्भासंस्कृतसंस्थान, १९८५ क्रै., पृ.१४।

६. तपस्-तपस्यादिपदानां सौरमासादिवचनत्वावधारणात्।—कालविवेक, पृ.१८।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri
परम्परा का प्रतिकूल ही ठहरता है। अत एव वैदिक परम्परा में धार्मिक कृत्यों में मास चान्द्र ही लिए जाते हैं, यह बात निश्चित हो जाती है।

सौर मासों के नाम मुख्य वैदिक वाङ्मय में नहीं दिखाई देते हैं। सूर्य के राशियों में सङ्क्रान्ति को लेकर गिने जानेवाले मासों के नाम अर्वाचीन अवगत होते हैं। वैसे सौर मासों के नाम मेषमास, वृषमास, मिथुनमास, कर्कटमास, सिंहमास, कन्यामास, तुलामास, वृश्चिकमास, धनुर्मास, मकरमास, कुम्भमास और मीनमास हैं। इन नामों का निर्देश १९३६ क्रैस्ताब्द में प्रकाशित और रतलामनिवासी ज्योतिर्विद्वर्य महादेव पाठक से विरचित आशुबोध-ज्योतिष नाम के ग्रन्थ में प्रचलित बताए गए हैं। भागवत में[1] इन को सूचित किया गया दिखाई देता है। शिवपुराण में[2] सिंहमासशब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। वहाँ **"वृश्चिके मासि सम्प्राप्ते"** ऐसा उल्लेख भी (१।१२।२५) मिलता है। **"मृगमासि तथा स्नायात्"** ऐसा वचन भी वहाँ पाया जाता है (१।१२।२७)। स्कन्दपुराण के वैष्णवखण्ड में[3] कन्यामास कुम्भमास शब्द भी प्रयुक्त देखे जाते हैं। कार्यविशेष में सौर-मास को ग्राह्य बतानेवाले कथित लघुस्मृतियों के वचन भी[4] अर्वाचीन ग्रन्थों में पाए जाते हैं। पुराणों के उल्लेख और उक्त सौरमासपरक वचन सब अर्वाचीन हैं, अनाकर वा प्रक्षिप्त हैं।

- • माघादिशब्दानामपि सौरनामत्वं श्रुतित एवाऽवधार्यते।—कालविवेक, पृ.१९।

१. नभोवलयस्य कालचक्रगतो द्वादश मासान् भुङ्क्ते राशिसंज्ञान्, संवत्सरावयवान्।
—भागवत ५।२२।५।

२. गोदावर्यां सिंहमासे स्नायात् सिंहबृहस्पतौ।—शिवपुराण १।१२।२२।

३. • चकार कन्यामासे तु ध्वजारोपमहोत्सवम्।—स्कन्दपुराण २।१।१७।८।

• कुम्भमासे पौर्णमास्यां मघायोगो यदा भवेत्।
कुमारधारिकां यान्ति सर्वतीर्थानि भो द्विजाः॥—स्कन्दपुराण २।१।२७।१०।

४. • विवाहव्रतयज्ञेषु सौरं मानं प्रशस्यते।
पार्वणेऽन्वष्टकाश्राद्धे चान्द्रमिष्टं तथाऽऽब्दिके॥
—ऋष्यशृङ्गवचन, हेमाद्रिकृत चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड, कालनिर्णय, चौखम्भासंस्कृतसंस्थान, १९८५ क्रै., पृ. १९।

• एकोद्दिष्टविवाहादौ ऋणादौ सौरसावनौ।
सदैव पितृकृत्यादौ मासश् चान्द्रमसः स्मृतः॥—स्मृत्यन्तरवचन, वहीं, पृ. १९।

• सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः।
आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते॥
—ज्योतिर्गार्ग्यवचन, चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड, कालनिर्णय, पृ.१९; कालमाधव, शुद्धमासनिर्णयप्रकरण का अन्त्य भाग, पृ. ५१।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वैदिक धार्मिक कृत्य तो चान्द्र मान को लेकर ही प्रमुख रूप में चलते हैं। विवाह में भी चान्द्र मास को ही लेने की बात गृह्यसूत्रों में विवाहकाल बतानेवाले वचनों में आपूर्यमाण पक्ष का अथवा पूर्वपक्ष का अथवा शुद्ध पक्ष का अथवा शुक्ल पक्ष का उल्लेख देखे जाने से अवगत होती है। ऋग्वेदियों के आश्वलायनगृह्यसूत्र में[1] कौषीतकिगृह्यसूत्र में[2] और शाङ्खायनगृह्यसूत्र में भी (१।५।५) आपूर्यमाण पक्ष का उल्लेख पाया जाता है। कृष्णयजुर्वेदियों के बौधायनगृह्यसूत्र में भी आपूर्यमाण पक्ष का उल्लेख और चान्द्रमासविशेष का निषेध देखे जाने से[3] विवाह में ग्राह्य मास भी चान्द्र ही माने गए अवगत होते हैं। आपस्तम्बगृह्यसूत्र में भी सभी कर्मों के काल के निर्देश में[4] और विवाह के सम्बन्ध में भी[5] वैदिक चान्द्र मासों को ही सूचित करनेवाले वचन देखे जाते हैं। लौगाक्षिप्रणीत काठकगृह्यसूत्र में भी[6] शुद्धपक्ष का उल्लेख करके विवाह में चान्द्र मास ही ग्राह्य होने की बात सूचित की गई है। भारद्वाजगृह्यसूत्र में भी विवाहकाल के विषय में चान्द्र मास को सूचित करनेवाला वचन[7] पाया जाता है। शुक्लयजुर्वेदियों के पारस्करगृह्यसूत्र में भी विवाह के लिए चान्द्र मास की ही ग्राह्यता सूचित करनेवाला वचन[8] प्राप्त है। सामवेदियों के गोभिलगृह्यसूत्र में भी[9] परिभाषा से ही विवाह में भी चान्द्रमास ही ग्राह्य होने की बात सूचित की गई है। खादिरगृह्यसूत्र में और द्राह्यायणगृह्यसूत्र

---

१. उदगयन आपूर्यमाणपक्षे कल्याणे नक्षत्रे चौडकर्मोपनयन-गोदान-विवाहाः।
—आश्वलायनगृह्यसूत्र १।४।१।

२. उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे कुमार्यै पाणिं गृह्णीयात्।—कौषीतकिगृह्यसूत्र १।१।८।

३. • विवाहं व्याख्यास्याामः, उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे युग्मान् ब्राह्मणान् वरान् प्रहिणोति।—बौधायनगृह्यसूत्र १।१।१३,१४।
• सर्वे मासा विवाहस्य शुचि-तपस्-तपस्यवर्जमित्येके।—बौधायनगृह्यसूत्र १।१।१८–१९।

४. अथ कर्माण्याचाराद् यानि गृह्यन्ते, उदगयन-पूर्वपक्षा-ऽहः-पुण्याहेषु कार्याणि।
—आपस्तम्बगृह्यसूत्र १।१।१,२ [१।१,२]।।

५. सर्व ऋतवो विवाहस्य शैशिरौ मासौ परिहाप्योत्तमं च नैदाघम्।—वहीं १।२।१२ [२।१२]।

६. अथ ब्रह्मदेयायाः प्रदानविधिं व्याख्यास्यामः, शुद्धपक्षस्य पुण्याहे पर्वणि वोदगग्रान् दर्भा-नास्तीर्य तेषूपविशतः प्राङ्मुखः प्रतिग्रहीता सामात्यः प्रत्यङ्मुखः प्रदाता।
—काठकगृह्यसूत्र १५।१,२ [२।३।१,२]।

७. पूर्वपक्ष उपगृह्णीत विज्ञायते पूर्वपक्षो देवानामिति दैवं पुनरिदं कर्माऽपरपक्ष इत्यपरं विज्ञायतेऽपरपक्षः पितॄणामिति पितृसंयुक्तं पुनरिदं कर्म।—भारद्वाजगृह्यसूत्र १।१२।

८. उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे कुमार्याः पाणिं गृह्णीयात्।—पारस्करगृह्यसूत्र १।४।५।

९. उदगयने पूर्वपक्षे पुण्येऽहनि प्रागावर्तनादह्नः कालं विद्यात्।—गोभिलगृह्यसूत्र १।१।३।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में भी[1] परिभाषा से ही विवाह के लिए चान्द्रमास ही ग्राह्य होने की बात सू की गई है। अथर्ववेदियों के कौशिकगृह्यसूत्र में भी[2] विवाह के लिए चान्द्रमास ग्राह्य होने की बात बताई गई है।

उक्त विवरणों से वैदिक मूल परम्परा में मास चान्द्र ही लिए जाने बात स्पष्ट है। हेमाद्रिप्रभृति धर्मशास्त्रनिबन्धियों ने बौधायन के नाम से "मी मेषयोर् मेषवृषयोर् वा वसन्तः" यह वचन (हेमाद्रि का कालनिर्णय; पृ. कालमाधव, ऋतुनिर्णयप्रकरण, पृ.४३; निर्णयसिन्धु, ऋतुनिर्णयप्रकरण) दिख है। इससे सौर मास भी सूचित होते हैं। किन्तु मूल वैदिक वाङ्मय में अन्यत्र पाए जानेवाले मीन-मेषादि राशियों के उल्लेख से युक्त यह वचन बौधाय गृह्यसूत्र-धर्मसूत्रादि के उपलभ्यमान संस्करणों में भी नहीं पाया जाता है। लिए यह वचन किसी से बौधायनगृह्यसूत्रादि के किसी हस्तलिखित पुस्तक प्रान्त भाग में लिखा गया होगा, और उसी को अविवेक से बौधायनवचन मान किसी धर्मशास्त्रनिबन्धी ने लिखा होगा, उसी से गड्डरिकाप्रवाह (भेडियाधसा न्याय से अन्य धर्मशास्त्रनिबन्धियों ने भी लिखा होगा। जो कुछ भी हो, उ वचन मूल वैदिक वाङ्मय का अनुरूप नहीं है। अतः उस वचन से भी वैदिक परम्परा में मीन-मेषादिराशिमूलक सौर मास मान्य नहीं कहे जा सकते वस्तुतः उक्त कथन भी चान्द्र चैत्रशुक्लादिक वैशाखकृष्णान्त चान्द्रमासद्वयात्म ऋतु कभी मीन और मेष में तथा कभी मेष और वृष में पडता है इस बात स्मरण के लिए लिखा गया प्रतीत होता है। इससे यह वचन भी चान्द्र वसन्त को ही सूचित करता हुआ अवगत होता है।

इस वैदिक शास्त्रीय वस्तुस्थिति में सौर मास को विवाहादि में कै मान्य माना गया यह भी एक ज्वलन्त प्रश्न ही है। वराहमिहिर ने भी विवाहप में[3] विवाह में चान्द्र मास ही ग्राह्य होने की बात सूचित की है। इस स्थिति विवाह आदि में सौर मास को कैसे ग्राह्य माना गया यह प्रश्न खडा होता ही है

---

१. उदगयन-पूर्वपक्ष-पुण्याहेषु प्रागावर्तनादह्नः कालोऽनादेशे।—द्राह्यायणगृह्यसूत्र १।१।२

२. अथ विवाहः ऊर्ध्वं कार्त्तिक्या आ वैशाख्याः। यथाकामी वा। चित्रापक्षं तु वर्जयेत्।
—कौशिकगृह्यसूत्र ७५।१–४ [१०।१।१-

३. चैत्रं प्रोज्भ्य पराशरः कथयते दुर्भाग्यदं योषिताम्,
आषाढादिचतुष्टये न शुभदं कैश्चित् प्रदिष्टं द्विजैः।
श्रेष्ठं पक्षमुशन्ति शुक्लमसितस्याऽऽद्यं त्रिभागं तथा,
रिक्तां प्रोज्भ्य तिथिं तथा त्वयनयोः सन्धिं च शेषाः शुभाः ॥—विवाहपटल, पद्य १६,१

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का नवाँ ज्वलन्त प्रश्न

चान्द्रमास की पूर्णिमान्तता क्यों?

मूल वैदिक परम्परा में चान्द्रमास शुक्लपक्षादि कृष्णपक्षान्त है। यह बात लगधमुनि के "माघशुक्लप्रपन्नस्य पौषकृष्णसमापिनः" (श्लोक ५) इस वचन से ही स्पष्ट होती है। वेदों में और वेदाङ्गों मे शुक्लपक्ष को पूर्वपक्ष और कृष्णपक्ष को अपरपक्ष कहा गया है। तैत्तिरीयसंहिता में[1], तैत्तिरीयब्राह्मण में[2], काठकसंहिता में (७।५), कपिष्ठलकठसंहिता में (५।४)[3], माध्यन्दिनीयवाजसनेयिशुक्लयजुर्वेद-शतपथब्राह्मण में (१४।६।१।७), काण्ववाजसनेयिबृहदारण्यकोपनिषद् में (३।१।५)[4], जैमिनीयसामवेदब्राह्मण में[5], पञ्चविंशब्राह्मण में[6] और षड्विंशब्राह्मण में[7] भी पूर्वपक्ष शब्द के प्रयोग देखे जाते हैं। शतपथब्राह्मण में पहले शुक्लपक्ष की और पीछे कृष्णपक्ष की प्रजापति से सृष्टि की जाने की बात[8] बताई गई है। पूर्वपक्ष-अपरपक्ष शब्दों का प्रयोग आश्वलायनश्रौतसूत्र में (८।१४।३), आपस्तम्बश्रौतसूत्र में (६।१६।५), कात्यायनश्रौतसूत्र में (२४।४।३, २४।४।२२), लाट्यायनश्रौतसूत्र में (४।८।१८, ८।१।१, ८।१।४, ८।११।६) और द्राह्यायणश्रौतसूत्र में (८।४।२१, २२।१।१, २२।१।४, २४।३।७-८) भी मिलते हैं। इससे वैदिक परम्परा में पूर्णिमान्त पक्ष को पूर्वपक्ष और अमावास्यान्त पक्ष को अपरपक्ष वा उत्तरपक्ष माने जाने की बात स्पष्ट होती है। कौटलीय अर्थशास्त्र में भी शुक्लपक्षादि मास का ही उल्लेख किया गया

---

१. पूर्वपक्षे सुत्या सम्पद्यते।—तैत्तिरीयसंहिता ७।४।८।३।

२. यं कामयेत वसीयान् त्स्यादिति तं पूर्वपक्षे याजयेत्। वसीयानेव भवति। यं कामयेत पापीयान् त्स्यादिति तमपरपक्षे याजयेत्। पापीयानेव भवति। तस्मात् पूर्वपक्षोऽपरपक्षात् कारुण्यतरः।—तैत्तिरीयब्राह्मण २।२।३।१-२।

३. अग्नीषोमीयया पूर्वपक्ष उपतिष्ठेत।—कपिष्ठलकठसंहिता ५।४।

४. सर्वं पूर्वपक्षाऽपरपक्षाभ्यामाप्तं सर्वं पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यामभिपन्नं केन यजमानः पूर्वपक्षा-परपक्षयोराप्तिमतिमुच्यते।—काण्व-बृहदारण्यकोपनिषद् ३।१।५।

५. • अथ सत्रिण उभौ पूर्वपक्षाऽपरपक्षौ सुन्वन्त आसते।—जैमिनीयब्राह्मण १।३५९।
   • पूर्वपक्षाऽपरपक्षौ यजते।—वहीं २।९८।

६. तेषां पूर्वपक्षे सुत्या सम्पद्यते।—पञ्चविंशब्राह्मण ५।९।१४।

७. पूर्वपक्षे वै देवा दीक्षन्ते, तेऽपरपक्षे सोमं भक्षयन्ति।—षड्विंशब्राह्मण ५।६।२।

८. विष्णुक्रमैर् वै प्रजापतिरहरसृजत वात्सप्रेण रात्रिम्, विष्णुक्रमैर् वै प्रजापतिः पूर्वपक्षा-नसृजत वात्सप्रेणाऽपरपक्षान्।—माध्यन्दिनीय-शतपथब्राह्मण ६।७।४।७।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है[१]। कतिपय विचारकों का कौटलीय अर्थशास्त्र में कृष्णपक्षादि मास माने जा की धारणा भ्रमपूर्ण दिखाई देती है। सुश्रुतसंहिता में भी[२] शुक्लपक्षादि ही चान्द्र मास माना गया है। अमरकोश तक में भी[३] शुक्लपक्ष को पूर्वपक्ष और कृष्णप को अपरपक्ष कहा गया है। वैक्रमाब्दों की दशम शताब्दी में वर्तमान माने ग राजशेखर ने भी काव्यमीमांसा के अठारहवें अध्याय में[४] वैदिक धार्मिक कृत्य के चान्द्रमास को शुक्लपक्षादि कृष्णपक्षान्त बताया है।

उपर्युक्त प्रकार की शास्त्रीय वस्तुस्थिति होने पर भी मूल वैदिक परम्परा को छोडकर भारतवर्ष के उत्तरभाग के तिथिपत्रकारों ने (पञ्चाङ्गकारों ने) चान्द्र मास को क्यों कृष्णादि शुक्लान्त माना यह भी एक ज्वलन्त ही प्रश्न है। उन्होंने चैत्रकृष्णपक्ष को पूर्ववर्ष में रखकर मास के मध्य से चैत्रशुक्ल प्रतिपदा से वत्सरारम्भ कैसे माना यह भी उसी प्रश्न का अनुगामी एक ज्वलन्त प्रश्न ही है।

हेमाद्रि से कालनिर्णय में प्रदर्शित और माधव से कालमाधव के शुद्ध-मासनिर्णय प्रकरण में भी उल्लिखित[५] पद्य से ब्राह्मणों के लिए अर्थात् धर्मकार्य के लिए अमावास्यान्त चान्द्रमास ग्राह्य होने की और शासक के करग्रहण-वेतनदानादि कार्य के लिए सङ्क्रान्तिपरिच्छिन्न सौर मास ग्राह्य होने की तथा वैश्य श्रेष्ठियों के धन प्रयोग-वृद्धिग्रहण-विनिमयव्यवस्थादि कार्य के लिए पूर्णिमान्त चान्द्र मास ग्राह्य होने की बात विदित होने पर भी मुख्यतया धर्मकार्यों में प्रयुक्त होनेवाले पञ्चाङ्गों में भी क्यों पूर्णिमान्त चान्द्र मास लिया जाता है यह भी एक ज्वलन्त प्रश्न ही है।

---

१. पञ्चदशाहोरात्राः पक्षः, सोमाऽऽप्याशनश् शुक्लः, सोमाऽवच्छेदनो बहुलः, द्विपक्षो मासः।—कौटलीय अर्थशास्त्र २।२०।

२. पञ्चदशाऽहोरात्राणि पक्षः। स च द्विविधः शुक्लः कृष्णश् च। तौ मासः।—सुश्रुत.१।६।५।

३. पक्षौ पूर्वाऽपरौ शुक्लकृष्णौ मासस् तु तावुभौ।—अमरकोश १।४।१२।

४. पञ्चदशाहोरात्रः पक्षः, वर्धमानसोमः शुक्लो वर्धमानकृष्णिमा कृष्ण इति पित्र्यं मास-मानम्। अमुना च वेदोदितः कृत्स्नोऽपि क्रियाकल्पः। पित्र्यमेव व्यत्ययितपक्षं चान्द्र-मसम्।—काव्यमीमांसा, अष्टादश अध्याय।

५. अमावास्यापरिच्छिन्नो मासः स्याद् ब्राह्मणस्य तु।
सङ्क्रान्ति-पौर्णमासीभ्यां तथैव नृप-वैश्ययोः॥—चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड, कालनिर्णय, पृ. ३०, कालमाधव, शुद्धमासनिर्णयप्रकरण, पृ.५०।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का दशवाँ ज्वलन्त प्रश्न

अयन के अन्त में ही अधिमास मानने की व्यवस्था क्यों भूला दी गई?

यद्यपि अधिमास में कर्तव्य और अकर्तव्य को दिखानेवाले विधि अथवा निषेध ब्राह्मणग्रन्थों में और श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्रों में अधिक सङ्ख्या में तो प्राप्त नहीं होते हैं तथापि अधिमास का उल्लेख वेदों में और वेदाङ्गों में भी कुछ तो पाए जाते हैं। कृष्णयजुर्वेदियों की मैत्रायणीयसंहिता में[१], तैत्तिरीयसंहिता में[२], शुक्ल-यजुर्वेदियों की माध्यन्दिनीयसंहिता में[३] और शतपथब्राह्मण में भी[४] अधिमास का उल्लेख मिलता है। बौधायनश्रौतसूत्र में (७।१६), आपस्तम्बश्रौतसूत्र में (८।२०।८), कात्यायनश्रौतसूत्र में (९।१३।१४) और बौधायनगृह्यसूत्र में (२।१०।८) भी उक्त मास के उल्लेख मिलते हैं। ऋग्वेदसंहिता में भी[५] अधिकमास का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेदियों के ऐतरेयिब्राह्मण में अधिक मास को निन्द्य काल बतानेवाला[६] उल्लेख पाया जाता है। इस प्रकार अधिकमास के काल का निन्द्यत्व अवगत होने से और चान्द्र ऋतुओं का सौर ऋतुओं से दूरविप्रकर्ष के परिहार के लिए (चान्द्र और सौर ऋतुओं के बीच में कभी भी एक महीने के काल से अधिक दूरी न हो इस लिए) चान्द्र अधिकमास की व्यवस्था आवश्यक होने से भी अधिकमास की परिभाषा आवश्यक होती है। अधिकमास की व्यवस्था न होने पर तो मुसलमानों के रमजान महीने की तरह हमारे माघादि चान्द्र मास भी कभी जाडे में पडेंगे कभी धूप में पडेंगे और कभी वर्षा में पडेंगे और सौर ऋतुओं के विभिन्न ऋतुओं में घूमते रहेंगे। ऐसा न हो, चान्द्र माघ मास सदा काल

---

१. संसर्पोऽस्यंहस्पत्याय स्वाहा।—मैत्रायणीयसंहिता ३।१२।१३।

२. • संसर्पोऽस्यंहस्पत्याय त्वा।—तैत्तिरीयसंहिता १।४।१४।१।
 • उपयामगृहीतोऽसि संसर्पोऽस्यंहस्पत्याय त्वेत्याहाऽस्ति त्रयोदशो मास इत्याहुस् तमेव तत् प्रीणाति।—तैत्तिरीयसंहिता ६।५।३।४

३. उपयामगृहीतोऽस्यंहसस्पतये त्वा।—मा.सं.७।३०, अंहसस्पतये स्वाहा।—मा.सं.२२।३१।

४. उपयामगृहीतोऽस्यंहसस्पतये त्वेति त्रयोदशं ग्रहं गृह्णाति यदि त्रयोदशं गृह्णीयात्।
—माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-शतपथब्राह्मण ४।३।१।२०।

५. वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते।—ऋग्वेदसंहिता १।२५।८।

६. तं त्रयोदशान् मासादक्रीणँस् तस्मात् त्रयोदशो मासो नाऽनुविद्यते न वै सोमविक्रय्यनुविद्यते पापो हि सोमविक्रयी।—ऐतरेयिब्राह्मण ३।१[१।१२]।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाडे में ही पडे, चान्द्र ज्येष्ठ मास सदाकाल गर्मी में ही पडे, चान्द्र भाद्र मास सदाकाल वर्षा में ही पडे, इस प्रकार की व्यवस्था के लिए अधिकमास की व्यवस्था वैदिककालगणनासिद्धान्त में अनादि काल से चली आ रही है। उस अधिकमास की परिभाषा को बतानेवाला उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ है। उसके **"द्व्यूनं द्विषष्टिभागेन"** (श्लो.३७) इत्यादि श्लोक में अधिकमास की उत्पत्ति की व्यवस्था अथवा व्याख्या की गई है। उस श्लोक की व्याख्या है–

सौर दिन से पार्वण दिन (तिथि) बासठ भागों में से दो भागों से न्यून होता है, जिस कारण से पाँच वर्षों के युग के मध्य में (उदगयन के अन्त में शुचिमास में [आषाढ में]) और (उस युग के) अन्त में (दक्षिणायन के अन्त में सहस्यमास में [पौष में]) इस प्रकार दो अधिमास उत्पन्न होते हैं।

यह लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष की कालगणनापद्धति के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त को बतानेवाला श्लोक है। राशियों के आधार में नहीं, दृक्सिद्ध सौर अयनों के आधार में अधिकमास मानकर सौर अयनों में और चान्द्र अयनों में तथा सौर वर्षों में और चान्द्र वर्षों में तालमेल बनाए रखने की यह पद्धति अर्वाचीन-निरयण-राशिपद्धति से अप्रभावित है और अनादि वैदिक पद्धति है और विशेष ध्यानयोग्य है।

इस अधिकमासव्यवस्था में सभी पञ्चवर्षात्मक युग के सभी युगार्धों में अधिकमास नियमित रूप से नहीं योजित किया जाता है, यथावश्यक औचित्यानुसार ही अधिकमास योजित किया जाता है। किन्तु जबजब अधिकमास योजित किया जाता है तबतब अयन के अन्त में ही शुचिमास में (आषाढ में) अथवा सहस्यमास में (पौष में) द्वितीयशुचिमास (द्वितीयाषाढ) के रूप में अथवा द्वितीयसहस्यमास (द्वितीयपौष) के रूप में ही अधिकमास योजित किया जाता है, अयन के मध्य में अन्य मासों में नहीं। इस प्रकार की व्यवस्था में जब दृक्सिद्ध सौर अयन के आरम्भ के दिन में कृष्णपक्ष की दशमी वा उसके पीछे की तिथि होती है उसी अवस्था में उस कृष्णपक्ष से युक्त अमावास्यान्त मास अधिकमास माना जाता है, जब तो दृक्सिद्धसौरायनारम्भदिन में कृष्णपक्ष की नवमी अथवा उससे पूर्व की तिथि होती है, उस कृष्णपक्ष से युक्त अमावास्यान्त मास अधिकमास नहीं माना जाता है। इस बात को सूचित करनेवाले वचन नेपाल के शासनकेन्द्ररूप काठमाण्डू महानगर में स्थित राष्ट्रिय अभिलेखालय (दरबारलाइब्रेरी/वीरपुस्तकालय) में सङ्गृहीत द्रोणकृत 'रत्नकरण्डिका' नाम के स्मृतिसमुच्चय

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहे जानेवाले प्राचीन धर्मशास्त्रनिबन्धग्रन्थ में (पञ्जीसङ्ख्या तृ. ३७६, Reel No. B 33/12) एकादशीप्रकरण में २०९वें पत्र में पूर्वपृष्ठ में उद्धृत हैं। जैसे—

कृष्णपक्षे दशम्यादौ मेध्यं गच्छेद् दिवाकरः।
द्विराषाढः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे॥

और,

दशमीमभ्यतिक्रम्य यदा सङ्क्रमते रविः।
द्विराषाढः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे॥

इस प्रकार जब गत अधिमास से चान्द्र तीस मास व्यतीत होने पर इकतीसवें मास के कृष्णपक्ष की दशमी से पूर्व ही नवमी में वा उससे भी पूर्व ही सूर्य का अयनपरिवर्तन होगा तो उस अवस्था में उस कृष्णपक्ष में पूर्ण होनेवाला चान्द्र मास अधिमास नहीं माना जाता है। उसके बादवाले अयन के अन्त में अर्थात् गत अधिमास से तीन चान्द्र वर्षों के (छत्तीस चान्द्र मासों के) बीत जाने पर ही अधिकमास माना जाता है। इस प्रकार चान्द्र तपस्-तपस्यादि मासों का और चान्द्र शिशिरादि ऋतुओं का सौर शिशिरादि ऋतुओं से सदा ही सम्बद्धता यथावत् स्थिर रहती है, वहाँ सुदूरविप्रकर्ष नहीं होता है।

उदाहरण से भी यह विषय स्पष्ट किया जाता है। जैसे वेङ्कटेश्वर-शताब्दीपञ्चाङ्ग में (पृ.१९८) २०१४ वैक्रमाब्द में १८७९ शकान्ताब्द में १९५७ क्रैस्ताब्द में दिसम्बर की २१ तारीख शनैश्चरवार में पडनेवाली वैदिक पद्धति की शुक्लप्रतिपदा सौर दृक्सिद्ध उदगयनारम्भ के समीप में है। यही शुक्लप्रतिपदा वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ के अनुसार तपःशुक्लप्रतिपदा (वैदिक आर्तव माघशुक्ल-प्रतिपदा) है। अतः उसी दिन से वैदिकों का वर्ष प्रवृत्त होता है। उसके बाद तीस चान्द्रमासों के बीत जाने पर २०१७ वैक्रमाब्द में अर्थात् १८८२ शकान्ताब्द में १९६० क्रैस्ताब्द में मई महीने की २६ तारीख की शुक्लप्रतिपदा में वैदिकों का अधिकमास (द्वितीय शुचिमास अथवा द्वितीय आषाढ) प्रवृत्त होता है। उसके बाद तीस चान्द्रमासों के बीत जाने पर २०१९ वैक्रमाब्द में १८८४ शकान्ताब्द में १९६२ क्रैस्ताब्द में नवम्बर महीने की २७ तारीख की वैदिक पद्धति की शुक्लप्रतिपदा में वैदिकों का अधिकमास (द्वितीय सहस्यमास अथवा द्वितीय पौषमास) प्रवृत्त होता है। उसके बाद छत्तीस चान्द्रमासों के अर्थात् तीन चान्द्र वर्षों के बीत जाने पर २०२२ वैक्रमाब्द में १८८७ शकान्ताब्द में १९६५ क्रैस्ताब्द में नवम्बर महीने की २३ तारीख की वैदिक पद्धति की शुक्लप्रतिपदा में वैदिकों का अधिकमास (द्वितीय सहस्यमास अथवा द्वितीय पौषमास) प्रवृत्त होता है। इन

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उदाहरणों को और कुछ अन्य उदाहरणों को भी समाविष्ट करके उदाहरणों को नीचे की सारणी में भी दिखाया गया है—

वैक्रमाब्द	शकान्ताब्द	क्रैस्ताब्द	अधिकमास का अवधि	अधिकमास का नाम
२०१७	१८८२	१९६०	मई २६–जून २३	द्वितीयशुचिमास
२०१९	१८८४	१९६२	नवम्बर २७–दिसम्बर २६	द्वितीयसहस्यमास
२०२२	१८८७	१९६५	नवम्बर २३–दिसम्बर २२	द्वितीयसहस्यमास
२०२५	१८९०	१९६८	मई २७–जून २५	द्वितीयशुचिमास
२०२८	१८९३	१९७१	मई २५–जून २२	द्वितीयशुचिमास
२०३०	१९९५	१९७३	नवम्बर २५–दिसम्बर २४	द्वितीयसहस्यमास
२०३३	१८९८	१९७६	नवम्बर २२–दिसम्बर २०	द्वितीयसहस्यमास
२०३६	१९०१	१९७९	मई २६–जून २४	द्वितीयशुचिमास
२०३८	१९०३	१९८१	नवम्बर २७–दिसम्बर २६	द्वितीयसहस्यमास
२०४१	१९०६	१९८४	नवम्बर २३–दिसम्बर २२	द्वितीयसहस्यमास
२०४४	१९०९	१९८७	मई २८–जून २५	द्वितीयशुचिमास
२०४७	१९१२	१९९०	मई २५–जून २२	द्वितीयशुचिमास
२०४९	१९१४	१९९२	नवम्बर २५–दिसम्बर २४	द्वितीयसहस्यमास
२०५२	१९१७	१९९५	नवम्बर २३–दिसम्बर २१	द्वितीयसहस्यमास
२०५५	१९२०	१९९८	मई २६–जून २३	द्वितीयशुचिमास
२०५७	१९२२	२०००	नवम्बर २६–दिसम्बर २५	द्वितीयसहस्यमास
२०६०	१९२५	२००३	नवम्बर २४–दिसम्बर २३	द्वितीयसहस्यमास
२०६३	१९२८	२००६	मई २७–जून २५	द्वितीयशुचिमास
२०६६	१९३१	२००९	मई २५–जून २२	द्वितीयशुचिमास
२०६८	१९३३	२०११	नवम्बर २५–दिसम्बर २४	द्वितीयसहस्यमास
२०७१	१९३६	२०१४	नवम्बर २३–दिसम्बर २१	द्वितीयसहस्यमास
२०७४	१९३९	२०१७	मई २६–जून २३	द्वितीयशुचिमास
२०७६	१९४१	२०१९	नवम्बर २७–दिसम्बर २५	द्वितीयसहस्यमास

नेपालदेश के इतिहास में लिच्छवियों के शिलालेखों में केवल आषाढ और पौष में ही अधिमास देखे जाते हैं, वहाँ वर्तमान शकान्तसंवत् ४३५[1] (विक्रमसंवत्

१. लिच्छविकाल के शिलालेखों में प्रयुक्त इस संवत् को अन्य अनुसन्धाता कार्तिकादि गतसंवत् मानते हैं; उनमें से अधिकांश लोग इसको कार्तिकादि गतशकसंवत् स्वीकार करते हैं और कुछ लोग दूसरे प्रकार का कार्तिकादि गतसंवत् होने की बात बताते हैं। प्रमोदवर्धन कौण्डिन्न्यायन के अनुसन्धान ने वस्तुतः इस संवत् का कार्तिकादि न होकर माघादि (अथवा चैत्रादि) होने का और गतशकसंवत् या अन्य

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५६९), वर्तमान शकान्तसंवत् ५१९ (विक्रमसंवत् ६५३), वर्तमान मानदेवसंवत् ३१[1] (विक्रमसंवत् ६६४), और वर्तमान मानदेवसंवत् ३४ (विक्रमसंवत् ६६७) इन वर्षों में पौष में अधिमास देखे जाते हैं; प्राचीनकाल के लेख्यों में ८०२ शकसंवत् के बाद आरब्ध नेपालसंवत् के ५४७वें और ५५५वें वर्ष में (विक्रमसंवत् १४८३ और १४९१ में) भी पौष में अधिमास देखे जाते हैं; नेपालसंवत् में ही ५९८वें और ६०1वें वर्ष में (विक्रमसंवत् १५३५ और १५३८ में) आषाढ में तीन वर्षों के अन्तर पर अधिकमास देखे जाते हैं; ६०४वें नेपालसंवत् में (विक्रमसंवत् १५४० में) पौष में अधिमास प्राप्त होता है, ६५२वें और ६५५वें नेपालसंवत् में तीन वर्षों के अन्तर में (विक्रमसंवत् १५८९ और १५९२ में) आषाढ में अधिमास माना गया था, ऐसा उल्लेख मिलता है। अधिकमास के सिद्धान्त के प्रयोग के ये उदाहरण स्मरणीय हैं। इस प्रकार नेपाल में वैक्रमाब्द की छठी शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक वेदाङ्गज्योतिष के **'अयन के अन्त में ही अधिमास उत्पन्न होता है'** इस सिद्धान्त को मान कर आषाढ में और पौष में ही अधिमास माना जाता था, यह बात भी स्पष्ट होती है। अनादि काल से चली आ रही यह परम्परा विदेशी शकशासकों के साथ में भारतवर्ष में आए हुए इरानी मग ब्राह्मणों के सन्तति वराहमिहिर जैसे ग्रन्थकारों के पञ्चसिद्धान्तिका जैसे ग्रन्थों के प्रभाव से भारत में राशिपद्धति का प्रचलन होने से और उसी के आधार पर अनादि वैदिक परम्परा की वेदाङ्गज्योतिषोक्त अधिमास-व्यवस्था में भी विचलन आने से पूर्व ही अनादि वैदिक परम्परा को लेकर नेपाल में आए हुए वैशाली के लिच्छवियों से नेपाल में लाया गया प्रतीत होता है, जो व्यवस्था कई शताब्दियों तक नेपाल में काष्ठमण्डपोपत्यका और उसके निकटवर्ती क्षेत्र में प्रयुक्त होती रही। अन्यत्र इस वैदिक प्रणाली का जीवन्त प्रयोग दुर्लभ है।

वेदाङ्गज्योतिषोक्त अधिमास के हमारे व्याख्यान में प्रदर्शित नियम का किसी भी अन्य आधुनिक विद्वान् ने प्रतिपादन नहीं किया है। हमने तो अनुसन्धान-

---

किसी प्रकारका गतसंवत् न होकर वर्तमानशक(न्त)संवत् होने का तथ्य प्रकट किया है। तदनुसार ही यहाँ कोष्ठक में विक्रमसंवत् के वर्ष दिए गए हैं।

१. लिच्छविशासन के उत्तरकाल के शिलालेखों में प्राप्त इस संवत् के सम्बन्ध में अनुसन्धाताओं में मतभेद है। सुमतितन्त्र के हस्तलिखित पुस्तक इत्यादि के लेखों में मानदेवसंवत् के नाम से भी उल्लिखित यह संवत् भी वर्तमानसंवत् ही है और इसका प्रारम्भ विक्रमसंवत् ६३४ (सन् ५७७) में होता है यह निर्णय प्रमोदवर्धन ने किया है। इसी निर्णय के अनुसार यहाँ उक्त संवत् के समानकालिक विक्रमसंवत् का उल्लेख किया गया है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वारा प्राचीन ग्रन्थ रत्नकरण्डिका में प्रतिपादित व्यवस्था का अन्वेषण करके सप्रमाण यह नियम प्रतिपादित किया है। वेदाङ्गज्योतिष की हमारी व्याख्या से युक्त संस्करण (२००५ क्रै.) के परिशिष्ट में सम्बद्ध ग्रन्थ के हस्तलेख की छाया-प्रतिलिपि भी दी गई है (पृ.४७३)। यह हस्तलेख ताडपत्र में प्राचीन लिपि में है, ऊपर उद्धृत दो श्लोक इसी हस्तलेख के हैं। हमारे इस अनुसन्धान से वेदाङ्ग-ज्योतिषग्रन्थ में पञ्चवर्षात्मक सभी युगों में पाँच सौर वर्षों में दो अधिमास की व्यवस्था की गई है और वह अनुपपन्न है, उसी प्रकार वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ का एक सौर वर्ष में ३६६ दिन मानना भी अनुपपन्न है, अतः लगधप्रोक्तवेदाङ्गज्योतिष-ग्रन्थोक्त कालगणनाव्यवस्था थोडे ही समय में परित्यक्त हुई होगी इत्यादि बोलने-वाले शङ्करबालकृष्णदीक्षितादि आधुनिक कुछ वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ के समीक्षकों का भ्रम (द्र.– भारतीय ज्योतिष, अनु. शिवनाथ झारखण्डी, पृ.१३०–१३१) भी निराकृत होता है। इसी प्रकार सौर ऋतु और चान्द्र ऋतु के मध्य में अनियत प्रकार के अन्तर को स्वीकार कर कल्पना के आधार पर प्रस्तुत कृष्णशास्त्री गोडबोले का वैदिक अधिकमास के विषय का विचार (आठ युग पर्यन्त [४० वर्ष पर्यन्त] प्रत्येक ढाई वर्ष में अधिकमास मानना और आठवें युग के अन्त्य का एक अधिक-मास छोडना[१]) और वेङ्कटेश बापूजी केतकरद्वारा **"इण्डियन् याण्ड् फोरन् क्रोनोलजि"** नामक ग्रन्थ में (सन् १९२३, पृ.१०६) प्रस्तुत किया गया वैदिक अधिकमास-सम्बद्ध विचार (पाँच युग पर्यन्त प्रत्येक ढाई वर्ष में अधिकमास मानना और छठे युग के अन्त में अधिकमास के रूप में प्राप्त माघ को छोडना [अधिकमास न मानना] और उसी मास से नवीन युग का प्रारम्भ करना तथा छठी शताब्दी के अन्त में प्राप्त अधिकमास माघ को तो नहीं छोडना [अधिकमास ही मानना][२])

---

१. द्र.– Vedic Chronology and Vedanga Jyotisha, B.G. Tilak, Poona, 1925, p. 91–92

२. So I suggest that the following two verses composed by me may be read, in place of the missing ones, immediately after the 37 th verse of the Yajus-Jyotisha, beginning with **'यदर्धं दिन-भागानां सदा पर्वणिपर्वणि'** ...

> **विहाय युगषट्कान्ते ६ प्राप्तं माघं मलिम्लुचम्।**
> **प्रारभेत सदाऽऽद्यानि युगानि च पुनःपुनः ॥३८॥**
> **न हेयः षट्शताब्दीयो ६०० माघमासोऽधिकस् तु यः।**
> **एवमादियुगारम्भो योग्यकाले सदा भवेत् ॥३९॥**

–Indian And Foreign Chronology, Venkatesh Bapuji Ketkar, Bombay, 1923, p.106.

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी अस्वीकार्य सिद्ध होता है। जिस प्रकार की अधिमासव्यवस्था से वास्तव सौर ऋतु और चान्द्र ऋतु के मध्य में एक मास से अधिक काल का अन्तर कदाऽपि न होगा वैसी अधिमासव्यवस्था ही स्वीकर्तव्य है, यह वेदाङ्गज्योतिषकार का आशय स्पष्ट होता है। आदियुग में और अन्य जिस युग में सौर उदगयन और चान्द्र मास का अत्यन्त सन्निकट काल में ही प्रारम्भ होता है, उसी युग में युग के मध्य में और युगान्त में अधिमास स्वीकृत किया जाना चाहिए, अन्य युग में तो सौर अयन के आरम्भ के काल में स्थित चान्द्र तिथि का विचार करके जिसकिसी भी अयन के अन्त में उपरिप्रदर्शित व्यवस्था के अनुसार अधिमास स्वीकार किया जाना चाहिए, यह बात स्पष्ट होती है।

यह अधिमास की व्यवस्था दिक्प्रदर्शनात्मक रूप में ही विक्रमपूर्व तीसरी शताब्दी के माने गए ग्रन्थ कौटलीय अर्थशास्त्र में भी दो श्लोकों से दिखाई गई है—

दिवसस्य हरत्यर्कः षष्टिभागमृतौ ततः।
करोत्येकमहश्छेदं तथैवैकं च चन्द्रमाः॥

एवमर्धतृतीयानामब्दानामधिमासकम्।
ग्रीष्मे जनयतः पूर्वं पञ्चाब्दाऽन्ते च पश्चिमम्॥ (२।२०, श्लो.९५,९६)।

इन श्लोकों का उल्लेख बारहवीं शताब्दी के माने गए जीमूतवाहन ने भी धर्मरत्ननामक ग्रन्थ के तीन खण्डों में से एक कालविवेक नाम के खण्ड में किया है (पृ.११३)। तेरहवीं शताब्दी में रचित जगन्मोहन में भी इन श्लोकों का कुछ अशुद्ध उल्लेख पाया जाता है (अधिमासनिर्णयप्रकरण, प्रथमभाग, पृ.१४८)।

ऐसे अधिमास की व्यवस्था महाभारत में विराटपर्व में "कलाः काष्ठाश् च युज्यन्ते" इत्यादि श्लोकों से बताई गई है (चित्रशालासंस्करण ५२।१-३, सातवलेकरसंस्करण ४७।१-३)—

कलाः काष्ठाश् च युज्यन्ते मुहूर्ताश् च दिनानि च।
अर्धमासाश् च मासाश् च नक्षत्राणि ग्रहास् तथा॥

ऋतवश् चाऽपि युज्यन्ते तथा संवत्सरा अपि।
एवं कालविभागेन कालचक्रं प्रवर्तते॥

तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात्।
पञ्चमेपञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः॥

इस प्रकार की वेदाङ्गज्योतिष की व्यवस्था होने पर भी हेमाद्रिप्रभृति अर्वाचीन धर्मशास्त्रनिबन्धकारों ने अधिकमास की वेदाङ्गज्योतिषोक्त और

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कौटलीय अर्थशास्त्र में प्रतिपादित परिभाषा को न लेकर लघुहारीत, ब्रह्मसिद्धा नन्दिपुराण, ज्योतिःशास्त्र, वसिष्ठसिद्धान्त, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, काठकगृह्यप शिष्ट, जाबालि, बार्हस्पत्यज्योतिर्ग्रन्थ इत्यादि का नाम लेकर अधिकमास की क्षयमास की परिभाषा बताई है। (द्र.– चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड, का निर्णय, पृ. २६–३५; कालमाधव, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, २०४५ वै., पृ. ५ ६८)। शङ्करबालकृष्ण दीक्षित ने व्यास का, मैत्रेयसूत्र का और नारदसंहिता नाम लेकर अधिमास की और क्षयमास की चर्चा की है (भारतीय ज्योति पृ.४२)। किन्तु उन सब की परिभाषाएँ मूल वैदिक वाङ्मय में नहीं पाए जानेवा राशियों को लेकर बताई गई हैं। इस लिए वे सभी वचन अर्वाचीन प्रमाणित हैं। अतः वेदोक्त अधिमास की उनकी व्याख्या समुचित नहीं दिखाई देती वेदाङ्गज्योतिष में कही गई अधिकमास की परिभाषा ही वैदिकपरम्परा में ग्राह्य तथापि ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी के बाद के जीमूतवाहन, चण्डेश्वर, हेमाद्रि माधव, गोविन्दानन्द, अनन्तदेव, कमलाकर भट्ट, नीलकण्ठ भट्ट, मित्र मि इत्यादि धर्मशास्त्रनिबन्धियों ने वेदाङ्गज्योतिष के सिद्धान्त को सीधे 'असत कहनेवाले ब्रह्मगुप्त के वचन को अथवा वैसे ब्रह्मगुप्त को 'गणकचक्रचूडामणि कहकर प्रशंसा करनेवाले तथा अनुसरण करनेवाले सिद्धान्तशिरोमणिका भास्कर के वचन को धर्मनिर्णय में प्रमाण के रूप में लेकर अधिकमास क निरूपण किया है।

इस प्रकार वैदिक सिद्धान्त के विपरीत अधिकमास की परिभाषा मान की स्थिति भारतवर्षीय ज्योतिषियों में और धर्मशास्त्रनिबन्धियों में कैसे आ यह एक बडा ही ज्वलन्त प्रश्न है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का ग्यारहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

क्षयमास कैसे स्वीकारा गया?

क्षयमास का उल्लेख अर्वाचीन ज्योतिषग्रन्थों में पाया जाता है। उनमें तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में (१२०७ वै.) रचे गए भास्कर के सिद्धान्तशिरोमणि के ग्रहगणिताध्याय के मध्यमाधिकार के अन्त में अधिमासादिनिर्णय के प्रकरण में[1] एक वचन मिलता है। किन्तु ब्रह्मगुप्त के ६८५ संवत् (५५० शाके) में रचे गए ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में ग्यारहवें तन्त्रपरीक्षाध्याय में[2] अपने सिद्धान्त को स्फुट सिद्धान्त बताया गया मिलता है, और इससे स्फुट (स्पष्ट) ग्रहगत्यादि का गणित का विशेष अभिनिवेश ब्रह्मगुप्त का सर्वप्रथम दिखाई देता है। मेषवृषादि-राशि-सङ्क्रान्ति को विना माने क्षयमास नहीं आ सकता है। राशिसङ्क्रान्ति के मानने पर भी स्पष्ट गणित से ही अर्वाचीन ज्योतिषियों से परिभाषित क्षयमास आ सकने की बात और मध्यम गणित से नहीं आ सकने की बात भी शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित के भारतीय ज्योतिष ग्रन्थ में मध्यम और स्पष्ट अधिमास नाम के प्रकरण में उल्लिखित है (पृ. ५११-५१२)। भास्कर ने सिद्धान्तशिरोमणि की वासना में अपने उक्त वचन की व्याख्या में भी[3] एक विलक्षण उल्लेख किया है। उक्त उल्लेख से भास्कर के समय में भी क्षयमास लोक में ही नहीं ज्योतिषियों में भी अप्रसिद्ध होने की बात झलकती है। इससे अर्वाचीन ज्योतिषियों में पाई जानेवाली सूर्य-राशि-सङ्क्रान्ति में आधृत अधिकमास और क्षयमास की धारणा बिलकूल अर्वाचीन अवगत होती है। वेदाङ्गज्योतिष में और अन्य प्राचीन ज्योतिषग्रन्थों में भी क्षयमास का उल्लेख नहीं मिलता है।

उक्त स्थिति में अपौरुषेय वेद के वाक्यों को अथवा वेदमूलक वाक्यों को ही धर्म में प्रमाण माननेवाली और अनादि अनपभ्रष्ट परम्परा को ही धर्म के रूप में ग्रहण करनेवाली वैदिक परम्परा में ऐसे अवेदमूलक अर्वाचीन सादि क्षयमास की धारणा कैसे धर्म में मान्य हुई और उसके लिए नाना–मुनिनाम से कैसे अनेक वचन (कथित धर्मशास्त्रवचन) गढ़े गए, यह भी एक बहूत बडा

---

१. असङ्क्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद् द्विसङ्क्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्।–पद्य ६।

२. चन्द्ररविग्रहणेन्दुच्छायादिषु सर्वदा यतो ब्राह्मे।
दृग्गणितैक्यं भवति स्फुटसिद्धान्तस् ततो ब्राह्मः॥–पद्य ६१।

३. यस्मिन् शशिमासेऽर्कसङ्क्रान्तिर् नाऽस्ति सोऽधिमास इति प्रसिद्धम्। तथा यत्र मासे सङ्क्रान्तिद्वयं भवति स क्षयमासो ज्ञेयः।–सिद्धान्तशिरोमणिवासना।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्वलन्त प्रश्न है। ऐसी स्थिति में हेमाद्रि माधव इत्यादि धर्मशास्त्र-निबन्धक ने भास्कर के "असङ्क्रान्ति-मासोऽधिमासः स्फुटं स्यात्" इत्यादि पद्य निर्मूलत्व को कैसे नहीं समझा और उसी को अधिकमासनिर्णय में प्रमाण रूप में कैसे लिया। हेमाद्रि ने चतुर्वर्ग-चिन्तामणि के परिशेषखण्ड कालनिर्णय-प्रकरण में (पृ.२८), माधव ने कालमाधव के मलमासनि प्रकरण में (पृ.६१), अनन्तदेव ने स्मृतिकौस्तुभ की संवत्सरदीधिति अधिकमासनिर्णय में (पृ.५२०), रघुनन्दन ने मलमासतत्त्व में (पृ.७८ १६६८ संवत् में काशी में निर्णयसिन्धु को पूर्ण करनेवाले कमलाकर भट्ट मलमासनिरूपण में (निर्णयसिन्धु, निर्णयसागरमुद्रणालय, पञ्चम संस्क पृ.७), नीलकण्ठ भट्ट ने भगवन्तभास्कर के समयमयूख में (पृ.१६६) मित्र मिश्र ने वीरमित्रोदय के समयप्रकाश में (पृ.१४२) भी भास्कर के उ पद्य को[1] प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया ही है। अत एव उक्त प्रश्न भी ज्वलन्त प्रश्न ही है।

उतना ही नहीं है, हेमाद्रि, माधव इत्यादि ने संसर्प और अंहस्पति इन पदों के दो अर्थ बताए हैं, संसर्प का अर्थ क्षयमासपूर्वभावी अधिमास अंहस्पति का अर्थ क्षयमास बताया है, वह भी संसर्प के और अंहस्पति के प्र से युक्त श्रुतिवाक्य का अनुकूल नहीं है। यद्यपि आपस्तम्बश्रौतसूत्र में "द्वा **त्रयोदश चतुर्दश वा गृह्यन्ते"** ऐसा सूत्र पाया जाता है (१२।२७।१), तथाऽपि अधिकमास के ही वेदाङ्गज्योतिष के अनुसार उदगयनान्त में और दक्षिणायन में होनेवाले कालभेद को लेकर दो मानकर **"चतुर्दश वा गृह्यन्ते"** यह व चरितार्थ होता है, क्षयमास वेद-वेदाङ्गों में उल्लिखित न होने से क्षयमास भावी और क्षयमासोत्तरभावी अधिमासों को लेकर नहीं। वेद में तेरहवें मास मन्त्र अधीत है, चौदहवाँ मास और उसका पृथक् मन्त्र उल्लिखित ही नहीं है, बात आपस्तम्ब के उस सूत्र की व्याख्या में रुद्रदत्त से स्पष्ट की गई है। हेमाद्रि-माधवादि की व्याख्या अग्राह्य और अस्वीकार्य ही है।

इस स्थिति में वैदिक परम्परा के धर्मशास्त्रनिबन्धकारों ने क्षयमास और उसके लिए कल्पित वचनों को कैसे मान्यता दिया यह भी एक ज्वल प्रश्न है।

---

१. असङ्क्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्यात्।

—सिद्धान्तशिरोमणि, ग्रहगणिताध्याय, मध्यमाधिकार, पद्य

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का बारहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

खण्डतिथियाँ क्यों?

मूल वैदिक वाङ्मय में तिथि शब्द का प्रयोग दुर्लभ है। जहाँ तिथि शब्द का प्रयोग उचित दिखाई देता है वहाँ पर अहःशब्द का अथवा अहोरात्र शब्द का प्रयोग मिलता है। जैसे "अहोरात्रेभ्यः स्वाहाऽर्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहा" (मा.वा.शु. यजुर्वेद २२।२८) इत्यादि स्थलों में अहोरात्र शब्द अर्धमास से सम्बद्ध दिखाई देने से तिथिवाचक अवगत होता है। ऐसे प्रयोग अनेक हैं[1]। वेद के अनेक प्रयोगों में अहोरात्र शब्द तिथिवाचक ही अवगत होता है। श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, स्मृति, महाभारत इत्यादि ग्रन्थों में तिथि के अर्थ में अहःशब्द प्रयुक्त हुआ है[2]।

---

१. • पूर्वपक्षाश् चितयोऽपरपक्षाः पुरीषमहोरात्राणीष्टकाः।
—तैत्तिरीयसं ५।७।६।६, तै.ब्रा. ३।१०।४।१-२, तै. आरण्यक ४।१९।१।

• चन्द्रमा वा अकामयताऽहोरात्रानर्धमासान् मासानृतून् संवत्सरमाप्त्वा चन्द्रमसः सायुज्यं सलोकतामाप्नुयाम्।—तैत्तिरीयब्राह्मण ३।१।६।१।

• एत उ वाव लोका यदहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरः।
—मा.वा.शु.य.वे. शतपथब्राह्मण १०।२।६।७।

२. • यदहर् मासः पूर्यति तदहरिष्टिं समाप्य।—आश्वलायनश्रौतसूत्र १२।४।१०।

• उदगयन आपूर्यमाणपक्षस्य पुण्याहे प्रयुञ्जीत।—बौधायनश्रौतसूत्र ५।१।

• यदहः पूर्णश् चन्द्रमाः स्यात् तां पौर्णासीमुपवसेत्, श्वः पूरितेति वा।
—भारद्वाजश्रौतसूत्र १।१।६।

• यदहश् चन्द्रमाः पूर्ण उत्सर्पेत् तां पौर्णमासीमुपवसेत्, श्वः पूरितेति वा।
—आपस्तम्बश्रौतसूत्र २४।२।२१,२२।

• अपरपक्षस्य वाऽयुक्ष्वहस्सु।—हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र २०।४।१।

• यस्मिन् दिने ज्ञातिर् मृतस् तस्मिन् मासिमासि प्रेतायैकं पिण्डं निरुप्यैकं भोजयेदा वत्सरात्।—वैखानसगृह्यसूत्र ४।७।

• यदहश् चन्द्रमा न दृश्येत याममावास्याम्।—गोभिलगृह्यसूत्र १।५।४।

• अपरपक्षे श्राद्धं कुर्वीत, ऊर्ध्वं वा चतुर्थ्या यदहः सम्पद्येत।
—कात्यायनश्राद्धकल्पसूत्र, क. १।

• शुद्धपक्षस्य पुण्याहे पर्वणि वा।—काठकगृह्यसूत्र ३१।२, ४३।४।

• पुण्याहे पर्वणि वा।—काठकगृह्यसूत्र ३७।२।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उक्त, स्थलों में तिथिशब्द के स्थान में अहोरात्रशब्द, अहश्शब्द, दिवसशब्द दिनशब्द इत्यादि का प्रयोग पाए जाने से वैदिक परम्परा में सामान्यतया तिथि अहोरात्रात्मक माने जाने की बात स्पष्ट होती है।

- अथैतन् मनुः श्राद्धशब्दं कर्म प्रोवाच प्रजानिश्श्रेयसाय च, तत्र पितरो देवता ब्राह्मणास् त्वाहवनीयार्थे, मासिमासि कार्यम्, अपरपक्षस्याऽपराह्णः श्रेयान्, तथाऽपरपक्षस्य जघन्यान्यहानि, सर्वेष्वेवाऽपरपक्षस्याऽहस्सु क्रियमाणे पितॄन् प्रीणाति, कर्तुस् तु कालाऽभिनियमात् फलविशेषः, प्रथमेऽहनि क्रियमाणे स्त्रीप्रायमपत्ये जायते, द्वितीये स्तेनाः, तृतीये ब्रह्मवर्चसिनः, चतुर्थे क्षुद्रपशुमान् ... ...।

—आपस्तम्बधर्मसूत्र २।७।१।१–१० [२।१६।१–१०]
- एकान्तरेऽह्नि मासे च।—वेदाङ्गज्योतिष श्लो. ११।
- युक्षु कुर्वन् दिनर्क्षेषु।—मनुस्मृति ३।२७७।
- माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाऽह्णे प्रथमेऽहनि।—मनुस्मृति ४।९६।
- निन्दितेऽहनि सायाह्ने।—मनुस्मृति ११।१८२।
- समा-मास-तदर्धा-ऽहर्-नाम-जात्यादिचिह्नितम्।—याज्ञवल्क्यस्मृति २।६, द्र.– २।८५।
- देश-स्थान-समा-मास-पक्षा-ऽहर्-नाम-जाति च।

—बृहस्पतिवचन, पाराशरमाधवीय, व्यवहारकाण्ड, पृ. ४७।
- वर्षर्तुमासपक्षाहोवेलादेशप्रदेशवत्। स्थानावसथसाध्याख्याजात्याकारवयोयुतम्।

—सङ्ग्रहकारवचन, याज्ञवल्क्यस्मृतिव्याख्या (ऋजु-)मिताक्षरा २।६।
- कृष्णस्य पक्षस्य चतुर्दशाहे।—महाभारत ११।२१।१३।
- नक्षत्रेऽहनि च ध्रुवे।—महाभारत १४।६३।१८।
- अद्यैव नक्षत्रमहश् च पुण्यम्।—महाभारत १४।६४।१४।
- राजवर्षं मासः पक्षो दिवसश् च व्युष्टम्, वर्षा-हेमन्त-ग्रीष्माणां तृतीयसप्तमा दिवसोनाः पक्षाः शेषाः पूर्णाः।—कौटलीय अर्थशास्त्र २।६।
- दिवस-पञ्चरात्र-पक्ष-मास-चातुर्मास्य-संवत्सरैश् च प्रतिसमानयेत्।

—कौटलीय अर्थशास्त्र २।७।
- दिवसः रात्रिः पक्षः मासः ऋतुः अयनं संवत्सरो युगमिति कालाः।

—कौटलीय अर्थशास्त्र २।२०।
- संवत्सरमृतुं मासं पक्षं दिवसं करणमधिकरणम् ऋणं वेदकाऽऽवेदकयोः कृतसमर्था-वस्थयोर् देश-ग्राम-जाति-गोत्र-नाम-कर्माणि चाऽभिलिख्य।—कौटलीय अर्थशास्त्र ३।१।
- कालः शीतोष्णवर्षात्मा तस्य रात्रिरहः पक्षो मासः ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति विशेषाः।

—कौटलीय अर्थशास्त्र ९।१।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपर्युल्लिखित महाभारत के **"नक्षत्रेऽहनि च ध्रुवे"** (१५।६३।१८) इस वचन की व्याख्या में भारतभावदीप नाम की व्याख्या प्रस्तुत करनेवाले नीलकण्ठ ने **"ध्रुवे नक्षत्रे रोहिण्यामुत्तरात्रये च अहनि वारे ध्रुवे रविवारे उत्तरार्केऽमृतसिद्धयोगे इत्यर्थः"** ऐसा कहकर अहश्शब्द से आदित्यवार सोमवार इत्यादि वार को लिया है। किन्तु महाभारत में कहीं भी आदित्यवार-सोमवार इत्यादि वारों का उल्लेख न मिलने से उक्त वचन में भी अहश्शब्द श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, मनुस्मृति, कौटलीय अर्थशास्त्र इत्यादि प्राचीन वैदिक वाङ्मय में जैसे तिथिवाचक रूप में प्रयुक्त हुआ है वैसे ही तिथिवाचक रूप में ही प्रयुक्त अवगत होता है।

अहश्शब्द का तिथिवाचकत्व याज्ञवल्क्यस्मृति की व्यख्या में मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने भी **"अहस् तिथिः प्रतिपदादिः"** ऐसा कहकर स्पष्ट किया है (२।८५)।

आथर्वणज्योतिष में करणों के निरूपण में दिनभर एक करण रहने की और रातभर एक करण रहने की बात पाई जाती हैं[1]।

इससे दो करणों से बननेवाली एक तिथि दिनभर और रातभर ही रहने की बात भी स्पष्ट होती है। इससे एक तिथि कहना और एक अहोरात्र कहना एक ही बात ज्ञात होती है।

वैयाकरण-सिद्धान्त-कौमुदी के अव्ययप्रकरण की व्याख्या में तत्त्वबोधिनीकार ज्ञानेन्द्र सरस्वती से उल्लिखित शुक्लपक्ष के दिनों को बतानेवाला सुदि (शुदि) यह अव्यय और कृष्णपक्ष के (बलक्षपक्ष के) दिनों को बतानेवाला वदि (बदि) यह अव्यय भी तिथियों की दिनरूपता को (अहोरात्रात्मकता को) बताता है।

यह सुदि और वदि लोकव्यवहार में कायस्थों से लिखे जानेवाले राजकीयादि पत्रों में निकट भूतकाल तक व्यवहारपरम्पराऽऽगत रूप में प्रयुक्त होता आ रहा ही था। इससे लोकव्यवहार में भी वैदिक शास्त्रों के अनुकूल रूप में तिथियों को अहोरात्रात्मक ही मानने की परम्परा रही हुई अवगत होती है।

वेदाङ्ज्योतिष में लगधमुनि से भी शुक्लपक्षतिथियों को और कृष्णपक्षतिथियों को अहोरात्रात्मक रूप में ही लिया गया ज्ञात होता है (श्लोक ९, ११)।

---

१. **शुक्लप्रतिपदि रात्रौ दिवि पञ्चम्यां तथाऽष्टमीरात्रौ।**
द्वादश्यामपि दिवा प्रथमं प्रतिपद्यते करणम्॥—आथर्वणज्योतिष ३।१।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस लिए लगधमुनि से खण्डतिथि की कोई चर्चा नहीं की गई है। पर्वकृत्य निर्णय के लिए ही पर्वसमप्ति का काल विशेष रूप में वेदाङ्गज्योतिष विवेचित हुआ है। अत एव अन्य प्रतिपदा द्वितीया इत्यादि तिथियों में ति समाप्तिकाल में ध्यान न देकर तिथि को सावनदिनात्मक अथवा अहोरात्रा ही मान कर वैदिक लोग कर्म करते हैं। इसी लिए किसी परिशिष्टकार ने अहो भर एक तिथि मानने की व्यवस्था दी है–

> या तिथिस् तदहोरात्रं यस्मादभ्युदितो रविः।
> तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्॥

इस व्यवस्था से यह बात ज्ञात होती है कि एक ही तिथि एक अहोरात्र रहती है, सूर्य का उदय ही इस में हेतु है, तिथि का ह्रास अथवा वृद्धि कर्म करने कारण नहीं।

उक्त सब विवरणों से मूल वैदिक परम्परा में तिथिवृद्धि इत्यादि की विचार नहीं होती है, यह बात अवगत होती है। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी छोडकर अन्यत्र तिथिक्षय नहीं माना जाता है। वेद में अर्वाचीन ग्रन्थों की त तिथिवृद्धि का और तिथिक्षय का विचार न होने की बात को नारदीयपुराण में स्पष्ट रूप में बताया गया ही है।

उक्त प्रकार की शास्त्रीय स्थिति में ब्रह्मगुप्तादि से प्रतिपादित स्फु (स्पष्ट) तिथि का सिद्धान्त क्यों और कैसे वैदिक परम्परा के ज्योतिषियों और धर्मशास्त्रियों से अपनाया गया यह भी एक बहुत ही बडा ज्वलन्त प्र है।

---

१. न वेदे ग्रहसञ्चारो न शुद्धिः कालबोधिनी।
तिथिवृद्धिः क्षयो वाऽपि पर्वग्रहविनिर्णयः॥–नारदीयपुराण २।२४।१९।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का तेरहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ की उपेक्षा क्यों?

वेदाङ्गज्योतिष में वर्णित पञ्चवर्षात्मक युग का वेदों में उल्लेख है। वेदाङ्गज्योतिष में प्रतिपादित सूर्य के उदगयन-दक्षिणायन की चर्चा वेदों में प्राप्त है। ऋग्वेद में ही[1] उत्तरायण और दक्षिणायन का सङ्केत है। तैत्तिरीयसंहिता में भी[2] दक्षिणायन और उत्तरायण का उल्लेख है। मैत्रायणीयब्राह्मणोपनिषद् में लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष के अयनप्रतिपादन का मार्गनिर्देशक[3] वचन प्राप्त होता है। बौधायनश्रौतसूत्र में भी वेदाङ्गज्योतिष के अयननिरूपण का आधारभूत[4] वचन प्राप्त होता है।

वेदाङ्गज्योतिष में बताए गए पञ्चसंवत्सरात्मक युग के संवत्सर-परिवत्सर-इदावत्सर-इद्वत्सर[5] इन वर्षों का उल्लेख वेद, स्मृति , पुराण, महाभारत इत्यादि ग्रन्थों में पाया जाता है। वेदादि शास्त्रों के वचन अधोलिखित हैं—

> संवत्सराय परिवत्सरायेदावत्सरायाऽनुवत्सरायोद्वत्सराय कृणुता
> बृहन् नमः। तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानां निवात एषामभये स्याम।
> —काठक-कृष्णयजुर्वेदसंहिता १३।१५।

> इयं स्वस्तिस् संवत्सरीया परिवत्सरीयेदावत्सरीयाऽनुवत्सरीयोद
> वत्सरीया। सा नः पिपर्त्वहृणीयमानैनाह्नेदमहरशीय स्वाहा॥—वहीं १३।१५।

---

१. द्वे स्रुती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।—ऋग्वेदसंहिता १०।८८।१५।

२. तस्मादादित्यः षण्मासो दक्षिणेनैति षडुत्तरेण।—तैत्तिरीयसंहिता ६।५।३।४।

३. सूर्यो योनिः कालस्य, तस्यैतद् रूपं यन् निमेषादिकालात् सम्भृतं द्वादशात्मकं वत्सरम्, एतस्याऽऽग्नेयमर्धमर्धं वारुणम्, मघाद्यं श्रविष्ठार्धमाग्नेयं क्रमेणोत्क्रमेण सार्पाद्यं श्रविष्ठार्धान्तं सौम्यम्।—मैत्रायणीयोपनिषद् (मैत्र्युपनिषद्) ६।१४।

४. षाण्मास्य एष पशुबन्ध उक्तो भवति, अथाऽप्युदाहरन्ति षट्सुषट्सु मासेष्वाहिताग्निना पशुना यष्टव्यं भवति, उभे काष्ठे अभियजेत माघमासे धनिष्ठाभिरुत्तरेणैति भानुमान्। अर्धाश्लेषस्य श्रावणस्य दक्षिणेनोपनिवर्तते॥ इत्येते काष्ठे भवतः, तदन्ततोऽनीजानस्य संवत्सरो नाऽतीयात्।—बौधायनश्रौतसूत्र २६।२९।

५. पञ्चवर्षात्मक युग के अन्तर्गत के वर्षों के नामों में पाठभेद भी पाया जाता है। इदावत्सर को कहीं इडावत्सर कहा गया है। इद्वत्सर को कहीं अनुवत्सर कहीं उद्वत्सर कहीं इदुवत्सर भी कहा गया है। वत्सर को कहीं उद्वत्सर कहीं उदावत्सर कहीं इद्वत्सर भी कहा गया है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संवत्सरे सीद परिवत्सरे सीदेदावत्सरे सीदाऽनुवत्सरे सीदोद्वत्सरे सीद।

—वहीं ३९।६।

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽस्यनुवत्सरोऽस्युद्वत्सरोऽसि।

—वहीं ४०।६।

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽस्युद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि।

—मैत्रायणीय-कृष्णयजुर्वेदसंहिता ४।९।१८।

यत् ते रुद्र पुरो धनुस् तद् वातो अनुवातु ते तस्मै ते रुद्र संवत्सरेण नमस्करोमि, यत् ते रुद्र दक्षिणा धनुस् तद् वातो अनु वातु ते तस्मै ते रुद्र परिवत्सरेण नमस्करोमि, यत् ते रुद्र पश्चाद् धनुस् तद् वातो अनु वातु ते तस्मै ते रुद्रेदावत्सरेण नमस्करोमि, यत् ते रुद्रोत्तराद् धनुस् तद् वातो अनु वातु ते तस्मै ते रुद्रेदुवत्सरेण नमस्करोमि, यत् ते रुद्रोपरि धनुस् तद् वातो अनु वातु ते तस्मै ते रुद्र वत्सरेण नमस्करोमि। —आत्रेय-तैत्तिरीयकृष्णयजुर्वेदसंहिता ५।५।७।२-४।

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि।

—माध्यन्दिनीयवाजसनेयिशुक्लयजुर्वेदमन्त्रार्षसंहिता २७।४५, शतपथब्राह्मण ८।१।४।८।

संवत्सराय पर्य्यायिणीम् परिवत्सरायाऽविजातामिदावत्सराया-ऽतीत्त्वरीमिद्वत्सरायाऽतिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जरां संवत्सराय पलिक्नीम्। —माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदमन्त्रार्षसंहिता ३०।१५।

संवत्सराय पर्यारिणीम् परिवत्सरायाऽविजाताम्, इदावत्सराया-ऽपिस्कद्वरीम्, इद्वत्सरायाऽतीत्वरीम्, वत्सराय विजर्जराम्, संवत्सराय पलिक्नीम्। —आत्रेय-तैत्तिरीय-कृष्णयजुर्वेदब्राह्मण ३।४।११।१।

संवत्सरोऽसि, परिवत्सरोऽसि, इदावत्सरोऽसीदुवत्सरोऽसि, इद्-वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि। —वहीं ३।१०।४।१, तैत्तिरीयारण्यक ४।१९।१।

अग्निर् वाव संवत्सरः, आदित्यः परिवत्सरः, चन्द्रमा इदावत्सरः, वायुरनुवत्सरः। —आत्रेय-तैत्तिरीयकृष्णयजुर्वेदब्राह्मण १।४।१०।१।

अग्निः संवत्सरः सूर्यः परिवत्सरश् चन्द्रमा इदावत्सरो वायुरनु-वत्सरोऽग्निं संवत्सरं वैश्वदेवेनाप्नोति सूर्यं परिवत्सरं वरुणप्रघासैश् चन्द्रमसमिदावत्सरं साकमेधैर् वायुमनुवत्सरं शुनासीर्येण।

—ताण्डि-कौथुम-राणायनीय-सामवेद-पञ्चविंशब्राह्मण १७।१३।१७।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संवत्सरे सीद परिवत्सरे सीदेदावत्सरे सीदेदुवत्सरे सीदोद्वत्सरे सीद वत्सरे सीद। —सत्याषाढकृत हिरण्यकेशिश्रौतसूत्र ११।८।४, आपस्तम्बश्रौतसूत्र १६।३१।१, वैखानसश्रौतसूत्र १८।२०।

तस्माद् वैश्वदेवेन यजमानः संवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्त इत्याशासीत, तस्माद् वरुणप्रघासैर् यजमानः परिवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्त इत्याशासीत, तस्मात् साकमेधैर् यजमान इदावत्सरीणां स्वस्तिमाशास्त इत्याशासीत, तस्माच् छुनासीरीयेण यजमानोऽनुवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्त इत्याशासीत। —बौधायनश्रौतसूत्र १४।३०।

जुहोति ... ... संवत्सरेभ्यः परिवत्सरेभ्य इदावत्सरेभ्य इदुवत्सरेभ्यो वत्सरेभ्यः ...स्वाहेति। —वैखानसगृह्यसूत्र २।१२।

संवत्सराय परिवत्सरायेदावत्सरायेद्वत्सराय वत्सराय कृणुते बृहन् नमः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानां ज्योग् जीता अहताः स्याम स्वाहा।
—पारस्करगृह्यसूत्र ३।२।२, जैमिनीयगृह्यसूत्र २।३।

केवल वेद और श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्ररूप महास्मृतियों में ही नहीं, अनुस्मृतिरूप स्मृतियों में भी पञ्चवर्षात्मक युग के अन्तर्गत के वर्षों का उल्लेख देखा जाता है—

संवत्सरे तिलान् दद्याद् यवाँस् तु परिवत्सरे।
इडापूर्वे च वस्त्राणि धान्यं चाऽप्यनुवत्सरे॥
इद्वत्सरे तु रजतं क्रमाद् देयानि शक्तितः।
—मार्कण्डेयस्मृति, मनसुखरायमुद्रापित स्मृतिसन्दर्भ, षष्ठ भाग पृ.१३४।

पञ्चसंवत्सरमयं जगदेतच् चराचरम्।
ते पञ्च वत्सराश् चाऽपि त इमे सम्प्रकीर्तिताः॥
भवोऽव्ययो विलम्बी च पश्चात् साधारणः पुनः।
दुन्दुभिश् चेति कथिता मूलभूतास् तु वत्सराः॥
—लौगाक्षिस्मृति, मनसुखरायमुद्रापित स्मृतिसन्दर्भ, षष्ठ भाग पृ.३७७।

इसी प्रकार पुराणों में, महाभारत में और अन्य प्राचीन तथा अर्वाचीन बहूत ग्रन्थों में पञ्चवर्षात्मक-वैदिकयुगान्तर्गत पाँच वर्षों का अथवा पञ्चवर्षात्मक युग का उल्लेख पाया जाता है—

संवत्सरः प्रवत्सर इलावत्सर एव च।
अनुवत्सरो वत्सरोऽयमिति कालविदो विदुः॥
—ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्मखण्ड ९६।५७–५८।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संवत्सरादयः पञ्च चतुर्मानविकल्पिताः ।
निश्चयः सर्वकालस्य युगमित्यभिधीयते ।
संवत्सरस् तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः ॥
इडावत्सरस् तृतीयस् तु चतुर्थश् चाऽनुवत्सरः ।
पञ्चमो वत्सरस् तेषां कालस् तु युगसंहितः ॥

—ब्रह्माण्डपुराण पूर्वभाग २१।१३०–१३२।

संवत्सरस् तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः ।
इद्वत्सरस् तृतीयस् तु चतुर्थस् त्वनुवत्सरः ॥
पञ्चमो वत्सरस् तेषामित्येवं पञ्च ते स्मृताः ।
तेषु संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस् तु परिवत्सरः ॥
सोम इद्वत्सरस् तेषां वायुश् चैवाऽनुवत्सरः ।
रुद्रस् तु वत्सरो ज्ञेयः पञ्चैता युगदेवताः ॥

—भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व १२५।३३–३५।

संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सर एव च ।
अनुवत्सरो वत्सरश् च विदुरैवं प्रभाष्यते ॥
यः सृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन् स्वशक्त्या
पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः ।
कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर् वितन्वँस्
तस्मै बलिं हरत वत्सरपञ्चकाय ॥

—भागवत तृतीय स्कन्ध ११।१४,१५।

अथ च यावन् नभोमण्डलं स ह द्यावापृथिव्योर् मण्डलाभ्यां कार्त्स्न्येन सह भुञ्जीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सर-मनुवत्सरं वत्सरमिति भानोर् मान्द्यशैघ्र्यसमगतिभिः समामनन्ति ।

—वहीं पञ्चम स्कन्ध २२।७।

अथ यावन् नभोमण्डलं स ह प्रतिगच्छति ।
कार्त्स्न्येन स ह भुञ्जीत कालं तं वत्सरं विदुः ॥
संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमेव च ।
अनुवत्सरमिद्वत्सरमिति पञ्चकमीरितम् ।
भानोर् मान्द्य-शैघ्र्य-सम-गतिभिः कालवित्तमैः ॥

—देवीभागवत अष्टम स्कन्ध १६।१४–१६।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तेषु संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस् तु परिवत्सरः।
सोमस् त्विड्वत्सरश् चैव वायुश् चैवाऽनुवत्सरः॥
रुद्रस् तु वत्सरस् तेषां पञ्चाब्दा ये युगात्मकाः।
कालेनाऽधिष्ठितस् तेषु चन्द्रमाः स्रवते सुधाम्॥

—मत्स्यपुराण १४१।१७,१८।

श्रवणान्तं धनिष्ठादि युगं स्यात् पञ्चवार्षिकम्।
भानोर् गतिविशेषेण चक्रवत् परिवर्तते॥ —लिङ्गपुराण १।६१।५५–५६।

पञ्चानां प्रविभक्तानां कालावस्थां निबोधत।
दिना-ऽर्धमास-मासैस् तु ऋतुभिस् त्वयनैस् तथा॥
संवत्सरस् तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः।
इद्वत्सरस् तृतीयस् तु चतुर्थश् चाऽनुवत्सरः॥
वत्सरः पञ्चमस् तेषां कालः स युगसंज्ञितः।
तेषां तु तत्त्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत॥

—वायुपुराण पूर्वार्ध ३१।२६–२८।

संवत्सरादयः पञ्च चतुर्मानविकल्पिताः।
निश्चयः सर्वकालस्य युग इत्यभिधीयते॥
संवत्सरस् तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः।
इद्वत्सरस् तृतीयस् तु चतुर्थश् चाऽनुवत्सरः।
पञ्चमो वत्सरस् तेषां कालस् तु परिसंज्ञितः॥—वहीं ५०।१८२–१८३।

श्रवणान्तं धनिष्ठादि युगं स्यात् पञ्चवार्षिकम्।
भानोर् गतिविशेषेण चक्रवत् परिवर्तते॥—वहीं ५३।११६।

संवत्सरादयः पञ्च चतुर्मास(न)विकल्पिताः।
निश्चयः सर्वकालस्य युगमित्यभिधीयते॥
संवत्सरस् तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः।
इद्वत्सरस् तृतीयस् तु चतुर्थश् चाऽनुवत्सरः।
वत्सरः पञ्चमश् चाऽत्र कालोऽयं युगसंज्ञितः॥

—विष्णुपुराण २।८।७१,७२।

क्रमेण परिवर्तन्ते पञ्च यादव वत्सराः।
तेषामधिपतीन् वक्ष्ये नामानि च फलानि च॥
पञ्चभक्ते तु यच् छेषं तिष्ठेदब्दगणे गते।
संवत्सराद्यः स ज्ञेयो नित्यं संवत्सरो बुधैः॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आद्यः संवत्सरो नाम द्वितीयः परिवत्सरः।
इडाख्यश् च तृतीयोऽत्र चतुर्थश् चाऽनुवत्सरः।
इद्वत्सराख्यः कथितस् तथा चैवाऽत्र पञ्चमः॥
संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरोऽर्क इडाभिधानो भगवाञ् छशाङ्कः।
ब्रह्मा स्वयम्भूरनुवत्सरोऽपि इद्वत्सरः शैलसुतापतिश् च॥

—विष्णुधर्मोत्तरपुराण १।८२।५२-५५।

वाय्वग्निदिक्समुद्भूतं परिधिं तु न लङ्घयेत्।
राम संवत्सराद्येषु सर्वेष्वेव महीपतिः॥
संवत्सरमदिक् प्राची परिपूर्वस्य दक्षिणा।
तत्पूर्वस्याऽपरा ज्ञेया चाऽनुपूर्वस्य दक्षिणा।
अद्वारस् तु विनिर्दिष्टस् तथा वत्सरसंज्ञितः॥—वहीं २।१७५।१०-१२।

संवत्सराख्ये कर्तव्या नित्यमाज्ञायुता भवेत्।
परिपूर्वे तु भूतघ्नी लोकख्याता तथैव च॥
इडापूर्वे तथा सौम्या वरदा लोकसुन्दरी।
अनुपूर्वे तु वरदा धनधान्यवती भवेत्॥
तत्पूर्वे नाशमाप्नोति कर्तुर् नाशावहा भवेत्।
तत्राऽपि शम्भोर् मृत्योश् च यमस्य च हिता भवेत्॥

—वहीं ३।९६।११-१३।

नृहयं नृवराहं च नरसिंहं च वामनम्।
त्रिविक्रमं तु धर्मज्ञ पञ्चस्वब्देषु पूजयेत्॥ —वहीं ३।१२०।२।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि पञ्चमूर्तिव्रतं तव।
संवत्सरः स्मृतो वह्निस् तथाऽर्कः परिवत्सरः॥
इडापूर्वस् तथा सोमः अनुपूर्वः प्रजापतिः।
तत्पूर्वश् च तथा प्रोक्तो देवदेवो महेश्वरः॥
तेषां मण्डलविन्यासैः प्राग्वदेव विधीयते।
प्राग्वच् च पूजनं कार्यं होमः कार्यस् तथाविधः॥
तिल-व्रीहि-यवैश् चैव घृतेन सितसर्षपैः।
तल्लिङ्गैरथवा मन्त्रैर् नामभिः प्रत्यहं क्रमात्॥
नक्ताशनस् तथा तिष्ठेत् प्राग्वद् दिवसपञ्चकम्।
संवत्सराख्ये वर्षे तु व्रतमेतत् समारभेत्॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्रतावसाने दातव्यं सुवर्णं पञ्च यादव।
चतुर्वेदविदां देयं शाखाभेदेन यादव॥
एकैकं पञ्चमं देयं तथा कालविदे भवेत्।
अश्वमेधफलं ह्येतद् व्रतं तव मयेरितम्॥
यथेष्टं लोकमाप्नोति कामचारी विहङ्गमः।
कृतेनाऽनेन धर्मज्ञ पूज्यमानः सुरासुरैः॥
मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगो वर्णेन रूपेण बलेन युक्तः।
नृपः प्रतापाऽऽनतशत्रुसङ्घो देवोत्तमो वा बहुयज्ञयाजी॥—वहीं ३।१५३।१-९।

संवत्सरे तथा दानं तिलस्य च महाफलम्।
परिपूर्वे तथा दानं यवानां द्विजसत्तमाः॥
इडापूर्वेऽन्नवस्त्राणां धान्यानां चाऽनुपूर्वकि।
उदासंवत्सरे दानं रजतस्य महाफलम्॥—वहीं ३।३१७।२,३।

चतुर्भेदं मासमाहुः पञ्चभेदं च वत्सरम्।
संवत्सरस् तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः॥
इद्वत्सरस् तृतीयोऽसौ चतुर्थश् चाऽनुवत्सरः।
पञ्चमश् च युगो नाम गणनानिश्चयो हि सः॥
—स्कन्दपुराण माहेश्वरखण्ड २।३९।५१,५२।

संवत्सरोऽयं परिवत्सरश् च उद्वत्सरो वत्सर एष देवः।
दृष्टोऽप्यदृष्टः प्रहुतः प्रकाशी स्थूलश् च सूक्ष्मः परमाणुरेषः॥
—वहीं, आवन्त्यखण्ड ३।१६।१३।

अनुसंवत्सरं जाता अपि ते कुरुसत्तमाः।
पाण्डुपुत्रा व्यराजन्त पञ्चसंवत्सरा इव॥
—महाभारत आदिपर्व १२४।२२।

संवत्सराः पञ्च युगमहोरात्रश् चतुर्विधः।
कालचक्रं च तद् दिव्यं नित्यमक्षयमव्ययम्॥ —वहीं, सभापर्व ११।३८।

द्वौ मासावृतुः। श्रावणः प्रोष्ठपदश् च वर्षाः। आश्वयुजः कार्त्तिकश् च शरत्। मार्गशीर्षः पौषश् च हेमन्तः। माघः फाल्गुनश् च शिशिरः। चैत्रो वैशाखश् च वसन्तः। ज्येष्ठामूलीय आषाढश् च ग्रीष्मः। शिशिरादि उत्तरायणम्। वर्षादि दक्षिणायनम्। द्व्ययनःसंवत्सरः। पञ्चसंवत्सरो युगमिति।
—कौटलीय अर्थशास्त्र २।२०।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ खल्वयने द्वे युगपत् संवत्सरो भवति। ते तु पञ्च युगमिति संज्ञां लभन्ते। स एष निमेषादियुगपर्यन्तः कालश् चक्रवत् परिवर्तमानः कालचक्रमुच्यत इत्येके। —सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान ६।१।

अथ संवत्सरदानानि विष्णुधर्मोत्तरे—संवत्सरे तु दातॄणां तिलदानं महाफलम्। परिपूर्वे तथा दानं यवानां द्विजसत्तमाः॥ परिपूर्व इति परिवत्सर इत्यर्थः। इदापूर्वे च वस्त्राणां धान्यानां चाऽनुपूर्वके। इत्पूर्वे रजतस्याऽपि दानं प्रोक्तं महाफलम्। इदापूर्व इत्यादि इदावत्सरः अनुवत्सरः इद्वत्सर इति। संवत्सरादयश् च ज्योतिः-शास्त्रे प्रसिद्धाः।

—हेमाद्रिकृत चतुर्वर्गचिन्तामणि, दानखण्ड, द्वादश अध्याय, पृ.८९०।

ततः श्वः संवत्सरपरिवत्सरेदावत्सरानुवत्सरोदावत्सरेषु वर्तमानं युगमनुकीर्त्य वर्तमान-संवत्सरायनर्तुमासपक्षतिथिवारनक्षत्रयोग-करण-कुतपादि-कालनामानि सप्तम्यन्तानि संकीर्त्य अत्र पार्वण-श्राद्धनामधेयकर्मणि.... इत्येताः प्रधानदेवताः .... अङ्गदेवता यथोक्तलक्षणमन्नं हविः ब्राह्मणा आहवनीयार्थे अमुक-गोत्राणां.... पृथग्वैश्वदेविकसहितं सपिण्डनिर्वापं पार्वणश्राद्धद्वयं पितृतृप्तिकामोऽहं करिष्य इति सङ्कीर्तयेत्।

—हेमाद्रिकृत चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड, श्राद्धकल्प, एकादश अध्याय, पृ.११५३।

अथ चान्द्रस्याऽवान्तरभेदा उच्यन्ते। संवत्सरः परिवत्सरः इडा-वत्सरोऽनुवत्सरः इद्वत्सरश् चेत्येते पञ्च भेदाः। तदेतत् सामान्याकारेण संवत्सरादिपञ्चविधत्वं सावित्रचयनगताऽग्नि-प्रशंसकमन्त्रे पठ्यते— संवत्सरोऽसि, परिवत्सरोऽसि, इदा-वत्सरोऽसि, इद्वत्सरोऽसि, इदुवत्सरोऽसि इति। इदुवत्सरो-ऽनुवत्सर इत्यर्थः। अत एव चातुर्मास्यब्राह्मणे (तै.ब्रा.१।४।१०।१-१०) तदधिष्ठातृदेवतारूपत्वेनैवं श्रूयते— अग्निर् वाव संवत्सरः आदित्यः परिवत्सरः चन्द्रमा इदावत्सरः वायुरनुवत्सरः महेश्वर इद्वत्सर इति। ब्रह्मवैवर्तेऽपि—

संवत्सरस् तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः।
इदावत्सरस् तृतीयश् चतुर्थश् चाऽनुवत्सरः।
इद्वत्सरः पञ्चमस् तु तत्सङ्घो युगसंज्ञकः॥ इति।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तेषां पञ्चानां विनियोगो विष्णुधर्मोत्तरे पठ्यते—

संवत्सरे तु दातॄणां तिलदानं महाफलम्।
परिपूर्वे तथा दानं यवानां द्विजसत्तम॥
इदापूर्वे च वस्त्राणां धान्यानां चाऽनुपूर्वके।
इत्पूर्वे रजतस्याऽपि दानं चोक्तं महाफलम्॥इति।

तथा तदधिष्ठातृदेवतापूजारूपो व्रतविशेषः पठ्यते—

संवत्सरः स्मृतो वह्निस् तथाऽर्कः परिवत्सरः।
इदापूर्वस् तथा सोमो ह्यनुपूर्वः प्रजापतिः॥
इत्पूर्वश् च तथा प्रोक्तो देवदेवो महेश्वरः।
तेषां मण्डलविन्यासं प्राग्वदेव विधीयते॥
प्राग्वत् स्यात् पूजनं कार्यं होमः कार्यो यथाविधि। इति।

प्रभवमारम्य क्षयान्तेषु षष्टिवर्षेषु द्वादश पञ्चकानि। तत्रैकस्मिन् वर्षपञ्चके एकैकक्रमेण संवत्सरादयो भवन्ति। तदेतत् सर्वं ज्योतिःशास्त्रादवगन्तव्यम्।

—कालमाधव, संवत्सरनिर्णयप्रकरण,चौखम्भासंस्कृतसंस्थान, पृ.३५–३६।

इतिहास के विभिन्न काल के अन्य ग्रन्थों में भी लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्ग-ज्योतिषग्रन्थ का उल्लेख पाया जाता है।

छठी शताब्दी के वराहमिहिर के बृहत्संहिता ग्रन्थ में वेदाङ्गज्योतिष की ओर सङ्केत हैं[1]।

सातवीं शताब्दी के ब्रह्मगुप्त ने भी वेदाङ्गज्योतिष के विषय का उल्लेख किया है[2]।

ग्यारहवीं शताब्दी के भट्टोत्पल ने भी वेदाङ्गज्योतिष के श्लोक का उल्लेख किया है[3]।

---

१. आश्लेषार्धाद् दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर् धनिष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासीद् येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु॥—बृहत्संहिता ३।१।

२. युगमाहुः पञ्चाब्दं रविशशिनोः संहिताङ्गकारा यत्।
अधिमासावमरात्रस्फुटतिथ्यज्ञानतस् तदसत्॥—ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त ११।२।

३. माघशुक्लप्रवृत्तस्य पौषकृष्णसमापिनः।
युगस्य पञ्चकस्येह कालज्ञानं निबोध्यते॥—बृहत्संहिताटीका ८।५२।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के उवट ने भी माध्यन्दिनीयवाजसनेयिशुक्ल यजुर्वेदसंहिता की व्याख्या में वेदाङ्गज्योतिष का वचन लिखा है[1]। बारहवीं शताब्दी के ही हरदत्त ने भी काशिका की व्याख्या पदमञ्जरी में वेदाङ्गज्योतिष के विषय का सङ्केत किया है[2]।

तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के जीमूतवाहन ने भी वेदाङ्गज्योतिष के श्लोकों का उल्लेख किया है[3]।

तेरहवीं शताब्दी के सूर्यदेव ने भी आर्यभटीय की व्याख्या भटप्रकाशिका के उपोद्घातभाग में लगध के वचन का उल्लेख किया है[4]।

वैक्रमाब्दों की चौदहवीं शताब्दी के (कलियुगाब्दों की चौवालीसवीं शताब्दी के) विष्णुचित्त ने भी विष्णुपुराण की व्याख्या में लगधाचार्य का नाम लेकर वेदाङ्गज्योतिष का श्लोक लिखा है[5]।

वैक्रमाब्दों की पन्द्रहवीं शताब्दी के कालमाधवकार माधव ने भी वेदाङ्गज्योतिष का नाम लेकर उस ग्रन्थ का श्लोक लिखा है[6]।

---

१. पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिमिति यदुक्तं ज्योतिःशास्त्रे तदिहोच्यते।
—माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदसंहिताव्याख्या २७।४५

२. उद्वत्सरेदावत्सरशब्दौ पञ्चवर्षे युगे द्वयोर् वर्षयोः सञ्ज्ञे। एवं संवत्सरपरिवत्सरशब्दावपि।—पदमञ्जरी ५।१।९१।

३. वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद वेदम्॥
यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्॥
—धर्मरत्न ग्रन्थ का कालविवेकखण्ड, श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषण से सम्पादित, असियिकसमिति (एसियाटिक सोसाइटि) से प्रकाशित, १९०५ क्रै., पृ.

४. तथा च लगधाचार्यः 'यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा। तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्॥ वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः ...।'
—आर्यभटीय, भटप्रकाशिका, उपोद्घातभाग, इण्डियन न्याशनल साइन्स् एकेडेमि, दिल्ली, १९७६ क्रै., पृ. ३-

५. लगडा(धा)चार्यश् च— 'माघशुक्लप्रवृत्तस्य तैषकृष्णसमापिनः। युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते॥'—विष्णुपुराणव्याख्या २।८।७१-७२।

६. तथा च वेदाङ्गे ज्योतिषग्रन्थे पठ्यते—
'पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः॥'
—कालमाधव, चौखम्भासंस्कृतसंस्थान, २०४५ वै., पृ. २

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

माधव के ही भाई सायण ने भी ऋग्वेदभाष्यभूमिका में वेदाङ्गों में से ज्योतिष का प्रयोजन दिखाते हुए वेदाङ्गज्योतिष का वचन उद्धृत किया है[1]।

सत्रहवीं शताब्दी के मित्र मिश्र ने वीरमित्रोदय के संस्कारप्रकाश में नामकरणप्रकरण में वेदाङ्गज्योतिष के श्लोकों का उल्लेख किया है[2]।

१७५६ संवत् में रचित संस्कारभास्कर में ऋषि भट्ट ने भी वेदाङ्गज्योतिषोक्त नक्षत्रनामकरण-प्रकार का उल्लेख किया है[3]।

अठारहवीं शताब्दी के गोपीनाथ भट्ट ने भी संस्काररत्नमाला में वेदाङ्गज्योतिष के श्लोकों को उद्धृत करके नामकरण की रीति बताई है[4]।

---

१. ज्योतिषस्य प्रयोजनं तस्मिन्नेव ग्रन्थेऽभिहितं यज्ञकालार्थसिद्धये (इति)।
—ऋग्वेदव्याख्याभूमिका, ऋग्वेदसंहिता, प्रथमभाग, वैदिकसंशोधनमण्डल, पुणे, पृ.२९।

२. अग्नय इति तत्तन्नक्षत्रदेवतानामुपलक्षणम्, तथा च लगधः—
अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिर् बृहस्पतिः। सर्पाश् च पितरश् चैव भगश् चैवाऽर्यमाऽपि च॥ सविता त्वष्टाऽथ वायुश् चेन्द्राऽग्नी मित्र एव च। इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वेदेवास् तथैव च॥ विष्णुर् वसवो वरुणोऽज एकपात् तथैव च। अहिर्बुध्न्यस् तथा पूषा अश्विनौ यम एव च॥ नक्षत्रदेवता ह्येता एताभिर् यज्ञकर्मणि। यजमानस्य शास्त्रज्ञैर् नाम नक्षत्रजं स्मृतम्॥ यज्ञकर्मणीत्यभिवादनस्याऽप्युपलक्षणम्, देवताश्रयं नक्षत्राश्रयं वा अभिवादनीयं नामेति खादिरसूत्रात्। देवताऽत्र नक्षत्रदेवता।—वीरमित्रोदय, संस्कारप्रकाश, पृ. २३९।

३. नाक्षत्रनामानि तु चूचेचोलाऽश्विनी प्रोक्तेत्यादिज्योतिर्ग्रन्थोक्ताऽवकहडाचक्रानुसारेणाऽश्विन्यादिचतुश्चरणेषु चूडामणिश् चेदीशश् चोलेशो लक्ष्मण इत्यादिकानि कुर्वन्ति। कातीयानां कृत्तिकोत्पन्नस्याऽग्निशर्मेति नक्षत्रदेवतासम्बद्धं नाक्षत्रं नाम कुर्यात्।
—संस्कारभास्कर, नामकरण-प्रकरण, पत्र १२३ और १२४।

४. जन्मनक्षत्रदेवतानाम ज्यौतिषे—
'नक्षत्रदेवता एता एताभिर् यज्ञकर्मणि। यजमानस्य शास्त्रज्ञैर् नाम नक्षत्रजं स्मृतम्॥' इति, एतच्छब्दपरामृष्टा नक्षत्रदेवतास् तु—

'अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिर् बृहस्पतिः।
सर्पाश् च पितरश् चैव भगश् चैवाऽर्यमाऽपि च॥
सविता त्वष्टाऽथ वायुश् चेन्द्राऽग्नी मित्र एव च।
इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वेदेवास् तथैव च॥
विष्णुर् वसवो वरुणोऽज एकपात् तथैव च।
अहिर्बुध्न्यस् तथा पूषा अश्विनौ यम एव च॥' इति,

एता देवताः कृत्तिकाप्रभृति ज्ञेयाः। अभिजिद्देवता तु ब्रह्म श्रुतितो ज्ञेयम्। अत्र कृत्तिकादावुत्पन्नस्याऽऽग्नेयः प्राजापत्य इत्येवमादीन्युदाहरणानि।—संस्काररत्नमाला, पृ.८५८।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१८४७ संवत् में धर्मसिन्धु बनानेवाले काशीनाथोपाध्याय ने भी नामकरण के प्रकरण में "चू चे चो ला अश्विनी" इत्यादि की व्यवस्था को श्रौतग्रन्थों का असम्मत बताकर वेदाङ्गज्योतिषोक्त नक्षत्रनामकरणरीति दिखाई है[1]।

१९७८ संवत् में प्रकाशित कर्मकाण्डप्रदीप में अण्णाशास्त्री वारे महाशय ने भी संस्कारप्रकरण में नामकरण के प्रतिपादन में वेदाङ्गज्योतिष के विधान का उल्लेख किया है[2]।

सोमाकर की प्राचीन व्याख्या भी लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष की महनीयता को और अनुसरणीयता को अच्छी तरह ही प्रकाशित करती है। इसका सम्पादन करके १९६४ संवत् में सुधाकर द्विवेदी ने प्रकाशित करवाया था। हमने भी इसका पुनः सम्पादन करके हमारे कौण्डिन्न्यायनव्याख्यान के साथ २०६: संवत् में वाराणसीस्थ चौखम्बा विद्याभवन से मुद्रित करवाया है।

उक्त विवरण से अनादि काल से वेदाङ्गज्योतिष में प्रतिपादित विषय वैदिक आर्यपरम्परा में मान्य रहे हुए अवगत होते हैं।

इस स्थिति में वेदाङ्गज्योतिष में प्रतिपादित विषय अर्वाचीन काल में कैसे पीछे पड गए। वैदिक परम्परा के ज्योतिषियों ने और धर्मशास्त्रियों ने उन विषयों को और "पञ्चसंवत्सरमयम्" इत्यादि वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ को कैसे भुला दिया, आधुनिक ज्योतिषियों ने और धर्मशास्त्रियों ने वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ की उपेक्षा क्यों की, यह भी भारतवर्षीय ज्योतिष का एक बहुत बडा ज्वलन्त प्रश्न है।

---

१. के चित् तु चूचेचोलाऽश्विनी प्रोक्तेत्यादिज्योतिर्ग्रन्थोक्ताऽवकहडाचक्रानुसारेणाऽश्विन्या देश् चतुर्षु चरणेषु चूडामणिश् चेदीशश् चोलेशो लक्ष्मण इत्यादिकानि नाक्षत्रनामानि कुर्वन्ति। तन् न श्रौतग्रन्थादिबहुसम्मतम्। सांख्यायनास् तु कृत्तिकोत्पन्नस्याऽग्निशर्मेति नक्षत्रदेवतासम्बद्धं नाक्षत्रं नाम कुर्वन्ति। एवं कातीया अपि।

—धर्मसिन्धु, तृतीयपरिच्छेदपूर्वार्ध नामकरणप्रकरण, निर्णयसागरमुद्रणालय, द्वितीयावृत्ति, १९०४ क्रै., पृ. १४।

२. **कर्मकाण्डप्रदीप**, पत्र ७४, उत्तरपृष्ठ; पत्र ७५, पूर्वपृष्ठ।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का चौदहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

वैदिक नक्षत्रक्रम को क्यों छोडा गया?

नक्षत्रों के नाम वैदिक संहिताओं में और ब्राह्मणग्रन्थ में भी क्रमबद्धरूप में आए हैं। तैत्तिरीयसंहिता में (४।४।१०।१-३), तैत्तिरीयब्राह्मण में (१।५।१।१-५, ३।१।१।१-१२, ३।१।२।१-११) काठकसंहिता में (३९।१३) मैत्रायणीयसंहिता में (२।१३।२०) और शौनकियों की अथर्ववेदसंहिता में (१९।७।२-५) नक्षत्रों के नाम आए हैं। लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ में भी नक्षत्र के क्रम से नक्षत्र-देवताओं का उल्लेख प्रप्त होता है (श्लोक ३२-३४)। याज्ञवल्क्यस्मृति में भी (१।२६५-२६८) श्राद्ध के प्रसङ्ग में नक्षत्रों का क्रम सूचित है। महाभारत के अनुशासन पर्व में भी श्राद्ध के प्रसङ्ग में नक्षत्रों का उल्लेख आया है (८९।२-१४)। अग्निपुराण में भी नक्षत्रक्रम से श्राद्ध का उल्लेख प्राप्त होता है (१६३।३७-४०)। कूर्मपुराण में (२।२०।९-१५) भी श्राद्ध के लिए सभी नक्षत्रों का उल्लेख है। ब्रह्मपुराण में भी श्राद्ध के लिए नक्षत्रों का उल्लेख है (१११।३३-४२)। ब्रह्माण्ड-पुराण में भी ऐसी बात पाई जाती है (मध्यमभाग १८।२–१५)। मार्कण्डेयपुराण में भी नक्षत्रविशेषों में श्राद्ध करने का फल बताया गया है (३०।८-१७)। वायुपुराण में भी यह बात पाई जाती है (२।२०।१-१५)। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी कामना-विशेष से नक्षत्रविशेष में श्राद्ध करने का विधान है (१।१४२।३३-३७)। उक्त सभी स्थलों में नक्षत्रक्रम कृत्तिकादि-भरण्यन्त है। ऐसी ही बात विष्णुधर्मसूत्र में (विष्णु स्मृति में) भी पाई जाती है (७८।८-३५)। हेमाद्रि ने भी नक्षत्रविशेष में श्राद्ध करने का प्रतिपादन किया है (श्राद्धकल्प, पञ्चम अध्याय, पृ. २६६–२७१)। उनसे दिखाए गए वचनों में भी नक्षत्रक्रम कृत्तिकादि ही है।

उक्त विवरण से भारतवर्षीय वैदिकपरम्परा में नक्षत्रगणना का क्रम वेदों से लेकर पुराणों तक कृत्तिकादि ही रहा हुआ अवगत होता है। ऐसी स्थिति में वर्तमान काल में ज्योतिषियों में प्रचलित अश्विन्यादि क्रम कैसे प्रचलन में आया और कैसे वैदिक ज्योतिषियों को और धर्मशास्त्रियों को मान्य हुआ यह भी भारतवर्षीय ज्योतिष का एक बडा ज्वलन्त प्रश्न ही है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का पन्द्रहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

वेदाङ्गज्योतिष में बताई गई नक्षत्रनामकरण की रीति की उपेक्षा क्यों?

वैदिक धर्मकृत्यों में सुब्रह्मण्याह्वानादि[1] में यजमान का, यजमान के पि का, पितामह का, प्रपितामह का और यजमान के पुत्रादि का भी नाम का उच्चार आवश्यक होता है। उसके लिए नक्षत्र-नाम रखने की आवश्यकता होती है। ना में देवतासम्बद्ध अथवा नक्षत्रसम्बद्ध नाम का प्रयोग करने की आवश्यकता क स्पष्ट उल्लेख द्राह्यायणगृह्यसूत्र में (२।४।१२) और खादिरगृह्यसूत्र में भी (२।४।१२ है। जैमिनीयगृह्यसूत्र में भी नक्षत्रानुगामी, देवतानुगामी और (पूर्वपुरुष)नामानुगामी अथवा गोत्रानुगामी नाम देने की आवश्यकता दिखाई गई है (१।९)। गोभिल गृह्यसूत्र में भी देवताश्रय वा नक्षत्राश्रय वा गोत्राश्रय नाम का विधान है (२।१०।२१) कौषीतकिगृह्यसूत्र में भी (१।१६।८) नक्षत्रनाम का उल्लेख है। वाराह-मैत्रायणीय गृह्यसूत्र में भी **"नक्षत्रदेवतेष्टनामानो वा"** (३।१) ऐसे कथन में नक्षत्र की देवता से सम्बद्ध नाम रखने की बात आई है। पाणिनीय व्याकरण में भी नक्षत्राश्रय नाम देने का भाषाशास्त्रीय नियम पाया जाता है (आष्टाध्यायी ४।३।३४-३७)।

उक्त वैदिक परम्परा को ध्यान में रखकर ही लगधमुनि ने वेदाङ्ग ज्योतिष के **"अग्निः प्रजापतिः सोमः"** इत्यादि श्लोकों (३२-३५) में नक्षत्र के देवताओं के नामों से यज्ञ में प्रयोग के लिए यजमान का नाम रखने की बात स्पष्ट रूप से कही है[2]।

इस वेदाङ्गज्योतिष में बताई गई नक्षत्रदेवतानाम से नामकरण करने की व्यवस्था की अनुकूल नक्षत्रनामव्यवस्था आयुर्वेद के अतिप्राचीन ग्रन्थ (सामान्य तया विक्रमपूर्व द्वितीयशताब्दी में प्रतिसंस्कृत माने गए ग्रन्थ) चरक-संहिता में शारीरस्थान में[3] दी गई है। विक्रमाब्दों के पञ्चम-षष्ठ शताब्दी के माने गए वृद्ध वाग्भट के अष्टाङ्गसङ्ग्रह नाम के आयुर्वेदग्रन्थ में भी उत्तरतन्त्र के प्रथम

---

१. श्रौत सोमयाग में सुब्रह्मण्याह्वान होता है, सुब्रह्मण्याह्वान के स्वरूप को काठमाण्डु के स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब से २०४९ संवत् में प्रकाशित कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा में देखें (पृ. ३९०-३९१)।

२. वेदाङ्गज्योतिष में प्रतिपादित नक्षत्रदेवतानाम इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट में देखें।

३. **नाक्षत्रिकं तु नक्षत्रदेवतासमानाख्यं द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा।**-चरकसंहिता, शारीरस्थान ८।५०

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अध्याय में[1] वैसी ही व्यवस्था दी गई है। उनके ही अष्टाङ्गहृदय में भी उत्तरस्थान में (१।२३) वैसी ही व्यवस्था प्राप्त होती है। वैक्रमाब्दों के ग्यारहवें शतक में वर्तमान माने गए चक्रपाणिदत्त ने चरकसंहिता के उक्त सन्दर्भ की व्याख्या में[2] नक्षत्रदेवता से सम्बद्ध नाम रखने की बात बताई है। सुश्रुतसंहिता में शारीरस्थान में (१०।२४) आए हुए नाक्षत्रनाम की व्याख्या में वैक्रमाब्दों के बारहवें शतक में वर्तमान और चक्रपाणिदत्त के कनिष्ठ समकालिक रूप में माने गए डल्हण ने भी[3] नाक्षत्रनाम नक्षत्रदेवतायुक्त रूप में रखने की वेदाङ्गज्योतिष के विधान की अनुकूल व्यख्या की है। अष्टाङ्गसङ्ग्रह की इन्दुव्याख्या में भी[4] वेदाङ्गज्योतिष के अनुकूल रूप में नाक्षत्रनाम रखने की बात बताई गई है। वैक्रमाब्दों की तेरहवीं शताब्दी के माने गए अरुणदत्त ने अष्टाङ्गहृदय की व्याख्या में[5] वेदाङ्गज्योतिषानुसारी नाक्षत्रनाम रखने की व्यवस्था को स्पष्ट किया है। वरदत्तसुत आनर्तीय गोविन्द ने शाङ्खायनश्रौतसूत्र के भाष्य में **"असावसाविति नामनी यजमानस्य"** इस सूत्रांश की (१।१४।१७) व्याख्या में[6] नाक्षत्रनाम नक्षत्र की देवता में आश्रित होने की बात स्पष्ट की है। सत्रहवीं शताब्दी के मित्र मिश्र ने वीरमित्रोदय के संस्कारप्रकाश में नामकरण-प्रकरण में लगधमुनि के नक्षत्रदेवताबोधक श्लोकों का भी उल्लेख करके खादिरगृह्यसूत्र का वचन भी दिखाकर **"देवताऽत्र नक्षत्रदेवता"** ऐसा कहकर वेदाङ्गज्योतिषोक्त नाक्षत्रनाम की व्यवस्था का प्रधान रूप में उल्लेख किया है (पृ.२३९)। १७५६ वैक्रमाब्द में संस्कारभास्कर की रचना करनेवाले ऋषि भट्ट ने भी कात्यायन के अनुयायियों का वेदाङ्गज्योतिष के नाक्षत्रनाम की व्यवस्था का ही अनुगमन करने की बात बताई[7] है। गोपीनाथ भट्ट ने कृष्णयजुर्वेदी हिरण्यकेशियों की संस्कार-रत्नमाला में वेदाङ्गज्योतिष के **"अग्निः प्रजापतिः"** इत्यादि श्लोकों को भी उद्धृत करके नक्षत्रदेवता के अनुसार नाम रखने की बात दिखाई है (पृ.८५८)। १८४७ वैक्रमाब्द में धर्मसिन्धु

---

१. नक्षत्रदेवतायुक्तं तदेव तु न केवलम् ।–अष्टाङ्गसङ्ग्रह, उत्तरतन्त्र, प्रथम अध्याय।

२. यस्मिन् नक्षत्रे कुमारो जातस् तस्य नक्षत्रस्य या देवता ज्योतिःशास्त्रे तस्या नाम कर्तव्यम्।

३. नक्षत्रनामेति नक्षत्रदेवताकृतं नामेत्यर्थः।–डल्हण (सुश्रुतसंहिताव्याख्या ३।१०।२४)।

४. एता नक्षत्रदेवता यादृश्यस् ताभिर् युक्तं नाम कारयेत्।–अष्टाङ्गसङ्ग्रहव्याख्या।

५. किं भूतं नाम? नक्षत्रस्य याऽसौ देवता तया युक्तम्।–अष्टाङ्गहृदयव्याख्या।

६. नक्षत्रदेवताश्रयं पूर्वं व्यावहारिकमुत्तरम्।–शाङ्खायनश्रौतसूत्रव्याख्या १।१४।१।

७. कातीयानां कृत्तिकोत्पन्नस्याऽग्निशर्मेति नक्षत्रदेवतासम्बद्धं नाक्षत्रं नाम कुर्यात्।
—संस्कारभास्कर, पत्र १२३ और १२४।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की रचना करनेवाले काशीनाथ उपाध्याय ने भी धर्मसिन्धु के नामकरण-प्रकरण में 'चू-चे-चो-ला इत्यादि को लेकर कोई नाक्षत्र नाम रखते हैं किन्तु वह श्रौतग्रन्थादि का सम्मत नहीं है'[1] ऐसा कहकर शाङ्खायन ऋग्वेदशाखाध्यायियों में और कात्यायन के अनुयायी शुक्लयजुर्वेदियों में भी जन्मनक्षत्र की देवता को लेकर नाक्षत्रनाम रखने की मूल वैदिकपरम्परा जीवित रहने की बात[2] बताई है। १८४३ शकान्ताब्द में (१९७८ वैक्रमाब्द में) सम्पूर्ण किए गए कर्मकाण्डप्रदीप में अण्णाशास्त्री वारे महोदय ने भी नामकरणप्रकरण में वेदाङ्गज्योतिष के "अग्निः प्रजापतिः" इत्यादि श्लोकों को उद्धृत करके[3] शाङ्खायनीय ऋग्वेदियों में और कात्यायन के अनुयायी शुक्लयजुर्वेदियों में भी वेदाङ्गज्योतिष की नाक्षत्रनाम-व्यवस्था प्रचलित ही रहने की बात बताई है।

उक्त प्रकार से अतिप्राचीन काल के चरकमुनि के समय से आधुनिक समय तक भी वेदाङ्गज्योतिष की नाक्षत्रनाम की व्यवस्था मान्य रहकर चली आ रही अवगत होती है।

इस स्थिति में ऋग्वेदी लघ्वाश्वलायनस्मृतिकार, १३२३ संवत् में कातीय-गृह्यकारिका की रचना करनेवाले रेणुदीक्षित, पारस्करगृह्यसूत्र की व्याख्याता गदाधर, १८१८ वैक्रमाब्द में पारस्करगृह्यसूत्र की व्याख्या संस्कारगणपति की रचना करनेवाले रामकृष्ण, १९७४ वैक्रमाब्द में संस्कारदीपक को पूर्ण करनेवाले नित्यानन्द पन्त पर्वतीय इत्यादि लोगों ने कैसे मूल वैदिक परम्परा से विमुख होकर नाक्षत्रनाम रखने की व्यवस्था मानी? यह भी भारतवर्षीय ज्योतिष का एक बहुत ही ज्वलन्त प्रश्न है। उनमें भी १३२३ संवत् में ग्रन्थ रचनेवाले रेणुदीक्षित ने मूल वैदिक परम्परा से विमुख होकर आगममार्ग की (तन्त्रमार्ग की) ओर जाकर

---

१. केचित् तु चूचेचोलाऽश्विनी प्रोक्तेत्यादिज्योतिर्ग्रन्थोक्ताऽवकहडचक्रानुसारेणाऽश्विन्यादेश् चतुर्षु चरणेषु चूडामणिश् चेदीशश् चोलेशो लक्ष्मण इत्यादिकानि नाक्षत्रनामानि कुर्वन्ति। तन् न श्रौतग्रन्थादिबहुसम्मतम्।

—धर्मसिन्धु, तृतीयपरिच्छेदपूर्वार्ध नामकरणप्रकरण, निर्णयसागरमुद्रणालय, द्वितीयावृत्ति, १९०४ क्रै., पृ. १४४।

२. साङ्ख्यायनास् तु कृत्तिकोत्पन्नस्याऽग्निशर्मेति नक्षत्रदेवतासम्बद्धं नाक्षत्रं नाम कुर्वन्ति। एवं कातीया अपि।

—धर्मसिन्धु, तृतीयपरिच्छेदपूर्वार्ध नामकरणप्रकरण, १९०४ क्रै., पृ. १४४।

३. शाङ्खायनाः कृत्तिकासूत्पन्नस्य अग्निशर्मेत्येवं नाक्षत्राणि नामानि मन्यन्ते।......कातीया अपि देवतासम्बद्धमेव नाक्षत्रनाम मन्यन्ते।

—कर्मकाण्डप्रदीप, पत्र ७४, उत्तरपृष्ठ, पत्र ७५, पूर्वपृष्ठ

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ततत्तत् नक्षत्र के 'चू चे चो ला' इत्यादि अक्षर को लेकर जातक का नाक्षत्रनाम रखने की बात[1] कातीयगृह्यकारिका के नामकरण-प्रकरण में कैसे लिखा यह एक बडा ही ज्वलन्त प्रश्न है। वैक्रमाब्द १६६० में मुहूर्तचिन्तामणिव्याख्या पीयूषधारा के रचनेवाले गोविन्द दैवज्ञ इत्यादि अर्वाचीन लोगों ने तो **"तदक्षरादिकं नाम यस्मिन् धिष्ण्ये यदक्षरम्"** इस रेणुदीक्षित के श्लोकार्ध को परिशिष्टवचन के नाम से उद्धृत करके ही नाक्षत्रनाम की व्यवस्था दी है।

ज्योतिषियों में १५८५ संवत् से पहले ही रचे गए ज्योतिषार्क नाम के ग्रन्थ के रचयिता से अवकहडचक्र का विशेष प्रतिपादन किया गया अवगत होता है। सत्रहवीं शताब्दी के अनन्तदेव ने स्मृतिकौस्तुभ में इसी ग्रन्थ का नाम लिया है। मुहूर्तचिन्तामणि की १६६० में रची गई व्याख्या पीयूषधारा में भी नामकरण प्रकरण में ज्योतिषार्क को उद्धृत किया गया है।।

प्राचीन ग्रन्थों में बौधायनगृह्यपरिशेषसूत्र, आपस्तम्बगृह्यसूत्र के व्याख्याकार हरदत्त और सुदर्शन, हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र के व्याख्याता मातृदत्त, गोभिलगृह्यसूत्र के व्याख्याकार भट्टनारायण, खादिरगृह्यसूत्र के अथवा द्राह्यायणगृह्यसूत्र के व्याख्याता रुद्रस्कन्द, छान्दोग्यब्राह्मण के (मन्त्रब्राह्मण के) व्याख्याता सायण, कौषीतकिगृह्यसूत्र के व्याख्याकार भवत्रात इत्यादि प्राचीन विद्वानों ने पाणिनीय व्याकरण से अन्वाख्यात साक्षात् नक्षत्र से सम्बद्ध कृत्तिक, कार्त्तिक, रोहिण, रौहिण इत्यादि नामों का उल्लेख करने पर भी अ-व-क-ह-ड-चक्रानुसारी नाक्षत्रनामों का कोई उल्लेख नहीं किया है।

निर्णयसिन्धुकार, वीरमित्रोदयकार, संस्कारकौस्तुभकार, संस्काररत्नमालाकार, संस्कारभास्करकार, निर्णयसिन्धुव्याख्या बालम्भट्टी के कर्ता, धर्मसिन्धुकार, संस्कारप्रदीपकार इत्यादि अर्वाचीन विद्वानों ने तो अ-व-क-ह-ड–चक्रानुसारी नाक्षत्रनामों का भी उल्लेख किया है। इससे अर्वाचीन काल में अवकहडचक्रानुसारी नाक्षत्रनाम रखने की प्रथा प्रबल होती हुई प्रतीत होती है।

वैदिक संस्कार से सम्बन्ध रखनेवाले नाम के विषय में भी ऐसी स्थिति कैसे आई यह भी भारतवर्षीय ज्योतिष का और धर्मशास्त्र का भी एक बहुत बडा ही ज्वलन्त प्रश्न है।

---

१. तदक्षरादिकं नाम यस्मिन् धिष्ण्ये यदक्षरम्।
शङ्करोक्तागमादेस् तदुपायं कथयाम्यहम्॥—कातीयगृह्यकारिका, पृ. २९।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का सोलहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

वेदाङ्ज्योतिषग्रन्थ के परिष्कार और व्याख्यान में उपेक्षा क्यों?

वेदाङ्गज्योतिष में कालगणना के आधारभूत पञ्चवर्षात्मक युग के कालनिरूपण की पद्धति निदर्शन के रूप में दिखाई गई है। इस युग की विशेषता यह है कि शुक्लप्रतिपदा के आरम्भ का और सौर उत्तरायण के आरम्भ का क्षण एक ही है, शुक्लप्रतिपदा के आरम्भ के काल में और सौर उत्तरायण के आरम्भ के काल में कोई अन्तर नहीं है। वेदाङ्गज्योतिष के कालगणना के आरम्भ के इस पञ्चवर्षात्मक आदर्शयुग को **आदियुग** कहा गया है। ऐसे युग में युग के मध्य में और अन्त में अधिकमास होते हैं। सभी पञ्चवर्षात्मक युगों में ऐसी स्थिति नहीं हो सकती है। इस लिए लगधमुनि ने स्पष्ट रूप में कहा है कि इस ग्रन्थ में दिखाया गया गणित **दिक्प्रदर्शनात्मक** है, और युग की वस्तुस्थिति को देखकर इसी प्रकार का गणित अन्य पञ्चवर्षात्मक युगों के लिए भी कल्पित किया जाना चाहिए। उनका वाक्य है **"इत्युपायसमुद्देशो भूयोऽप्येवं प्रकल्पयेत्"** (श्लो. ४२)। इस स्थिति में वैदिक ज्योतिषियों को और धर्मशास्त्रियों को लगध मुनि के मूल निर्देशों को लेकर उस में आवश्यक परिष्कार करके श्रौत-स्मार्त धर्मकृत्य के लिए युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, पर्वकाल, नक्षत्र, अधिमास इत्यादि की गणना की व्यवस्था करनी चाहिए। जैसे पाणिनीय व्याकरण में सूत्रों में पाई जानेवाली न्यूनताओं को वार्त्तिकों से और भाष्य से पूर्ण करके पाणिनीय व्याकरण को व्यवहार में लाया गया वैसे ही लगधमुनि के वेदाङ्गज्योतिष में भी पूरण और व्याख्यान तथा स्पष्टीकरण करके उस ग्रन्थ को व्यवहार में लाना चाहिए था। पाणिनि के सूत्र से तो अनेक लौकिक और वैदिक शब्द अव्याख्यात ही रहते हैं। द्वितीयस्मै, तृतीयस्मै इत्यादि देवदत्तीयम्, यज्ञदत्तीयम्, बिम्बोष्ठी, कुलटा, सीमन्त इत्यादि अनेक शब्द पाणिनि के सूत्र से अव्याख्यात हैं। उनके लिए वार्त्तिक बनाना पडा है। गृभ्णामि, जभार, ग्रभीता इत्यादि अनेक वैदिक शब्द के लिए भी वार्त्तिक बनाना पडा है। इस विषय को हमने वेदाङ्गज्योतिष के कौण्डिन्न्यायन-व्याख्यान में (पृ. ४०७-४०८) स्पष्ट किया है।

उक्त प्रकार की वैदिक शास्त्रपरम्परा में लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष में आवश्यक परिष्कार के लिए और उसके आवश्यक व्याख्यान के लिए तथा उसको श्रौत-स्मार्त धर्मकृत्य के लिए आवश्यक काल के निरूपण में प्रयोज्य बनाने और दिखाने के लिए वेद-वेदाङ्गों के विद्वानों का, वैदिक ज्योतिषियों का और धर्मशास्त्रियों का ध्यान क्यों नहीं गया? उनसे इस पक्ष में प्रयत्न क्यों नहीं हुआ? यह भी भारतवर्षीय ज्योतिष का बहुत ही बडा ज्वलन्त प्रश्न है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का सत्रहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ वैदिकों से कैसे मान्य और अनुसरणीय माना गया?

वर्तमान काल में प्रचलित सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ अपने को सत्ययुग के अन्त में उपदिष्ट बताता है (१।२-९)। किन्तु इसका वर्षमान (३६५।१५।३१।२४) ६८५ वैक्रमाब्द में ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त ग्रन्थ रचनेवाले ब्रह्मगुप्त से और ११५६ वैक्रमाब्द में भास्वती ग्रन्थ रचनेवाले शतानन्द से भी परिगृहीत नहीं होने से सूर्यसिद्धान्त का उक्त कथन असत्य ही माना गया है। इस सूर्यसिद्धान्त को सुधाकरद्विवेदी प्रभृति भी आर्यभटीय का समकालिक ही मानते हैं।

वैदिक मूल परम्परा में वेद-वेदाङ्गादि शास्त्र मूल रूप में ब्रह्मा जी से उपदिष्ट और ऋषि-मुनियों से प्रचारित माने जाते हैं। किन्तु यह सूर्यसिद्धान्त सूर्य से उपदिष्ट और महान् असुर से प्रचारित माना गया है (१।२-९)।

सूर्यसिद्धान्त में वैदिक पञ्चसंवत्सरात्मक युग का कोई प्रतिपादन नहीं है। इससे इसका वेदोक्त कर्मों के काल का अनुविधान करने में विशेष प्रवृत्ति का अभाव स्पष्ट होता है।

वैदिक धर्मकृत्यार्थक वर्ष मुख्य रूप में चान्द्र हैं। किन्तु सूर्यसिद्धान्त में वर्ष मुख्यतया सौर है (मानाध्याय, श्लोक १०)।

वैदिक धर्मकृत्यार्थक उदगयन और दक्षिणायन भी सौर-चान्द्र हैं। किन्तु सूर्यसिद्धान्त में अयन शुद्ध सौर माना गया है (मानाध्याय, श्लोक ९)।

वैदिक परम्परा में सूर्य का उदङ्मुखीभाव ही उदगयन है। सूर्यसिद्धान्त में तो सूर्य का उत्तरगोलावलम्बन को ही उत्तरायण और देवदिन माना गया दिखाई देता है (भूगोलाध्याय, श्लोक ४, ४५, ४८, ४९, ६३-६४, ६७)।

वैदिक धर्मकृत्यार्थक ऋतु मुख्य रूप में चान्द्र हैं। किन्तु सूर्यसिद्धान्त में ऋतुओं के चान्द्रत्व का कोई उल्लेख नहीं है। ऋतुओं का केवल सौरत्व माना गया है (**"द्विराशिनाथा ऋतवः"**—मानाध्याय श्लो. १०)।

वैदिक तपस्-तपस्य मधु-माधव इत्यादि मास सूर्य गतिस्थिति-सापेक्ष होने पर भी मुख्य रूप में शुक्लप्रतिपदादि अमावास्यान्त रूप में चान्द्र ही हैं। किन्तु सूर्यसिद्धान्त में **"मेषादयो द्वादशैते मासास् तैरेव वत्सरः"** (मानाध्याय श्लो. १०) कहकर सौर मेषमास-वृषमासादि मासों की ही मुख्यता मानी गई है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मूल वैदिक परम्परा में शाश्वत-प्रकृतिसिद्ध रूप में वर्ष शिशिरादि अथवा तपश्शुक्लादि माना गया है। किन्तु सूर्यसिद्धान्त में मुख्य रूप में मेषमासादि वर्ष माना गया है (मानाध्याय, श्लोक १०)।

वैदिक परम्परा में दिन का प्रारम्भ सूर्योदय से माना जाता है। किन्तु सूर्यसिद्धान्त में तो अर्धरात्रपरिच्छिन्न अहर्गण माना गया है (मध्यमाधिकार, श्लो. ५०) और वारप्रवृत्ति भी अर्धरात्रि से ही मानी गई है (मध्यमाधिकार, श्लो.६६)।

सूर्यसिद्धान्त में चतुष्पद और नाग करणों का क्रम वैदिक परम्परा में अमान्य रूप में दिया गया है (स्पष्टाधिकार, श्लोक ६७)।

सूर्यसिद्धान्त में वैदिकों से अपरिगृहीत और ब्रह्ममीमांसासूत्र में निराकृत (२।२।४२-४५) वैष्णवों के चतुर्व्यूहवाद में आस्था दिखाई गई है (भूगोलाध्याय, श्लोक १२-१४)।

वैदिक सिद्धान्त में सृष्टि के लिए परमेश्वर को विशेष समयावधि आवश्यक नहीं माना गया है। सूर्यसिद्धान्त में तो सृष्टि के लिए परमेश्वर को लम्बा ही समय लगा हुआ बताया गया है (१।२४)। इससे वैदिकों के कल्पाब्द १९७२९४९१०८ होने पर सूर्यसिद्धान्तानुसारी सृष्टितोगताब्द १९५५८८५१०८ बताया जाता है। इस में १७०६४००० वर्षों का अन्तर है। कल्पाब्दभिन्न यह सृष्टितोगताब्द श्रुतिस्मृतिपुराणसम्मत नहीं है।

उक्त विवरण से सूर्यसिद्धान्त वेद-स्मृति-पुराणोक्त वैदिक परम्परा का ठीकठीक अनुसरण नहीं करता है, यह बात स्पष्ट होती है। उक्त विषयों का विशेष प्रतिपादन हमारे वेदाङ्गज्योतिषव्याख्यान की भूमिका में किया गया है।

उक्त प्रकार से मूल वैदिक ग्रन्थों से निरपेक्ष रूप में और उनके प्रतिकूल रूप में कालगणना के प्रमुख विषयों का प्रतिपादन करनेवाला सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ वैदिकों से कैसे मान्य और अनुसरणीय माना गया? यह भी भारतवर्षीय ज्योतिष का एक ज्वलन्त प्रश्न ही है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का अठारहवाँ ज्वलन्त प्रश्न

वैदिक आर्तव (सायन) पद्धति को छोडकर निरयण राशिपद्धति कैसे स्वीकारी गई?

अथर्ववेद में मघा में अयनप्रवृत्ति का सङ्केत प्राप्त होता है। मैत्रायणीयोपनिषद् में धनिष्ठार्ध में उदगयनप्रवृत्ति उल्लिखित है। वेदाङ्गज्योतिष में धनिष्ठा के आदि में उदगयनप्रवृत्ति प्रतिपादित है। अतः वैदिकों की कालगणना आर्तव (सायन) अवगत होती है। यह पद्धति ऋतुप्रधान वर्षगणना के लिए समुचित और पूर्णतया युक्तियुक्त (वैज्ञानिक) भी है। इसी आधार में लगधमुनि से तपोमास की अथवा राशिनिरपेक्ष वैदिक आर्तव माघमास की परिभाषा दी गई है।

किन्तु पीछे जब शकशासक तथा उनके सहयोगी शाकद्वीपीय मगब्राह्मणों से प्रचारित निरयण चित्रानिर्दिष्ट अश्विन्यादिक मेषादि राशियों का जातकादि में विशेष प्रयोग होने लगा तब सूर्य की राशिसङ्क्रान्ति से गिने जानेवाले मेषमासादि मास बहुत प्रचार में आने लगे, तब ब्रह्मगुप्त ने चान्द्रमास की परिभाषा भी **"मेषगरविसङ्क्रान्तिः शशिमासे भवति यत्र तच् चैत्रम्। एवं वैशाखाद्या वृषादिसङ्क्रान्तियोगेन"** कहकर निरयण राशि के आधार में दिया। ऐसी ही बातों के प्रभाव से **"मेषादिस्थे सवितरि योयो मासः प्रपूर्यते चान्द्रः। चैत्राद्यः स ज्ञेयः पूर्तिद्वित्वेऽधिमासोऽन्त्यः"** इत्यादि वचन रचित होने लगे और वैदिक आर्तव चान्द्रमास भी राशिबद्ध माने जाने लगे। पाणिनि से उल्लिखित **"साऽस्मिन् पौर्णमासीति"** (अष्टाध्यायी ४।२।२१) इत्यादि निर्वचन की भी उपेक्षा करके चान्द्रमासविशेष भी निरयण सौर राशिविशेष से बाँधे गए और अयनान्त में ही अधिकमास मानने के सिद्धान्त का परित्याग करके अधिकमास की नई परिभाषा बनाई गई।

वैदिक आर्तव (सायन) पद्धति को छोडकर विदेश से आयातित निरयण राशिपद्धति में जाना वैदिकों को कैसे मान्य हुआ? जातकादि में फलादेशपरक ज्योतिषी मग ब्राह्मणादि निरयण राशिपद्धति का प्रयोग करते रहते, फिर भी वैदिकों को श्रौत-स्मार्त धर्मकृत्यकाल निरूपण के लिए तो अनादि-वैदिक-परम्परागत वेद-कल्पसिद्ध आर्तव अयनपद्धति को छोडने की कोई आवश्यकता नहीं थी। फिर भी वह पद्धति कैसे छोडी गई और निरयण राशिपद्धति कैसे स्वीकारी गई? यह भी भारतवर्षीय ज्योतिष का एक ज्वलन्त प्रश्न ही है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्षीय ज्योतिष का उन्नीसवाँ ज्वलन्त प्रश्न

पञ्चाङ्ग सुधार समिति ने वेदाङ्गज्योतिष पर समुचित ध्यान क्यों नहीं दिया?

भारतवर्ष के गौरवास्पद विषयों में वेद-वेदाङ्ग-वाङ्मय का प्रमुख स्थान है। मानवसभ्यता के इतिहास में भी वेद-वेदाङ्गों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। **"पञ्चसंवत्सरमयम्"** इत्यादि वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ श्रौत-स्मार्त धर्मकृत्यों के काल के निरूपण के लिए अत्यन्त मान्य और अनुल्लङ्घनीय माना गया ग्रन्थ है। भूमण्डल के कालगणना के ग्रन्थों में अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलनेवाला और अयनचलन के विचार के लिए अत्यन्त उपयोगी लगभग ३४०० वर्ष पुराना आलेख इस वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ में प्राप्त होने से सम्पूर्ण भूमण्डल के कालगणनाशास्त्र के इतिहास में भी यह अद्वितीय ग्रन्थ है। इसको थोडा कुछ ही परिष्कार करके वर्तमान काल में भी प्रयोज्य बनाया जा सकता है। इस विषय में हमने वेदाङ्गज्योतिष-कौण्डिन्न्यायनव्याख्यान में (२००५ क्रै.) स्पष्ट रूप में मार्ग सुझाया भी है।

इस लौकिक और शास्त्रीय वस्तुस्थिति में भारत स्वतन्त्र होने पर सम्पूर्ण भारत के लिए एक सर्वस्वीकार्य पञ्चाङ्ग बनाने की पद्धति प्रस्तुत करने के लिए १९५२ क्रैस्ताब्द में भारत-सम्प्रशासन से प्रसिद्ध बडे खगोलवैज्ञानिक मेघनाद साहा की अध्यक्षता में और बडे ज्योतिषी निर्मलचन्द्र लाहिड़ी (एन्.सी.लाहिरी) के सदस्यसचिवत्व में नाना प्रदेश के अन्य पाँच विज्ञों को सम्मिलित करके एक समिति बनाई गई और उस समिति से प्रस्तुत पद्धति १९५५ कैस्ताब्द में प्रकशित हो गई भी अवगत होती है। उस समिति से लौकिक पञ्चाङ्ग की और धार्मिक पञ्चाङ्ग की रचना के लिए प्रस्तुत प्रमुख निर्देश पाण्डुरङ्ग वामन काणे के धर्मशास्त्र का इतिहास के अर्जुन चौबे काश्यप से प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद में चतुर्थ भाग में उन्नीसवें अध्याय में (पृ.३४१-३४२) प्राप्य हैं। उन निर्देशों के अनुसार १९५७ क्रैस्ताब्द से (२०१४ संवत् से) भारतीय सम्प्रशासन से अनेक भारतीय भाषाओं में और आङ्लभाषा में राष्ट्रिय पञ्चाङ्ग नाम से पञ्चाङ्ग प्रकाशित किए जा रहे भी ज्ञात होते हैं।

पञ्चाङ्ग-सुधार-समिति (Calendar Reform Committee) के उन निर्देशों को और प्रकाशित पञ्चाङ्गों के नमूनों को देखने से विदित होता है कि उक्त समिति का लगधमुनिप्रोक्त **"पञ्चसंवत्सरमयम्"** इत्यादि से आरम्भ कि

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गए वेदाङ्गज्योतिष में समुचित रूप में ध्यान नहीं गया है। उस समिति के सदस्यसचिव निर्मलचन्द्र लाहिडी के एफिमेरिज में उल्लिखित वैदिक नववर्षारम्भ-दिन का विचार करने से यह भी ज्ञात होता है कि उस समिति से वेदाङ्गज्योतिष को ठीक-ठीक रूप में समझने के लिए पर्याप्त प्रयास और ऊहापोह भी नहीं किया गया है। यद्यपि वेदाङ्गज्योतिष को समझने के लिए व्रेबेर, थीबो, जनार्दन बालाजी मोडक, शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित, लाला छेटेलाल बार्हस्पत्य, सुधाकर दिवेदी, बालगङ्गाधर तिलक, शामशास्त्री इत्यादि पाश्चात्य और प्राच्य अध्येताओं के प्रयास पूर्ण रूप में सफल नहीं हुए थे, तथापि पञ्चाङ्ग सुधार समिति को उसका गौरव अच्छी तरह समझकर और वह ग्रन्थ किसी सम्प्रदायविशेष से और प्रान्तविशेष से विशेष रूप से असम्बद्ध और पूरे भारत से सम्बद्ध होने से यह ग्रन्थ और उसकी व्यवस्था सभी भारतवर्षीय लोगों को स्वीकार्य हो सकने की बात का अच्छी तरह आकलन करके उस ग्रन्थ की मुख्य बातों में विशेष ध्यान देना ही चाहिए था। किन्तु वेदाङ्गज्योतिष के अधोलिखित निष्कर्षों में उक्त समिति का समुचित रूप में ध्यान नहीं गया हुआ तथ्य स्पष्ट रूप में प्रतीत होता है—

१. वेदाङ्गज्योतिषअनुसार नववर्षारम्भ तपश्शुक्लप्रतिपदा में (वैदिक दृक्सिद्ध आर्तव सौर उदगयन से सम्बद्ध और प्रचलित राशिपद्धति से असम्बद्ध वैदिक चान्द्र माघशुक्लप्रतिपदा में) होता है।

२. वैदिक वर्ष सौरचान्द्र है, यह क्रिश्चियनों के वर्ष की तरह केवल सौर अथवा मुसलमानों के वर्ष की तरह केवल चान्द्र नहीं है।

३. वैदिक वर्ष मुख्य रूप में चान्द्र होने पर भी इसका अधिमास के समावेश से सौर वर्ष से वारंवार समञ्जस्य स्थापित करने की व्यवस्था होने से यह सौर-चान्द्र है।

४. शङ्कु की छाया के अथवा दिनमान के निरीक्षण से जानने योग्य सूर्य के दृक्सिद्ध उदगयन के आरम्भ के दिन से पूर्ववर्ती अथवा अधिमासयुक्त वर्ष में उस दिन से कभी-कभी उत्तरवर्ती भी हो सकनेवाली आसन्न शुक्लप्रतिपदा में वैदिक सौरचान्द्र नववर्ष का आरम्भ होता है।

५. उक्त प्रकार से निर्णीत नववर्ष संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर, वत्सर इन पाँच वर्षों में कौन सा वर्ष है यह निर्णय पञ्चसिद्धान्तिका में सङ्गृहीत पैतामहसिद्धान्त, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, रघुनन्दन के स्मृतितत्त्व का मलमासतत्त्व इत्यादि ग्रन्थों के वचनों के समन्वय से किया जाना चाहिए।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६. उक्त प्रकार से निर्णीत वैदिक सौरचान्द्र नववर्ष के आरम्भ के दिन से ही वैदिकों का श्रौत-स्मार्त धर्मकृत्य के लिए सौरचान्द्र उदगयन (उत्तरायण) का भी प्रारम्भ होता है।

७. उक्त प्रकार से निर्णीत वैदिक सौरचान्द्र नववर्ष के आरम्भ के दिन से ही वैदिकों का श्रौत-स्मार्त धर्मकृत्य के लिए सौर-चान्द्र शिशिर ऋतु भी प्रवृत्त होता है। और उसके बाद दोदो अमावास्यान्त चान्द्र मासों में शुक्लप्रतिपदाओं में सौरचान्द्र वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा शरद् और हेमन्त ऋतु प्रवृत्त होते हैं। अयन के अन्त में अधिकमास होने पर अयनान्त का ऋतु तीन चान्द्र मासों का होता है और अधिमास व्यतीत होने पर ही नया ऋतु प्रवृत्त होता है। ये ऋतु मुख्य रूप में चान्द्र ही हैं, तथापि अधिमास की व्यवस्था से इन चान्द्र ऋतुओं का सौर ऋतुओं से दूरविप्रकर्ष का परिहार करने की व्यवस्था होने से ये वैदिक ऋतु भी सौर-चान्द्र ही माने जाते हैं।

८. वेद के मन्त्रभाग में बताए गए तपः, तपस्य, मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभः, नभस्य, इष, ऊर्ज, सहः, सहस्य ये मास भी उक्त प्रकार के नववर्षारम्भ से ही क्रमशः प्रवृत्त होते हैं। ये मास भी मुख्य रूप में चान्द्र ही हैं, तथापि इन मासों का भी अधिमास की व्यवस्था से सौर ऋतुओं से दूरविप्रकर्ष का परिहार किए जाने से ये मास भी सौर-चान्द्र ही हैं। ब्राह्मणग्रन्थ, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र इत्यादि ग्रन्थों में उल्लिखित माघ, फाल्गुन इत्यादि मास भी उक्त रूप से निर्णीत तपः, तपस्य इत्यादि मासों से अभिन्न ही माने जाते हैं। ये मास ऋतुबद्ध हैं नक्षत्रबद्ध नहीं।

९. सौर अयनों से और विषुवदिनों से ज्ञात होनेवाले ठण्डक, धूप और वर्षा के हेतु वास्तविक सौर ऋतुओं से पूर्वोक्त प्रकार के चान्द्र ऋतुओं के दूर-विप्रकर्ष का परिहार करके सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए भी अयनों के अन्त में जोडे जानेवाले अधिमास की व्यवस्था ही अधिक उपयुक्त और अनादि-परम्परासिद्ध है। वेद-वेदाङ्गों में अनुल्लिखित और वैक्रमाब्द के प्रथम-द्वितीय शताब्दी में प्रविष्ट विदेशी शक शासकों के साथ में आए हुए इरानी मग ब्राह्मणों से लाए गए और शासक के बल और व्यवहार से भारतवर्ष में प्रचारित अर्वाचीन राशिव्यवस्था से परिभाषित अधिकमास वैदिक परम्परा की दृष्टि से अनुचित है।

१०. वेदाङ्गज्योतिष की प्रतिपदादि तिथियाँ सामान्यतया अहोरात्रात्मक हैं। इस लिए प्रतिपदादि में खण्डतिथि का विचार अनावश्यक है। केवल पिण्डपितृयज्ञ के दिन को और दर्शेष्टि के दिन को जानने के लिए ही स्पष्ट पक्षसमाप्तिकाल विचारणीय होता है। श्रौत स्मार्त धर्मकृत्य के लिए मान्य

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कालगणना में शुक्लपक्ष की कोई भी तिथि न टूटती है न तो बढती है। यह बात श्रुतियों को, कल्पसूत्रों को, और स्मृतियों को भी ध्यान में रखकर मानी जाती हैं। कृष्णपक्ष में भी चतुर्दशी को छोडकर अन्य तिथि न तो बढती है न ही टूटती है। वास्तविक पक्षसमाप्तिकाल को (पर्वसमाप्तिकाल को) ध्यान में रखकर कभीकभी चतुर्दशी तिथि छोड दी जाती है। इससे कभी-कभी बीते हुए यजनीय दिन से चौदहवें दिन को ही अमावास्या मानकर उसी दिन के अपराह्ण को पिण्डपितृयज्ञ का काल माना जाता है।

११. मास में प्रकृतिसम्मत चान्द्र मास ही लेना समुचित होने से भारतवर्ष में अनादि काल से ही लोकव्यवहार में भी मास चान्द्र ही लिए जाते थे। किन पक्षों को १४ दिन का मानना चाहिए इस में कुछ व्यवस्था करने पर लोकव्यवहार के लिए चान्द्र मास ही पर्याप्त सुविधाजनक होते हैं। वेदाङ्गज्योतिष की तिथि-गणनापद्धति को लेने पर यह सुविधा प्राप्त हो जाती है। यह बात कौटलीय अर्थ-शास्त्र के, अभिधर्मकोष की व्याख्या इत्यादि ग्रन्थों के तथा कल तक (निकट भूतकाल तक) भी व्यवहार में आ रहे कायस्थों के तिथिपत्र के साक्ष्य से भी स्पष्ट होती है।

१२. नक्षत्रविचार में भी वेद-स्मृति-पुराणों में कृत्तिकाओं का प्रथम स्थान में उल्लेख पाए जाने से और वेद में कृत्तिका-तारापुञ्ज की अम्बा, दुला इत्यादि छः ताराओं के नामों का भी विशेषतः उल्लेख होने से भी चन्द्र के परिभ्रमण में कृत्तिका की जिस तारा से चन्द्र का पहले योग होता है उसी तारा के आद्य बिन्दु को नक्षत्रचक्र का आद्य बिन्दु माना जाना चाहिए। उसी के अनुरूप वेध से नक्षत्र-क्षेत्रविभजन करके नक्षत्रों के आरम्भ के स्थान निश्चित किए जाने चाहिए।

१३. जैसे आधुनिक भारतीय ज्योतिषी लोग उनके मूल ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त इत्यादि के वर्षमानादि का संस्कार करके व्यवहार में प्रयोग करते हैं[1], जैसे संस्कृताध्येता लोग पाणिनीय व्याकरणाष्टाध्यायी का वार्त्तिककार के और भाष्यकार के वचनों से परिष्कार करके व्यवहार में प्रयोग करते हैं, वैसे ही लगधमुनि से बताए गए सौर वर्ष के, चान्द्र वर्ष के और चान्द्र मास के मानों में भी

---

१. सौरोक्तं शरदः प्रमाणमधुना सार्धैः पलैरष्टभिः
सत्याद् दीर्घतरं हि वेधनिपुणैः प्रत्यक्षतो लक्ष्यते।
चक्रुः प्राक् किल वर्तमानघटनां दृष्ट्वा मुहुः सूरयः
शुद्धिं तद्वदिहापि वेधजशरद्दैर्घ्यं मया स्वीकृतम्॥—वेङ्कटेश बापूजी केतकर
(द्र.– Indian and Foreign Chronology [१९२३ क्रै.], पृ. १५३)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिष्कार करके प्रयोग में लाना चाहिए। नये वर्ष का आरम्भ, सौरचान्द्र अयनों का आरम्भ, सौरचान्द्र ऋतुओं का आरम्भ, चान्द्र मासों का आरम्भ, अधिमास का आरम्भ, पर्वकालनिर्णय इत्यादि तो लगधमुनि से बताए गए सिद्धान्त को और वेद-स्मृति-पुराणादि के अनुकूलता को ध्यान में रखकर उनके अनुसार ही करना चाहिए। लगधमुनि से बताए गए शिशिरादि युग-वर्ष-अयनादि के सिद्धान्त का परित्याग तो नहीं ही करना चाहिए।

१४. भारतवर्षीय मूल परम्परा के गौरव की रक्षा नहीं करनी है तो ग्रेगोरियन कालगणना को लेकर चलिए, हो गया; नहीं तो मूल वैदिक कालगणना-पद्धति का अच्छी तरह अध्ययन, मनन और निर्णय करना ही चाहिए और उसके अनुकूल रूप में ही हमारी वर्तमान काल में अनुसरणीय कालगणनापद्धति व्यवस्थित की जानी चाहिए।

उक्त दृष्टि से विचार करने से पञ्चाङ्ग-सुधार-समिति का भारतवर्षीय धार्मिक-सांस्कृतिक संवत् कलिसंवत् को छोडकर (१) शकसंवत् का प्रयोग करने का निर्देश, (२) वर्ष का आरम्भ वासन्तिक विषुव दिन के अगले दिन से करने का निर्देश, (३) चैत्र से वर्ष का आरम्भ करने का और चैत्र, वैशाख इत्यादि मासनामों का सौर मास के नाम के रूप में प्रयोग करने का निर्देश, (४) वर्ष का आरम्भ और ऋतु का आरम्भ एक साथ में न मानकर भिन्नभिन्न समय में मानने का और वसन्त ऋतु के फाल्गुन मास को पहले वर्ष में और चैत्र मास को दूसरे वर्ष में मानने का निर्देश, (५) अयन के अन्त में ही अधिकमास मानने की मूल वैदिक परम्परा को छोडकर अयन के मध्य में भी अधिकमास मानने का निर्देश, (६) युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि सब को ही सौर-चान्द्र मानने की वैदिक परम्परा को छोडकर वर्षादि को केवल सौर मानने का और वैदिक सौर-चान्द्र तपः, तपस्य, मधु, माधव इत्यादि मासनामों को केवल सौर मास के नाम के रूप में राष्ट्रिय पञ्चाङ्गों में प्रयोग करने का निर्देश, (७) वैदिक नक्षत्रगणना-पद्धति का विशेष विचार न करके ही नक्षत्रों का राष्ट्रिय पञ्चाङ्गों में समावेश करने का निर्देश इत्यादि बातें समुचित नहीं दिखाई देती हैं।

लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ का भारतवर्षीय आत्मगौरव की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। भारतवर्ष के गौरवास्पद विषयों में वेद-वेदाङ्ग-वाङ्मय का प्रमुख स्थान है। वेदों का महत्त्व थोडाबहुत सभी भारतवर्षनिवासी जानते हैं। वेदाङ्गवाङ्मय में व्याकरणादि अन्य विषयों का भी कुछ प्रचार है और व्याकरणकार पाणिनि प्रसिद्ध ही हैं। किन्तु वेदाङ्गज्योतिषविद्या में और कालगणनापद्धति में अतीव महत्त्वपूर्ण स्थान रखनेवाले आचार्य लगध को और

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उनके "पञ्चसंवत्सरमयम्" इत्यादि वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ को बहूत कम लोग जानते हैं। किन्तु वैदिकधर्मकृत्यों के कालों के निरूपण में यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक और अनुल्लङ्घनीय माना गया है। अयनचलन के विचार के लिए अत्यन्त उपयोगी करीब ३४०० वर्ष प्राचीन आलेख, जो भूमण्डल के अन्य देशों के ज्योतिषवाङ्मय में सर्वथा अनुपलब्ध है, इस ग्रन्थ में उपलब्ध होने से कालगणनापद्धति के विषय में इस ग्रन्थ का लौकिक महत्त्व भी विलक्षण और अद्वितीय है। इस ग्रन्थ की कालगणनापद्धति में समुचित ध्यान न देना पञ्चाङ्ग-सुधार-समिति की बहुत बडी कमजोरी दिखाई देती है।

उक्त वस्तुस्थिति का विचार करने पर भारतवर्ष के बडे खगोल-वैज्ञानिकों का और भारतीय राष्ट्रिय सम्प्रशासन के नेताओं का भी मूल वैदिक परम्परा के और भारतवर्ष के गौरव में और उसकी रक्षा में समुचित ध्यान क्यों नहीं गया और तदनुसार पर्याप्त अध्ययन और प्रयास क्यों नहीं हो सका यह भी एक बहुत ही बडा ज्वलन्त प्रश्न खडा होता है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपसंहार

ऊपर उपस्थापित प्रश्नों से यह बात आगे आती है कि मूल वैदिक शास्त्र-व्यवस्था बहूत पहेले से ही विस्मृत अथवा अर्धविस्मृत सी हो गई है।

हमारी शास्त्रव्यवस्था का मूल वेद का अध्ययन और अध्यापन है। वेद के अध्ययन–अध्यापन के लिए उपनयन की और ब्रह्मयज्ञ की (स्वाध्यायाध्ययन की) शास्त्रीय व्यवस्था है। इन व्यवस्थाओं का निर्वहण मुख्य रूप में ब्राह्मणों में निर्भर होता है। अपनी रक्षा के लिए वेदविद्या का ब्राह्मण के समीप में आना वेद में (संहितोपनिषद्ब्राह्मण, तृतीय खण्ड, कण्डिका ९), निरुक्त में (२।१।४[२।४]), वासिष्ठधर्मसूत्र में (२।८) और मनुस्मृति में (२।११४) भी वर्णित है। इससे वेदविद्या के और वैदिक व्यवस्था के संरक्षण में ब्राह्मणों का विशेष उत्तरदायित्व अवगत होता है। तथापि क्षत्रियवैश्यादि की समझदारी और सहायता के विना ब्राह्मणों से उक्त उत्तरदायित्व का वहन अच्छी तरह से नहीं हो सकता है। इस लिए भारतवर्षनिवासी सभी वर्णों का वेदविद्या की और वैदिक परम्परा की और उसके गौरव की रक्षा में उत्तरदायित्व है।

आज से प्रायः ५००० वर्षों से पहले कलियुग का प्रारम्भ होने के समय से ही अर्थकामपरायण चार्वाकों की क्रमशः वृद्धि होने से, सूर्यवंशी इक्ष्वाकुओं के राजवंश की सुमित्र के समय में समाप्ति होने से, चन्द्रवंशी पौरवों के राजवंश की भी क्षेमक के समय में समाप्ति होने से (विष्णुपुराण ४।२२।१३, ४।२१।१८), जैनों के और बौद्धों के उदय से, फारस के कुरुष के और यूनान के सिकन्दर के आक्रमण से तथा शक-पह्लव-कुषाण-हूण-अरब-तुरुष्क-अफगान-मुगलों के आक्रमणों से भारतवर्ष की वर्णाश्रमव्यवस्था में अव्यवस्था की सी स्थिति आ गई और बढती गई। ऐसी स्थिति शङ्कर के समय में (८४५–८७७ वै.?) ही आ गई विदित होती है। शङ्कर ने ब्रह्ममीमांसासूत्र के भाष्य में **"इदानीमिव च कालान्तरेऽप्यव्यवस्थितप्रायान् वर्णाश्रमधर्मान् प्रतिजानीत"** (१।३।३३) ऐसा लिखकर इस बात को सूचित किया है। शङ्कर ने गीता की व्याख्या के प्रारम्भ में भी वर्णाश्रमधर्मरूप वैदिक धर्म की रक्षा के लिए कृष्णावतार होने की बात बताकर कलियुग के प्रारम्भ से ही वर्णाश्रमधर्म में शिथिलता आने की और वर्णाश्रमधर्म में विशेष सावधानी से रक्षणीयता आने की बात भी सूचित की है। भारतवर्ष में अङ्ग्रेजों के शासन के काल में (१७७३–१९४७ क्रै., १८३०–२००४ वै.) भी वर्णाश्रमधर्म को और उसके शास्त्रों को और भी शिथिल करके क्रिश्चियन मत के प्रचार के लिए आधार निर्मित करने की भरपूर चेष्टा की जाने की बात अवगत

Prof. Anandavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होती है। इन सब कारणों से वैदिक सनातन वर्णाश्रमधर्म में और आर्ष वेद-वेदाङ्गाऽध्ययन में बहुत शिथिलता आई हुई प्रतीत होती है।

वैदिक अध्ययन में शिथिलिता आने से वेद-वेदाङ्गों के सन्तुलित अध्ययन की परम्परा बहुत समय से शिथिल रही हुई प्रतीत होती है।

यद्यपि ६८५ संवत् में ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त रचनेवाले ब्रह्मगुप्त ने वेदाङ्ग-ज्योतिष की पञ्चवर्षात्मकयुगव्यवस्था को ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के तन्त्रपरीक्षाध्याय में सीधे **"असत्"** कह दिया है (पद्य २) तथापि आर्यभट की कृति में दोष दिखाते हुए ब्रह्मगुप्त ने स्मृति में प्रतिपादित युगमान, मन्वन्तरमान और कल्पमान से आर्यभट के युगमानादि की सङ्गति न होने की बात ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के तन्त्रपरीक्षाध्याय के **"न समा मनुयुगकल्पाः"** इत्यादि (पद्य १०) पद्य से बताई है। कलिवर्ष ३६०० में अपने को २३ वर्ष का बतानेवाले आर्यभट ने क्यों स्मृति से अपने ग्रन्थ का समन्वय नहीं स्थापित किया? सम्भवतः आर्यभट वराहमिहिर की तरह ही शक-कुंषाणादि बाह्य विजयियों के साथ में आनेवाले शाकद्वीपीय मग ब्राह्मणों के वंशज थे और उनका भारतवर्षीय वेद-स्मृति-पुराणों की मूल परम्परा से विशेष लगाव नहीं था। इसी से आर्यभट-वराहमिहिर-ब्रह्मगुप्तादि से मूल वैदिक परम्परा के प्रतिकूल बातें भी बताई गई हैं। वराहमिहिर ने पञ्चसिद्धान्तिका में विदेशी पौलिश, रोमक और सौर इन सिद्धान्तों को स्पष्ट और वासिष्ठ तथा पैतामह सिद्धान्त को दूरविभ्रष्ट कहा है। पैतामहसिद्धान्त को दूरविभ्रष्ट कहना वराहमिहिर का अज्ञानमूलक और अविवेकमूलक तथा मिथ्याभिनिवेशमूलक कार्य है।

वेद-वेदाङ्गों के अध्ययन में शिथिलता आने से ही मूल वैदिक धारा के भारतवर्षीय ब्राह्मणों से वेदाङ्गज्योतिष के और स्मृति के प्रतिकूल रूप में आर्यभट-वराहमिहिर-ब्रह्मगुप्तादि से प्रतिपादित बातों की अवैदिकता का भी सम्यक् आकलन नहीं हो सका । इसी से १३२३ संवत् में कातीयगृह्यकारिका बनानेवाले रेणुदीक्षित ने भी वेदाङ्गज्योतिष की नक्षत्र-देवता से जातक का नामकरण करने की पद्धति को न लेकर **"चू चे चो ला अश्विनी"** इत्यादि व्यवस्था के अनुकूल रूप में नक्षत्रनामकरण करने की पद्धति बताई है। ऋग्वेदियों की अर्वाचीन स्मृति लघ्वाश्वलायनस्मृति में भी ऐसी बात पाई जाती है। आर्यभट-वराहमिहिर-ब्रह्मगुप्तों से पीछे के ज्योतिषियों में और धर्मशास्त्रनिबन्धकारों में भी मूल वैदिक कालगणना के विषय में बहुत ही अनभिज्ञता देखी जाती है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह सब वेदवेदाङ्गों का अच्छी तरह अध्ययन नहीं करने का और नित्य ब्रह्मयज्ञ का सम्यक् सम्पादन नहीं करने का ही परिणाम है। इस लिए हमने वैदिक परम्परा में मुख्यतया अध्येतव्य ग्रन्थों का और नित्य ब्रह्मयज्ञ में अध्येतव्य ग्रन्थों का तथा उनका ही वैदिक सनातन वर्णाश्रमधर्म में मुख्य प्रामाण्य रहने की बात का भी विवरण देकर विस्तृत प्रस्ताविका के साथ में **ब्रह्मयज्ञपद्धति** की रचना की है और उसको वाराणसीस्थ चौखम्बाविद्याभवन से प्रकाशित (२००४ क्रै.) करवाया है। उससे मूल वेद-वेदाङ्गाध्ययन की व्यवस्था का प्रामाणिक परिचय प्राप्त हो सकेगा। साथ में ही हमने **वेदाङ्गज्योतिष** का भी विस्तृत भूमिका के साथ में **कौण्डिन्न्यायनव्याख्यान** का भी प्रणयन किया है और उसको भी वाराणसीस्थ चौखम्बाविद्याभवन से ही प्रकाशित (२००५ क्रै.) करवाया है। वेदाङ्गज्योतिषशास्त्र के विषय में उससे प्रामाणिक और यथार्थ जानकारी मिल सकती है।

इन सब बातों का विचार करके भारतवर्षीय द्विजातियों को अपनी मूल वैदिक शास्त्रीय अध्ययन-अध्यापन परम्परा को अच्छी तरह पहचानके और मूल वैदिक कालगणनापद्धति की वैज्ञानिकता अथवा प्रकृतिसम्मतता तथा विशेषताओं को देखकर उनका अध्ययन तथा दृढता से संरक्षण और अनुसरण भी करना चाहिए और वैदिक कालगणनापद्धति में देखे गए बाह्य तथा अर्वाचीन प्रभाव को और अनुचित घुसपैठ को हटा भी देना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम आस्तिक विद्वान् ब्राह्मणों को अपने उपनयनविवाहादि संस्कारों के, अध्यायोपाकर्म के और क्षयतिथिश्राद्ध इत्यादि कृत्यों के लिए स्वशाखागृह्यसूत्रविहित काल का निर्णय वेदाङ्गज्योतिष के अनुसार करके उनको प्रयोग में लाना प्रारम्भ भी कर देना चाहिए। श्रौतयज्ञानुष्ठाताओं को दर्शपूर्णमास-चातुर्मास्य-निरूढपशुबन्ध-अग्निष्टोमसोमयागादि वैदिक यज्ञों के लिए स्वशाखावेद-श्रौतसूत्रादि से विहित काल का निर्णय भी वेदाङ्गज्योतिष के अनुसार ही करके उनको प्रयोग में लाना चाहिए। साथ ही विद्वान् ब्राह्मणों को लोक में मूल कालगणनापद्धति का प्रचार-प्रसार करने का प्रयत्न भी निरन्तर करते रहना चाहिए। इस कार्य में सहयोग पहुँचाने के लिए इसी ग्रन्थ में परिशिष्ट में वैदिककालज्ञान नाम का प्रकरण भी दिया गया है (पृ.२४१-२६४)। उसका उपयोग करना चाहिए। वेदादिशास्त्रश्रद्धावान् अन्य सभी लोगों को भी विद्वान् ब्राह्मणों के उपदेशानुसार वेदाङ्गज्योतिषोक्त कालगणनापद्धति का अनुसरण करके धार्मिक कृत्य करना चाहिए।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निष्कर्षरूप सिद्धान्त

हमारी मूल वैदिक परम्परा से आई हुई और श्रुति-स्मृति-पुराण के अनुयायियों (सम्पूर्ण हिन्दुओं) के लिए धर्मकृत्य में सर्वथा अनुल्लङ्घनीय लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ में प्रतिपादित तथा आज भी श्रौत-स्मार्त यागों के और संस्कारों के लिए निर्विकल्परूप में अनुसरणीय कालव्यवस्था के निष्कर्षरूप सिद्धान्त अधोलिखित हैं—

(१) शङ्कु की छाया से अथवा दिनपरिमाणविशेष से प्रत्यक्ष रूप में जाने जा सकनेवाले सौर उत्तरायण के प्रारम्भ के दिन से प्रायः आसन्न पूर्ववर्ती और अधिमासयुक्त वर्ष में कभीकभी अत्यासन्न उत्तरवर्ती भी हो सकनेवाली शुक्लप्रतिपदा में वैदिकधर्मानुयायियों का प्रकृतिसम्मत और कालगणनाधारभूत सौरचान्द्र नया वर्ष लगता है।

(२) उक्त प्रकार से लगा हुआ नया वर्ष वेदोक्त संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर, वत्सर इन पाँच वर्षों में से कौन-सा वर्ष है यह बात विष्णुधर्मोत्तरपुराण इत्यादि के वचनों से निर्णीत होती है। इसी आधार में वैदिक संवत्सर-परिवत्सरादि से पूर्णतया समन्वित और श्रौत-स्मार्त धर्मकृत्यों के सङ्कल्प में मुख्यतया उच्चारणीय माने गए चान्द्र प्रभव-विभवादि षष्टि संवत्सरों का भी निर्णय होता है।

(३) उक्त प्रकार से निर्णीत सौरचान्द्र नये वर्ष के साथ में ही वैदिकों के श्रौत- स्मार्त कृत्यों के लिए सौरचान्द्र उदगयन का (उत्तरायण का) भी प्रारम्भ होता है।

(४) उक्त प्रकार से निर्णीत वैदिक सौरचान्द्र नये वर्ष के प्रारम्भ के दिन से ही वैदिकों के श्रौत-स्मार्त कृत्यों के लिए वैदिक सौर चान्द्र शिशिर ऋतु भी लगता है, और दोदो चान्द्र मासों के बाद क्रम से वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् और हेमन्त ऋतु लगते हैं। अयन के अन्त में अधिमास (अतिरिक्त चान्द्रमास) रहने पर अधिमास भी बीतने पर अगला ऋतु लगता है। वैदिक धर्मशास्त्रीय ऋतु मुख्य रूप से चान्द्र ही हैं (चान्द्र दो महीनों से बनते हैं), अधिमासव्यवस्था से इनका वास्तविक दृक्सिद्ध सौर ऋतुओं से दूरविप्रकर्ष का (ज्यादा अन्तर का) परिहार किए जाने से इन को सौरचान्द्र माना जाता है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(५) वेदमन्त्रोक्त तपः, तपस्य, मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभः, नभस्य, इष, ऊर्ज, सहः, सहस्य ये मास शुक्लपक्ष की प्रतिपदा में प्रारम्भ होकर अमावास्या में पूर्ण होनेवाले चान्द्रमास ही हैं। इनका ही श्रौत-स्मार्त धर्मकृत्य में ग्रहण होता है। अधिमासव्यवस्था से आर्तव सौर मास से इन मासों का दूरविप्रकर्ष का (ज्यादा अन्तर का) परिहार किए जाने से इन मासों को भी सौरचान्द्र माना जा सकता है। माघ, फाल्गुन इत्यादि मासों को तो वेद-मन्त्रोक्त तपः, तपस्य इत्यादि मासों से अभिन्न ही माना जाना चाहिए। माघ-फाल्गुन इत्यादि मासों की राशिमूलक परिभाषा अग्राह्य है। निरयण राशियों से निरूपित होनेवाले मकरमास, कुम्भमास, मीनमास, मेषमास, वृषमास इत्यादि सौर मास तो सर्वथा अवैदिक तथा इरानी मग ब्रह्मणों से भारतवर्ष में लाए गए मास हैं, श्रौत-स्मार्त मूल धर्मकृत्य में सर्वथा अग्राह्य हैं।

(६) सौर दृक्सिद्ध अयनारम्भों से और वस्तुतः दिनरात्रिमानसाम्ययुक्त विषुवकाल से जाने जा सकनेवाले ठण्डक, धूप और वर्षा के हेतु वास्तविक सौर ऋतुओं से चान्द्र ऋतुओं के दूरविप्रकर्ष का (ज्यादा अन्तर का) परिहार वेदाङ्गज्योतिषानुसार अयन के अन्त में ही अधिमास (चान्द्र अतिरिक्त मास) जोडकर किया जाना चाहिए।

(७) वैदिकों के श्रौत-स्मार्त कृत्यों के लिए तिथियाँ औत्सर्गिक रूप में अहोरात्रात्मक ही मानी जाती हैं। खण्डतिथिविचार अनावश्यक है। केवल पिण्डपितृयज्ञ के और दर्शेष्टि के दिन के निर्णय के लिए ही दृक्सिद्ध अमावास्यापर्व की समाप्ति का काल विचारणीय होता है। इस लिए वैदिक तिथिव्यवस्था में शुक्लपक्ष में कोई भी तिथि न तो टूटती है न तो बढती है, कृष्णपक्ष में भी चतुर्दशी को छोडकर अन्य तिथि न तो टूटती है न तो बढती है, पर्वसमाप्ति के काल का विचार करके वर्ष में ५ अथवा ६ कृष्णपक्षों में श्रुति-स्मृति-पुराणादि के अनुकूल रूप में चतुर्दशी तिथि को ही अमावास्या मानकर पिण्डपितृयज्ञ इत्यादि अमावास्याकृत्य किए जाते हैं।

(८) नक्षत्रचक्र में श्रुति-स्मृति-पुराणों में कृत्तिका का स्थान पहला होने से कृत्तिका को ही पहला नक्षत्र मानना चाहिए। उस में चन्द्रमा के भ्रमण में कृत्तिका की पहले उदित होनेवाली तारा से जहाँ पर चन्द्रमा का योग होता है वहीं से नक्षत्रचक्र का प्रारम्भ माना जाना चाहिए। उसी का आधार लेकर वेधसाधनयुक्त

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लोगों से २७ नक्षत्रक्षेत्रों का क्षेत्रविभाग किया जाना चाहिए और तिथिपत्रों में उस-उस नक्षत्र की घटी पलाएँ दी जानी चाहिए।

(९) वैदिकों को श्रौतस्मार्तकृत्यों में प्रयोग के लिए जातक का नाम लगध-प्रोक्त पद्धति से ही रखना चाहिए, अवकहडचक्र से सम्बद्ध नहीं। द्विजातिभिन्न लोग अथवा फलादेश में विशेष आग्रह रखनेवाले लोग अवकहडचक्रसम्बद्ध नाम स्वेच्छा से रखते रहें, फलादेश भी करते और सुनते रहें; किन्तु श्रौत-स्मार्त धर्म-कृत्यों में वैसे अवकहडचक्रानुसारी नाम का प्रयोग नहीं ही किया जाना चाहिए।

(१०) जैसे आधुनिक सूर्यसिद्धान्तानुयायी ज्योतिषी लोग सूर्यसिद्धान्त में दिए गए वर्षमानादि में समुचित संशोधन करके उसको व्यवहार में लाते हैं, जैसे शिष्ट लोग पाणिनि की अष्टाध्यायी में वार्त्तिककार-भाष्यकारों के वचन से परिष्कार करके पाणिनि की अष्टाध्यायी को संस्कृतभाषाव्यवहार में लाते हैं वैसे ही लगध-मुनि के ग्रन्थ के सिद्धान्तों में भी आवश्यक परिष्कार करके उनका श्रौत-स्मार्त-धर्मकृत्यादि व्यवहार में प्रयोग किया जाना चाहिए। लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष ग्रन्थ के आधार को बिलकूल छोडकर तो वर्ष-अयन-ऋतु-मासादि का निर्णय नहीं ही करना चाहिए। मूल वेदाङ्गग्रन्थ की प्रामाणिकता न मानने से ब्राह्मणादि वैदिकधर्मानुयायियों में पाखण्डता आ जाएगी।

(११) वैदिकों के श्रौत-स्मार्त-धर्मकृत्यार्थक सौरचान्द्र वर्ष के आरम्भ का दिन, उत्तरायण के आरम्भ का दिन, दक्षिणायन के आरम्भ का दिन, ऋतुओं के आरम्भ का दिन, महीनों के आरम्भ का दिन, अधिमास के आरम्भ का दिन और पर्वकाल तो लगधमुनिप्रोक्त सिद्धान्त को लेकर और श्रुति-स्मृति-पुराण-परम्परादि के आनुकूल्य को ध्यान में रखकर ही निर्णीत किए जाने चाहिए, अवैदिक सिद्धान्तज्योतिष को लेकर कदापि नहीं।

वेद-वेदाङ्गों की प्रामाणिकता को सुरक्षित करना चाहनेवाले आस्तिक ब्राह्मण-क्षत्रियादि को इस विषय में ध्यान देना और इन सिद्धान्तों को श्रौत-स्मार्त-धर्मकृत्यों में निर्विकल्प रूप में प्रयोग में लाना ही चाहिए। अन्यथा वेद-वेदाङ्गों का प्रमाणत्व और हमारा ब्राह्मणत्व-क्षत्रियत्वादि भी चला जाएगा, भारतवर्ष का गौरव भी नहीं रहेगा, वस्तुतः हमारा सर्वस्व ही

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चला जाएगा। अतः आज से ही वेदाङ्गज्योतिषोक्त कालगणनासिद्धान्त का अनुसरण करना प्रारम्भ कर देने के लिए सभी वैदिक धर्म के अनुयायियों को (हिन्दुओं को) हम आह्वान करते हैं। इस विषय में किसी को कुछ भी विचारविमर्श करना हो तो स्वाद्ध्यायशाला में सम्पर्क करने का कष्ट करें। इति शिवम्॥

स्वाद्ध्यायशाला, १६८, शिवभक्तमार्ग
[नीलसरस्वतीमार्गसंलग्न],
लाजिम्पाट्,काठमाण्डु-२, नेपाल,

वैद्युतसन्देश (इमेल) svadhyaya@hotmail.com

स्थानसङ्केत

स्वाद्ध्यायशाला

ब्रह्मपुरी, बुढानीलकण्ठनगर–६, हात्तिगौँडा, काठमाण्डू, नेपाल।
email : svadhyaya2036@gmail.com

सम्पर्कसूत्र (ह्वाट्स्याप एवं इमेल)

प्रो.आमोदवर्धन कौण्डिन्न्यायन
+977 9849091467,amoda67@hotmail.com

प्रो. प्रियंवदाम्बा कौण्डिन्न्यायनी काफ्ले
+977 9841822365, priyamvadakafle@gmail.com

प्रो. प्रमोदवर्धन कौण्डिन्न्यायन
+977 9841968262, acharyapramod622@gmail.com

प्रो. सुमोदवर्धन कौण्डिन्न्यायन
+977 9843035397, acharya.sumod@gmail.com

प्रो. डा. सम्मोदवर्धन कौण्डिन्न्यायन
+977 9841968292, sammodacharya@gmail.com

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष का महत्त्व, परिचय और उसकी विशिष्ट व्याख्या

१. लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ का महत्त्व

भारतवर्ष के गौरवास्पद विषयों में वेद-वेदाङ्ग-वाङ्मय का प्रमुख स्थान है। वेदों का महत्त्व थोडाबहुत सभी भारतवर्षनिवासी जानते हैं। वेदाङ्ग वाङ्मय में व्याकरणादि अन्य विषयों का भी कुछ प्रचार है। व्याकरणकार पाणिनि प्रसिद्ध ही हैं। किन्तु वेदाङ्गज्योतिषविद्या में और कालगणनापद्धति में अतीव महत्त्वपूर्ण स्थान रखनेवाले आचार्य लगध को और उनके **"पञ्चसंवत्सरमयम्"** इत्यादि वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ को बहूत कम लोग जानते हैं। किन्तु वैदिकधर्मकृत्यों के कालों के निरूपण में यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक और अनुल्लङ्घनीय माना गया है। अयनचलन[1] के विचार के लिए अत्यन्त उपयोगी करीब ३४०० वर्ष प्राचीन आलेख, जो भूमण्डल के अन्य देशों के ज्योतिषवाङ्मय में सर्वथा अनुपलब्ध है, इस ग्रन्थ में उपलब्ध होने से कालगणनापद्धति के विषय में इस ग्रन्थ का लौकिक महत्त्व भी विलक्षण और अद्वितीय है। तथापि यह ग्रन्थ आजकल चर्चा में नहीं आता है। सामान्य शिक्षित लोग ही नहीं बडेबडे ज्योतिषी और धर्मशास्त्री पण्डित भी इस ग्रन्थ के विषय में प्रायः यथार्थ ज्ञान से रहित पाए जाते हैं। अतः भारतवर्ष के गौरवास्पद इस ग्रन्थ की और मूल वैदिक धार्मिक कालगणनापद्धति की सङ्क्षिप्त चर्चा हिन्दी भाषा में भी प्रस्तुत की जा रही है। विस्तृत चर्चा तो हमारे कौण्डिन्न्यायनव्याख्यान से युक्त वेदाङ्गज्योतिष के संस्करण में (२००५ क्रै.) संस्कृतभूमिका में और मूल व्याख्यान में की गई है।

भारतवर्ष के इतिहास में विभिन्न समयों में वैदिक धर्म की पालना में नानाविध बाधाएँ उपस्थित दिखाई देतीं हैं। ऐसी ही बाधाव्यवधानों से लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष की कालगणनापद्धति की परम्परा भी टूटी हुई मालूम पडती है।

---

१. सूर्य इस वर्ष जिस नक्षत्र के जिस अंश में अथवा बिन्दु में पहुँचने पर उत्तरायण का आरम्भ होता है अगले वर्ष उस नक्षत्र के उस अंश में अथवा उस बिन्दु में पहुँचने से कुछ पहले ही (लगभग २० मिनट २५ सेकेण्ड पहले ही) उत्तरायण का आरम्भ हो जाता है, ऐसा प्रतिवर्ष होता ही रहता है। ऐसी ही स्थिति दक्षिणायनारम्भ में भी होती है। अर्थात् अयनारम्भ होने के बिन्दु प्रतिवर्ष कुछ इधर सरकते रहते हैं। इसी को अयन-चलन कहते हैं।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस विषय में **'भारतवर्ष का नवीन इतिहास'** नाम के ग्रन्थ में (प्रयाग, १९५५ क्रै.) डा. ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है "(ईसा से पूर्व द्वितीय शताब्दी के आसपास) ज्योतिष-विद्या की अनेक बातें भारतीयों ने यूरोप के लोगों से सिखीं। वे रोम और यूनान को ज्योतिष-विद्या का घर समझते थे। ज्योतिष के अनेक यूनानी ग्रन्थों का अनुवाद संस्कृत में किया गया। भारतीय पंचांग का भी यूनानियों की सलाह से संशोधन हुआ" (पृ.६६)। कुन्दनलाल शर्मा ने होशियारपुर से प्रकाशित **'वैदिक वाङ्मय का बृहद् इतिहास'** नाम के ग्रन्थ के षष्ठ खण्ड में (१९८३ क्रै.) लिखा है "यद्यपि हिन्दू ज्योतिषियों ने वेदांग-ज्योतिष के सिद्धान्त का परित्याग प्रथम ईसवी शती के आरम्भ में करके यूनानी (रोमक) सिद्धान्त को स्वीकार करके अपनी गणना-पद्धति में परिवर्तन तथा संशोधन कर लिया था, तो भी जैन ज्योतिर्विदों ने अपनी प्राचीन परम्परा को स्थिर रखा है" (पृ.१४४)। उक्त स्थिति के बावजूद वैदिक ब्राह्मणों में वर्तमान वेदवेदाङ्गग्रन्थों के विशेष प्रकार के नित्य ब्रह्मयज्ञ की[1] (स्वाध्यायाध्ययन की) परम्परा के बल से ३४०० वर्ष पुराना छोटा सा और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ विविध बाधाओं को पार करता हुआ आज तक अपना अस्तित्व बराबर बनाए हुए है। अब भी वैदिक ब्राह्मण ब्रह्मयज्ञ में (नित्यस्वाध्यायाध्ययन में) लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ पढा करते हैं[2]।

२. लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ की प्रामाणिकता

इस लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ के अथवा इसके प्रतिपाद्य प्रमेय के तत्तत्काल में अस्तित्व और प्रभाव के प्रमाण मैत्रायणीयब्राह्मणोपनिषद् में (६।१४), बौधायनश्रौतसूत्र में (२६।२९), महाभारत में (चित्रशालासंस्करण १।१२४।२२, २।११।३८, ४।५२।१-४, १२।१३१।१३, १४।४४।२), ब्रह्मवैवर्तपुराण के गणपतिखण्ड में (३।८) और कृष्णजन्मखण्ड में (९६।५७-५८), ब्रह्माण्डपुराण में (१।२४।१४०), भविष्यपुराण में (१।१२५।३३-३६), वायुपुराण में (१।३१।२७, १।५०।१८२-१८३, १।५२।६८, १।५३।११२-११६), विष्णुपुराण में (२।८।६६), भागवत में (३।११।१४,१५; ५।२२।७), मत्स्यपुराण में (१४१।१६-१८), लिङ्गपुराण में (१।६१।५२-५६), स्कन्दपुराण में (१।२।३९।५१-५२,

---

१. ब्रह्मयज्ञ का स्वरूप, महत्त्व, ब्रह्मयज्ञ में अध्ययनीय ग्रन्थ इत्यादि विषय में चौखम्बा-विद्याभवन से प्रकाशित (२००४ क्रै.) हमारी **ब्रह्मयज्ञपद्धति** की भूमिका देखें।

२. द्रष्टव्य– **भारतीय ज्योतिष**, शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित, अनु. शिवनाथ झारखण्डी, हिन्दी समिति, लखनऊ, १९७५ क्रै.; पृ.९३; **याजुषज्यौतिषम् आर्चज्यौतिषं च**, सुधाकर द्विवेदी, वाराणसी, संवत् १९६४, ज्यौतिषभूमिका, पृ.१; **ज्योतिर्विज्ञानम्**, अर्कसोमयाजी धूलिपाल, वाराणसेय संस्कृतविश्वविद्यालय, १९६४ क्रै., पृ.५।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५।३१६।१३), देवीभागवत में (८।१६।१५,१६), विष्णुधर्मोत्तरपुराण में (१।८२।५२-५५, २।१७५।१२-१३, ३।९६।११-१२, ३।१२०।२, ३।१५३।१-, ३।३१७।२-३), शिवपुराण-कैलास-संहिता में (१२।८८-९२), कौटलीय अर्थशास्त्र में (२।२०), पतञ्जलिमुनिकृत पाणिनीयव्याकरणभाष्य में (२।१।२९, वा.२; २।२।३४, वा.३), चरकसंहिता में (सूत्रस्थान ६।४, शारीरस्थान ८।५०), सुश्रुतसंहिता में (१।६।५,६,७,९), अष्टाङ्गहृदय में (१।३।१-२, उत्तरस्थान १।२२,२३), बृहत्संहिता के आदित्यचाराध्याय के प्रथम श्लोक में, पञ्चसिद्धान्तिका के पैतामहसिद्धान्त में, ब्रह्मगुप्तकृत ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में (११।२), भट्टोत्पलकृत बृहत्संहिताटीका में (बृहस्पतिचाराध्याय, श्लो.५२), जीमूत-वाहनकृत कालविवेक में (पृ.३), उव्वटकृत शुक्लयजुर्वेदसंहिताव्याख्या में (२७।४५), महीधरकृत शुक्लयजुर्वेदसंहिताव्याख्या में (२७।४५), अष्टाध्यायीव्याख्या काशिका की व्याख्या पदमञ्जरी में (५।१।९१), सूर्यदेवकृत आर्यभटीयव्याख्या भटप्रकाशिका के उपोद्घातप्रकरण में, कालमाधव के प्रथम प्रकरण में (चौखम्बा, २०४५ वै., पृ.२४), सायणकृत ऋग्वेदव्याख्याभूमिका में, विष्णुपुराण की कलिवर्ष ४४०० में रचित विष्णुचित्ती टीका में (२।८।७१-७२) पुरुषार्थ-चिन्तामणि के कालखण्ड में (पृ.४०९), मुहूर्तचिन्तामणि की स्वोपज्ञव्याख्या प्रमिताक्षरा के और पीयूषधारा के प्रारम्भ में (१।२), पीयूषधारा के सङ्क्रान्ति-प्रकरण में (श्लो.९), मित्रमिश्र के वीरमित्रोदय के परिभाषाप्रकाश में (पृ.२०) और संस्कारप्रकाश में (पृ.२१५), याज्ञवल्क्यस्मृतिमिताक्षरा-बालम्भट्टी में (१।१२), गोपीनाथकृत संस्काररत्नमाला में (पृ.८५८), ऋषिभट्टकृत सस्कारभास्कर में (पृ.१२३-१२४) तथा काशीनाथोपाध्यायकृत धर्मसिन्धु में और अण्णाशास्त्रिकृत कर्मकाण्डप्रदीप में भी नामकरणप्रकरण में और गोविन्दसदाशिवआप्टेकृत सर्वानन्दकरण में पाए जाते हैं। सोमाकर की व्याख्या भी इस ग्रन्थ की प्रमाणता और अनुसरणीयता की प्रदर्शिका ही है। सोमाकर की व्याख्या प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ही है। इसका उल्लेख पुरुषार्थचिन्तामणि के कालखण्ड में भी है (पृ.४०९)। सुधाकर द्विवेदी ने और शामशास्त्री ने भी आधुनिक काल में ही इस वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ की संस्कृत में व्याख्या की है।

उक्त विवरण से आचार्य-लगधप्रोक्त **"पञ्चसंवत्सरमयम्"** इत्यादि वेदाङ्ग-ज्योतिषग्रन्थ की प्रमाणता और अनुसरणीयता उस ग्रन्थ के आद्य प्रवचन काल से आजतक सैद्धान्तिक रूप में स्वीकृत होने की बात भी स्पष्ट हो जाती है। स्वाध्यायाध्ययनविधि के आधार पर पढे जानेवाला ग्रन्थ होने से वैदिक धर्म में इस वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ की प्रमाणता स्वतः सिद्ध है। इस विषय को स्पष्ट करते हुए लौगाक्षिस्मृतिकार ने **'पञ्चसंवत्सरमयम्'** इत्यादि वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ को

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वथा अलङ्घनीय बताया है[1]। वेदाङ्गज्योतिष विषय के मूलागम के रूप में वर्तमान यह ग्रन्थ सर्वथा अत्याज्य होने की बात जगन्मोहन ग्रन्थ में उल्लिखित भारद्वाजवचन से भी जानी जा सकती है (शास्त्रावताराध्याय, पृ.४)।

नामकरणसंस्कार में नक्षत्रनाम के निर्णय के विषय में वर्तमान काल में प्रचलित **'अवकहडचक्र'** प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में सर्वथा अनुपलब्ध है। वेदाङ्गज्योतिष का नक्षत्रनामकरणविधान इस चक्र के विधान से बिलकूल भिन्न है। वह वैदिक नक्षत्रदेवताओं से सम्बद्ध है। वेदाङ्गज्योतिष के नक्षत्रनामकरणविधान का प्रभाव चरकसंहिता में दिखाई देता है (शारीरस्थान ८।५०)। इसका स्पष्टीकरण चक्रपाणि ने और गङ्गाधर ने वेदाङ्गज्योतिषानुकूल रूप में किया है। सुश्रुतसंहिता में भी ऐसी बात है (शारीर.१०।२४)। इसका स्पष्टीकरण डल्हण ने भी लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ में प्रतिपादित व्यवस्था के अनुसार ही किया है। अष्टाङ्गसङ्ग्रह के उत्तरस्थान के प्रथम अध्याय में (श्लो.७८) भी वेदाङ्गज्योतिष की ही अनुकूल बात पाई जाती है। विक्रमसंवत् १७५६ में रचित संस्कारभास्कर ग्रन्थ में (मुम्बई, १९६९) भी कात्यायनसूत्रानुसारी लोगों में वेदाङ्गज्योतिष के अनुकूल नक्षत्रनाम रखने की परम्परा जीवित रहने की बात पाई जाती है (पृ.१२३-१२४)।

३. लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ की माननीयता

इस स्थिति में **"पञ्चसंवत्सरमयम्"** इत्यादि वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ को अपने विषय में प्रामाणिक न मानना चार्वाक जैन बौद्धों की तरह वैदिक मूल परम्परा के प्रति विद्रोह करना अथवा पाखण्डता अपनाना ही होता है। अतः इस ग्रन्थ को ही भारतवर्षीय मूल वैदिक परम्परा का प्रधान ज्योतिषग्रन्थ और श्रौतस्मार्तकृत्य कालगणना में प्रमाण भी मानना ही चाहिए। अन्य ज्योतिषग्रन्थ इस ग्रन्थ के अनुकूल अथवा अविरोधी होने पर ही श्रौत-स्मार्त धर्मकृत्य के काल के निरूपण के लिए प्रमाण माने जा सकते हैं।

४. लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष में प्रतिपादित मुख्य विषय

लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ में पाँच वर्षों का युग, माघशुक्लादि वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, पर्व, विषुवत्तिथि[2], नक्षत्र, अधिमास ये विषय

१. **स्मृतिसन्दर्भ,** षष्ठभाग, मनसुखराय मोर, कोलकाता, २०१३ वै., पृ.२७५-२७६।

२. विषुवद्-दिन कहने से जिस दिन में दिन और रात बराबर होते हैं वह दिन समझा जाता है। ऐसे दिन एक वर्ष में दो होते हैं, ये वासन्तविषुवत् और शारदविषुवत् कहे जाते हैं।

Prof. Amodavardhana Kaundihnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुख्य रूप में प्रतिपादित हैं। श्रौतस्मार्तधर्मकृत्यों में इनकी ही अपेक्षा होने से इस वेदाङ्ग ज्योतिषग्रन्थ में इन विषयों का ही मुख्यतया प्रतिपादन किया गया है।

५. लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष में अप्रतिपादित विषय

बार्हस्पत्य संवत्सरका[1], क्षयमासका, मेष वृष इत्यादि राशियों का, सौर सङ्क्रान्तियों का, आदित्यवार सोमवार इत्यादि वारों का, सूर्य-चन्द्रग्रहणों का, मङ्गल-बुधादि ग्रहों का, बृहस्पति के और शुक्र के उदय और अस्त का भी वेद-मन्त्रों में ब्राह्मणग्रन्थों में, श्रौतसूत्रों में, गृह्यसूत्रों में और धर्मसूत्रों में भी अपेक्षा न होने से लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ में भी इन विषयों का प्रतिपादन नहीं किया गया है।

६. कालगणना में वर्ष के यथार्थ ज्ञान का महत्त्व

वैदिकपरम्परा में संवत्सर का बहूत महत्त्व है। शतपथब्राह्मण में अनेक स्थलों में संवत्सर को प्रजापति बताया गया है[2]। शतपथब्राह्मण में संवत्सर को प्रजापति की प्रतिमा भी कहा गया है (११।१।६।१४)। वैदिक चयनयाग संवत्सर के ही अनुकरण में आधृत दिखाई देता है। अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु सभी संवत्सर में ही आधृत माने गए हैं (१२।८।३।१४)। वेद की इसी मान्यता को ध्यान में रखकर ही ज्योतिषी गर्गाचार्य ने भी संवत्सर का स्वरूप निश्चित होने पर ही अयन, ऋतु, मास, पक्ष, नक्षत्र, तिथि और दिन निश्चित हो सकने की और अयनादि कालों में विहित धर्मकृत्य भी ठीकठीक समय में हो सकने की बात बताई है। उनका वचन है–

अयनान्यृतवो मासाः पक्षास्त्वृक्षं तिथिर् दिनम्।
तत्त्वतो नाऽधिगम्यन्ते यदाऽब्दो नाऽधिगम्यते॥

दिन क्रमशः मार्च २१ तारीख में (आजकल प्रायः निरयण सौर मीनमास के सातवें दिन में) और सेप्टेम्बर २२ तारीख में (आजकल प्रायः निरयण सौर कन्यामास के सातवें दिन में) पडते हैं। ऐसे दिन की तिथि को विषुवत्तिथि कहते हैं।

१. बृहस्पति ग्रह के मेष-वृषादि विभिन्न राशियों में परिभ्रमण के आधार में गिने जाने वाले और धर्मकृत्य में अनावश्यक तथा वर्षफल बताने में उपयोग में आनेवाले प्रभव, विभव इत्यादि साठ संवत्सरों को बार्हस्पत्य संवत्सर कहते हैं।

२. १।५।१।१६, १।६।३।३५, २।३।३।१८, ६।१।३।८, १०।२।६।१, १४।३।३।२२ इत्यादि।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदा तु तत्त्वतोऽब्दस्य क्रियतेऽधिगमो बुधैः।
तदैवैषाममोहः स्यात् क्रियाणां चाऽपि सर्वशः॥

–गर्गवचन, सोमाकरव्याख्या, याजुषवेदाङ्गज्योतिष, श्लो.१०।

इस स्थिति में वैदिक मूल परम्परा के संवत्सर के वास्तविक स्वरूप का विवेचनात्मक ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

७. वैदिक वर्ष और उसका माघशुक्लप्रतिपदा में प्रारम्भ

इस वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ में **"माघशुक्लप्रपन्नस्य"** (श्लो.५) इत्यादि कहकर संवत्सर का माघशुक्लप्रतिपदा में प्रारम्भ और पौषकृष्ण अमावास्या में समाप्ति प्रतिपादित है। वैदिक वर्ष मुसलमानों का वर्ष जैसा शुद्ध चान्द्र वर्ष भी नहीं है, ईसाइयों का वर्ष जैसा शुद्ध सौर वर्ष भी नहीं है, वैदिक वर्ष सौर अयनमान से नियन्त्रित चान्द्र अधिमास से युक्त होने से यह सौरचान्द्र वर्ष है। व्याख्याकार सोमाकर स्पष्ट करते हैं कि वेदों में वसन्तादि ऋतुओं का उल्लेख ब्राह्मण क्षत्रिय इत्यादि वर्णविशेष के यज्ञाद्यनुष्ठानकाल के क्रम को लेकर किया गया है, संवत्सरप्रारम्भनिमित्तक नहीं (श्लो.६)। उक्त माघशुक्लप्रतिपदा का ठीकठीक निर्णय **"घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः"** (श्लो.८) **"उपजायेते मध्ये चाऽन्तेऽधिमासकौ"** (श्लो.३७) इत्यादि वचन के और नेपाल के प्राचीन शिलालेख और ग्रन्थों की भी सहायता से होता है। यह शुक्लप्रतिपदा वास्तविक सौर उदगयनारम्भ (सायन-मकरसङ्क्रान्ति[1]) की प्रायः पूर्ववर्ती और अधिमासयुक्त वर्ष में कभी कभी उत्तरवर्ती भी हो सकनेवाली, दृक्सिद्ध सौर उदगयनारम्भ की (सौर सायन-मकरसङ्क्रान्ति की) आसन्न शुक्लप्रतिपदा है।

बारहवीं शताब्दी के कृत्यकल्पतरुकार लक्ष्मीधर, चौदहवीं शताब्दी के चतुर्वर्गचिन्तामणिकार हेमाद्रि और सत्रहवीं शताब्दी के निर्णयसिन्धुकार

१. आजकल के पञ्चाङ्गों में अयनचलन में ध्यान नदेकर सूर्य उत्तराषाढा नक्षत्र के तीसरे पाद में (मकर राशि में) जाने पर मकरसङ्क्रान्ति और उत्तरायणारम्भ लिखते हैं। किन्तु अयनबिन्दु के चलन से आजकल अयनबिन्दु मूल के तीसरे पाद में आगया है, और मूल के तीसरे पाद में सूर्य पहुँचने पर ही वास्तविक रूप में सूर्य के उदगयन का प्रारम्भ होता है, और उसी समय में सायन-मकरसङ्क्रान्ति मानी जाती है। यह सङ्क्रान्ति डिसेम्बर २२ या २१ तारीख में पडती है। अतः आजकल निरयण मकरसङ्क्रान्ति से करीब २४ दिन पहले ही सायन मकरसङ्क्रान्ति होती है। अन्य सङ्क्रान्तियों में भी निरयण सङ्क्रान्तियों में और सायन सङ्क्रान्तियों में ऐसा ही फर्क पडता है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कमलाकर भट्ट इत्यादि से ब्रह्मपुराण के वचन के रूप में उल्लिखित **"चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि"** इत्यादि वचन खेमराज श्रीकृष्णदास से मुद्रित एवं प्रचारित उपलभ्यमान ब्रह्मपुराण में नहीं मिलता है। अतः उन लोगों का प्रतिपादन अप्रामाणिक ठहरता है। ब्रह्माण्डपुराण (पूर्वभाग २४।१४१, १४२), लिङ्गपुराण (१।६१।५२-५४) और वायुपुराण (१।५३।११३, ११४) में भी वर्तमान **"वर्षाणामपि पञ्चानामाद्यः संवत्सरः स्मृतः। ऋतूनां शिशिरश्चाऽपि मासानां माघ एव च। पक्षाणां शुक्लपक्षश्च तिथीनाम् प्रतिपत् तथा। अहोरात्रविभागानामहश्चाऽपि प्रकीर्तितम्"** इस वेद-वेदाङ्ग-महाभारताद्यनुकूल प्रामाणिक पुराणवचन का प्रतिकूल अथवा विरुद्ध होने से भी **"चैत्रे मासि"** इत्यादि वचन निर्मूल वा प्रक्षिप्त वा अप्रमाण ठहरता है। सुश्रुतसंहिता का निस्सन्दिग्ध प्राचीन **"तत्र माघादयो द्वादश मासाः संवत्सरः"** (१।१।६) यह वचन और महाभारत का **"ऋतवः शिशिरादयः"** (आश्वमेधिकपर्व ४४।२) यह वचन भी **"चैत्रे मासि"** इत्यादि वचन को अप्रमाण सिद्ध करते ही हैं।

चैत्रशुक्लादि संवत्सर मानने की बात यावनादि ज्योतिष से प्रभावित होकर ग्रन्थप्रणयन करनेवाले और **"युग-वर्ष-मास-दिवसाः समं प्रवृत्तास् तु चैत्र-शुक्लादेः"** इत्यादि[1] कहनेवाले अर्वाचीन ज्योतिषियों की ही है, मूल वैदिक परम्परा की नहीं। यह बात नवम शताब्दी के कवि राजशेखर की काव्यमीमांसा के **"षण्णामृतूनां परिवर्तः संवत्सरः, स च चैत्रादिरिति दैवज्ञाः"** (अध्याय १८) इस कथन से भी व्यक्त होती है। यहाँ कवि राजशेखर का **"दैवज्ञाः"** यह साभिप्राय शब्द अवैदिक फलादेशपरायण ज्योतिषियों की ओर सङ्केत कर रहा है।

८. उत्तरायण के प्रारम्भ के साथ वैदिकवर्ष का प्रारम्भ

जैसे चान्द्र मास दो पक्षों का माना जाता है वैसे ही वर्ष भी दो अयनों का माना जाता है। यह बात वेदाङ्गज्योतिष में **"अब्दः षट् चर्तवोऽयने"** (श्लो.२८) कहकर बताई गई है। यही बात कौटलीय अर्थशास्त्र में **"द्व्ययनः संवत्सरः"** (२।२०) कहकर और सुश्रुतसंहिता में **"अयने द्वे युगपत् संवत्सरः"** (१।६।९) कह कर बताई गई है। पुराणों में और अन्य ग्रन्थों में भी यही बात प्रतिपादित है। **"वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे"** (कूर्मपु. १।५।६, मार्कण्डेयपु.४३।२५, विष्णुपु.१।३।१०), **"तद्द्वयेन भवेदब्दः"** (नारदीयपु.१।५।२५), **"वर्षमयने दक्षिणोत्तरे"** (पद्मपु.सृष्टि.३।६), **"अब्दस्तु चाऽयने द्वे वै"** (ब्रह्मवैवर्तपु.कृष्णजन्म.

---

१. **आर्यभटीय,** कालक्रियापाद, श्लो.११; **ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त** १।४।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

९६।६२), **"दिव्ये रात्र्यहनी वर्षम्"** (ब्रह्माण्डपु.पूर्वभाग २९।१३, मत्स्य.१४२।१०, वायुपु. १।५७।१३), **"द्वेऽयने वर्षमुच्यते"** (वायुपु.१।५०।१७७), **"द्वेऽयने वर्षसंज्ञिते"** (विष्णुपु. २।८।७०), **"वर्षं द्वे चाऽयने मतम्"** (शिवपु.७।१।८।७), **"वत्सरो भवेत्। अयनद्वितयाकारः"** (स्कन्दपु.वैष्णव.१।३६।३१), **"अब्दं द्वे अयने स्मृतम्"** (स्कन्दपु.आवन्त्य.१।४८।११), **"अयने द्वे तु वत्सरम्"** (स्कन्दपु.नागर.१९४।१४, २७२।७), **"वर्षं स्यादयनद्वये"** (स्कन्दपु.प्रभास.१।१९।१२), **"अब्दं स्यादयनद्वयात्"** (स्कन्दपु.प्रभास. १।१०५।३६), **"द्वेऽयने वर्षम्"** (स्कन्दपु.सूतसंहिता १।८।६), **"संवत्सरं द्वे त्वयने वदन्ति"** (शान्तिपर्व २३१।१४), **"अब्दं द्व्ययनमुक्तं च"** (हरिवंश १।८।६), **"अयने द्वे गतिरुदग् दक्षिणार्कस्य वत्सरः"** (अमरकोष, कालवर्ग, श्लो.१०), **"द्व्ययनः संवत्सरः"** (काव्यमीमांसा, अध्याय १८), **"अयनद्वयं वत्सरो भवति"** (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद्, तृतीय अध्याय) इत्यादि वचनों से अनेक स्थलों में दो अयनों का एक वर्ष होने की बात बताई गई है।

उक्त वस्तुस्थिति से यह बात स्पष्ट होती है कि अयन का और संवत्सर का एक साथ ही प्रारम्भ होने की बात मानी जानी चाहिए। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि वैदिक धार्मिक परम्परा में अयन भी वर्ष की तरह सौरचान्द्र ही होता है।

श्रौत-स्मार्त-पौराण-परम्परा में महाकल्प, कल्प, मन्वन्तर, महायुग, युग इत्यादि का प्रतिपादन दिव्य मान के आधार में किया गया है[1]। यह बात पुराणों में **"दिव्येनैव प्रमाणेन युगसङ्ख्याप्रकल्पनम्"** इत्यादि रूप में[2] कण्ठरव से ही बताई गई है। यही सिद्धान्त निरुक्तादि ग्रन्थों में है। निरुक्तपरिशिष्ट में (२।४) **"तदेतदहर् युगसहस्रम्", "युगसहस्रं रात्रिः"** कहकर प्रथम दिव्ययुगसहस्र को ब्रह्मा का दिन और दूसरे को रात बताया गया है। ऐसी ही बात बृहद्देवता में (८।९८), मनुस्मृति में (१।७२), महाभारत में[3] और हरिवंश में (१।८।२२-२३, ३।८।२०) भी है। ऐसी ही बात पुराणों के कालमान-विवरणों में भी प्राप्त होती है।

मानुषवर्ष की परिभाषा भी मनुस्मृति में **"दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस् तयोः पुनः। अहस् तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद् दक्षिणायनम्"** (१।६७) कहकर दिव्यमान के ही आधार पर बताई गई है। ऐसी ही बात ब्रह्माण्डपुराण में (पूर्वभाग २९।१३-१४),

---

१. मनुस्मृति १।६८-७३; महाभारत वनपर्व १८८।२२-२६; महाभारत शान्तिपर्व २३१।१६-३१; भागवत ३।११।१८-२०,२२-२४।

२. ब्रह्माण्डपुराण पूर्वभाग २९।२२; मत्स्यपुराण १४२।१६; लिङ्गपुराण १।४।२४; वायुपुराण १।५७।२१; शिवपुराण ७।१।८।११।

३. वनपर्व १८८।२८; भीष्मपर्व ३२।१७ (गीता ८।१७); शान्तिपर्व ३४९।५१,५२।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मत्स्यपुराण में (१४२।१०), लिङ्गपुराण में (१।४।१५-१६), वायुपुराण में (१।५७।१३) और महाभारत में (शान्तिपर्व २३१।१७) भी पाई जाती है। मानुषवर्ष को दैव अहोरात्र से अभिन्न मानने की बात तैत्तिरीयब्राह्मण (३।९।२२।१) के **"एकं वा एतद् देवानामहः यत् संवत्सरः"** इस वचन में भी है।

उक्त शास्त्रीय वस्तुस्थिति से कालगणना के श्रौत-स्मार्त-पौराण परम्परा में दिव्यमान में और मानुषमान में सामञ्जस्य अत्यावश्यक अवगत होता है।

इस स्थिति में दिव्य अहोरात्र का उदगयनारम्भ से प्रारम्भ होने से मानुषवर्ष का आरम्भ भी उदगयनारम्भ से ही मानना मूल वैदिक परम्परा का सम्मत कार्य है। दिव्य अहोरात्र का उदगयनारम्भ से आरम्भ होने की बात **"अहस् तत्रोदगयनम्"** (मनु.१।६७) **"यदुत्तरायणं तदहर् देवानाम्"** (विष्णुधर्मसूत्र २०।१) इत्यादि वचनों से स्पष्ट होती है। ऐसे वचन पुराणादि ग्रन्थों में भी अनेक स्थलों में **"अयनं दक्षिणं रात्रिर् देवानामुत्तरं दिनम्"** (कूर्मपुराण १।५।९, पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ३।७, विष्णुपुराण १।३।१०), **"उत्तरं दिवसं प्राहू रात्रिर् वै दक्षिणायनम्"** (नारदीयपुराण १।५।२५), **"अहस् तत्रोदगयनम्"** (ब्रह्माण्डपुराण, पूर्वभाग २९।१४, भविष्यपुराण १।२।९२, लिङ्गपुराण १।४।१६, वायुपुराण १।५७।१३, स्कन्दपुराण १।२।२९।५४), **"अहस्तु यदुदक् चैव रात्रिर् या दक्षिणायनम्"** (मत्स्यपुराण १४२।१०), **"दिनं तत्रोत्तरायणम्"** (मार्कण्डेयपुराण ४३।२५), **"तथोदगयनं दिनम्"** (शिवपुराण ७।१।८।८), **"दिवा चैवोत्तरायणम्"** (स्कन्दपुराण ५।१।४८।१५, स्कन्दपुराण, सूतसंहिता १।८।६, हरिवंश १।८।९), **"अयनं चोत्तरं शुक्लं यद् देवानां दिनं तु तत्"** (स्कन्दपुराण ६।२७२।८), **"अहस् तत्रोदगयनम्"** (शान्तिपर्व २३१।१७) इत्यादि रूप में उपलब्ध होते हैं।

शतपथब्राह्मण (६।७।४।७) में प्रजापति से पहले दिन की और बाद में रात्रि की और पहले शुक्लपक्ष की और बाद में कृष्णपक्ष की सृष्टि की जाने की बात बताई गई है। पुराणों में भी **"अहोरात्रविभागानामहश्चाऽपि (आद्यम्) प्रकीर्तितम्"**[1] ऐसा उल्लेख मिलता है। महाभारत में भी **"अहः पूर्वं ततो रात्रिर् मासाः शुक्लादयः स्मृताः"** (आश्वमेधिक पर्व ४४।२) यह वचन मिलता है। इससे सृष्टिक्रम में पहले दिन की सृष्टि प्रमाणित होती है। इसी न्याय से दिव्यदिनरूप उत्तरायण की सृष्टि पहले और बाद में दक्षिणायन की सृष्टि होने की बात भी सिद्ध होती है।

---

१. **ब्रह्माण्डपुराण, पूर्वभाग २४।१४२; लिङ्गपुराण १।६१।५४; वायुपुराण १।५३।११४।**

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उक्त शास्त्रीय वस्तुस्थिति में संवत्सर में उदगयन का ही प्रथम स्थान मानना आवश्यक हो जाता है। इसी से संवत्सर का आरम्भ भी सौरचान्द्र उदगयन[1] के आरम्भ से ही मानना परमावश्यक हो जाता है। इससे अर्वाचीन काल के ज्योतिषग्रन्थों की, प्रचलित पञ्चाङ्गों की और लौकिक जनों की उत्तरायण का प्रारम्भ माघ (मकरसङ्क्रान्ति) से मानकर भी संवत्सर का प्रारम्भ तो चैत्रशुक्ल-प्रतिपदा से अथवा पञ्जाबियों की और बङ्गालियों की तरह मेषसङ्क्रान्ति से मानने की प्रथा सर्वथा श्रुति-स्मृति-पुराण-प्रतिकूल होने से अवैदिक और अनुचित सिद्ध होती है।

यदि चैत्र से संवत्सरारम्भ को श्रुति-स्मृति-पुराणसम्मत और उचित सिद्ध करने के लिए उत्तरायणारम्भ भी चैत्र से ही माना जाय, सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय के वचनों को ध्यान में रखकर सूर्य के उत्तरगोलावलम्बन[2] को ही उत्तरायण माना जाय तो हमारे अत्यन्त प्राचीन और अतिमान्य अनेक ग्रन्थों के उल्लेखों का और माघादि उत्तरायण मानकर धार्मिक कृत्य करने की वर्तमान काल में भी प्रचलित परम्परा का भी विरोध हो जाएगा।

माघ से उदगयन का प्रारम्भ होने की बात अत्यन्त प्राचीन और अतिमान्य अनेक ग्रन्थों के **"मघाद्यं श्रविष्ठार्धमाग्नेयम्"** (मैत्रायणीयारण्यक ६।१४), **"माघमासे धनिष्ठाभिरुत्तरेणैति भानुमान्"** (बौधायनश्रौतसूत्र २६।२९), **"स्यात् तदादियुगं माघस् तपःशुक्लोऽयनं ह्युदक्"** (वेदाङ्गज्योतिष, श्लो.६), **"प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्। सार्पार्धे दक्षिणाऽर्कस् तु माघश्रावणयोः सदा"** (वेदाङ्गज्योतिष, श्लो.७), **"शिशिराद्युत्तरायणम्"** (कौटलीय अर्थशास्त्र २।२०), **"शिशिरवसन्तावुदगयनस्थौ"** (पाणिनीयव्याकरणभाष्य २।२।३४, वा.३), **"तत्राऽऽदित्यस्योदगयनमादानं च त्रीनृतूञ् छिशिरादीन् ग्रीष्मान्तान् व्यवस्येत्"** (चरकसंहिता १।६।४), **"चन्द्रादित्ययोः कालविभागकरत्वादयने द्वे भवतो दक्षिणमुत्तरं च, तयोर् दक्षिणं वर्षाशरद्धेमन्ताः, उत्तरं च शिशिरवसन्तग्रीष्माः"** (सुश्रुतसंहिता १।६।७), **"उत्तरायणमप्युक्तं मकरस्थे दिवाकरे"** (विष्णुपुराण २।८।६८), **"तदुत्तरायणे कार्यं माघादिष्वेव केवलम्। मुख्येषु**

---

१. सूर्य के उदगयन से कभी भी दूरविप्रकर्ष (वहुत फर्क) न होने वाले शिशिरादि तीन चान्द्र ऋतुओं का समूह सौर-चान्द्र उदगयन (उत्तरायण) कहा जाता है।

२. सूर्य का विषुवरेखा से उत्तर में रहना सूर्य का उत्तरगोलावलम्बन है, और सूर्य का विषुवरेखा से दक्षिण में रहना सूर्य का दक्षिणगोलावलम्बन है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुर्याद् गौणेषु न कदा चन तां क्रियाम्" (लौगाक्षिस्मृति, स्मृतिसन्दर्भ-६, पृ.२४४), **"तपस्-तपस्यौ मधु-माधवौ च शुक्रः शुचिश्चाऽयनमुत्तरं स्यात्"** (ब्रह्माण्डपुराण १।२१।१५१, वायुपुराण १।५०।२०१, विष्णुपुराण २।८।८१) इत्यादि वचनों में स्पष्ट है।

उक्त शास्त्रीय वस्तुस्थिति में वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के उल्लेखों[1] को और विष्णुधर्मोत्तरपुराण के वचन को (१।७३।१२) और उसी के पाश्चात्यशब्दावलि से भरे पडे होने से प्रक्षिप्तत्व की आशङ्का से आक्रान्त अध्याय (२।१६७) के बाद के उल्लेखों को मान्यता देकर वैदिक परम्परा के आस्तिक लोग सूर्य के उत्तर-गोलावलम्बन को ही देवता का दिन मानकर उदगयन नहीं मान सकते हैं। वैदिक-पौराणिक-परम्परा में उदगयन ही देवताओं का दिन है, उत्तरगोलावलम्बन नहीं। वेद-वेदाङ्ग-स्मृति के विरुद्ध बात को श्रौत-स्मार्त-पौराण-धर्म में प्रमाण नहीं माना जा सकता है। सूर्यसिद्धान्त की बात का समर्थन करने का प्रयास करनेवाली भास्कर की व्याख्या[2] भी श्रुतिस्मृतिपुराणविरुद्ध ही है।

९. प्रचलित सूर्यसिद्धान्तग्रन्थ वेदाङ्ग नहीं है

यद्यपि वर्तमान काल में प्रचलित सूर्यसिद्धान्त अपने वेदाङ्गत्व का दावा करता है (मध्यमाधिकार, श्लो.३), तथापि वैदिक यज्ञादि के लिए आवश्यक[3] संवत्सर-परिवत्सरादि पञ्चवर्षात्मक वैदिक युग का कोई उल्लेख इस सूर्य-सिद्धान्त में न होने से, संवत्सर-परिवत्सरादि वर्षज्ञान के लिए कोई करणसूत्र इस ग्रन्थ में प्राप्त न होने से, वैदिक चान्द्र प्रभवादि वत्सर[4] जानने का उपाय भी इस ग्रन्थ में उपदिष्ट न होने से, वैदिक चान्द्र ऋतुओं का भी इसमें उल्लेख न होने से और केवल राशिपरक सौर ऋतुओं का ही इसमें उल्लेख होने से (मानाध्याय,

---

१. भूगोलाध्याय, श्लो. ४, ४५, ४८, ४९, ५०, ६३, ६४, ६७।

२. सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय, त्रिप्रश्नवासना, श्लो.८-१२।

३. द्रष्टव्य– **लौगाक्षिस्मृति**, स्मृतिसन्दर्भ षष्ठभाग, पृ.३७७; **मार्कण्डेयस्मृति**, स्मृतिसन्दर्भ षष्ठ भाग, पृ.१३४; **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** ३।१५३।१-९; **चतुर्वर्गचिन्तामणि (हेमाद्रि)** दानखण्ड, पृ.८९०; **कालमाधव**, पृ.३५।

४. सदा ही वैदिक चान्द्र संवत्सर-परिवत्सरादि वर्षों के साथ में ही प्रारम्भ होकर साथ में ही समाप्त होने वाले प्रभवादि संवत्सर चान्द्र संवत्सर माने जाते हैं। इनका प्रतिपादन गार्ग्यवचन से निर्णयसिन्धु के प्रारम्भ में भी किया गया है। इन चान्द्र वत्सरों का विवरण इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट में समाविष्ट **"वैदिककालज्ञान"** प्रकरण में देखें।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लो.१०), इसमें वैदिक मूल परम्परा के अनुकूल सूर्योदयकालपरिच्छिन्न अहर्गण[1] का उल्लेख न होकर अर्धरात्रपरिच्छिन्न अहर्गण लाने की रीति वर्णित होने से (मध्यमाधिकार, श्लो.५०), वारप्रवृत्ति भी मध्यरात्रि से होने की बात वर्णित होने से (मध्यमाधिकार, श्लो.६६), वैदिक धार्मिक परम्परा में वर्ष अयन ऋतु मास सभी चान्द्र ही प्रधान होने पर भी इस सूर्यसिद्धान्त में सौर वर्षादि का ही प्राधान्य देखे जाने से (मानाध्याय, श्लो.९,१०), **"युता मासैर् मधुशुक्लादिभिर् गतैः"** (मध्यमाधिकार, श्लो.४८), **"द्विराशिनाथा ऋतवस् ततोऽपि शिशिरादयः"** (मानाध्याय, श्लो.१०), **"मेषादयो द्वादशैते मासास् तैरेव वत्सरः"** (मानाध्याय, श्लो.१०) इन वचनों में इस सूर्यसिद्धान्त में वत्सरारम्भ के विषय में भ्रम पैदा कर सकनेवाले उल्लेख भी पाए जाने से, इस ग्रन्थ का करणनामक्रम (स्पष्टाधिकार, श्लो.६७) वैदिक परम्परा के करणनामक्रम से (आथर्वणज्योतिष, करणप्रकरण, श्लो.६,७,९,११) भिन्न और वैदिकों को अमान्य होने से, इस ग्रन्थ में ब्रह्म को वासुदेव कहनेवाले (द्रष्टव्य– भागवत ९।९।४९) और यवनों का भी परिग्रह करनेवाले[2] सात्त्वत वैष्णवों के सम्प्रदाय के वासुदेव-सङ्कर्षण-अनिरुद्धों का विशिष्ट उल्लेख (भूगोलाध्याय, श्लो.१२-१४) देखे जाने से और इस सूर्यसिद्धान्त को मयाऽसुर से अधिगत और ऋषियों में प्रचारित कहे जाने से (मध्यमाधिकार, श्लो.२,४,७; मानाध्याय, श्लो.२४-२६) भी यह ग्रन्थ मूल वैदिक परम्परा से बाहर का ग्रन्थ अवगत होता है। इस वस्तुस्थिति में प्रचलित सूर्यसिद्धान्त में वेदाङ्गज्योतिष का कार्य अधिक स्पष्ट रहने की बात करना आत्मवञ्चना वा लोकवञ्चना के सिवाय और कुछ नहीं दिखाई देता है। अतः श्रुति-स्मृति-पुराण के अनुयायियों को वेदाङ्गज्योतिष की कालगणनापद्धति का ही अवलम्बन करना चाहिए सूर्यसिद्धान्त की पद्धति का नहीं।

१०. प्रचलित सूर्यसिद्धान्तग्रन्थ के विषय में भ्रम

वेदमन्त्रसंहिता–ब्राह्मणग्रन्थ–श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्र-धर्मसूत्र-लगधप्रोक्तवेदाङ्गज्योतिषादि ग्रन्थों का और उनके इतिहास का पर्यालोचनात्मक गम्भीर ज्ञान से

१. सूर्योदयकाल में प्रारम्भ होनेवाले दिनों (अहोरात्रों) का समूह सूर्योदयकालपरिच्छिन्न अहर्गण है, और आधी रात में प्रारम्भ होनेवाले दिनों का समूह अर्धरात्रपरिच्छिन्न अहर्गण है।

२. द्रष्टव्य– यवनदूत हेलियोदोरस का २००० वर्षों से भी ज्यादा पुराना मध्यप्रदेश के भिलसा जिले के बेसनगरग्राम का गरुडस्तम्भलेख (**भारतीय अभिलेख, एस. एस. राणा**, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, १९७८ कै., पृ.६१)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहित कुछ भोलेभाले लोग वर्तमान सूर्यसिद्धान्तग्रन्थ को 'वेद' ही मानते हैं। वे सूर्य-सिद्धान्त के पीछे दौडने से वैदिक परम्परा के अष्टका-उपनयन-विवाह-अग्न्याधान-निरूढपशुबन्ध-सोमयागादि के लिए आवश्यक वैदिक हेमन्त-शिशिर-वसन्तादि ऋतुओं का, अयनमुखों का, माघादिमासों का, तत्तत् मास के पक्षों का और तिथियों का ही ठीक-ठीक ज्ञान न हो सकने की स्थिति में पहुँच जाने पर भी इस वस्तुस्थिति की चेतना को ही गँवाकर छोटे-मोटे पौराणिक तिथिकृत्य की तिथि के निर्णय के अमौलिक और अप्रामाणिक वचनों के विचार में ही उलझ रहे प्रतीत होते हैं। ये लोग **"येनाऽस्य पितरो याताः"** इत्यादि मनुस्मृतिवचन का तात्पर्य मेधातिथि-कुल्लूकभट्टादिव्याख्यानुसार भी स्वशाखाश्रुति-सूत्रादिशास्त्रानुकूल परम्परा की ही अनुसरणीयता के प्रतिपादन में रहने की बात को समझे विना भ्रमप्रमादाऽज्ञानादिमूलक परम्पराको भी अनुसरणीय और अत्याज्य मान कर बैठे हुए भी मालूम होते हैं। यह इन लोगों का बहुत ही बडा अज्ञान अथवा प्रमाद है। इस स्थिति से विवेक और सावधानी से मुक्त हो जाना चाहिए।

११. श्रौत-स्मार्त-धर्मकृत्यों में चान्द्रसंवत्सर और चान्द्र ऋतु की ग्राह्यता

सौ-पचास सालों से चले आ रहे काशी के महावीरपञ्चाङ्ग-धर्मसङ्घ-पञ्चाङ्गादि पञ्चाङ्गों के कर्ता और प्रयोक्ता लोगों में भी उपर्युक्त भ्रम की ही स्थिति देखी जा रही है। ये लोग श्रौत-स्मार्त धर्मकृत्य के सङ्कल्प के लिए **"स्मरेत् सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संवत्सरं सदा"**[1] इत्यादि वचनानुसार आवश्यक चान्द्र संवत्सर का पञ्चाङ्ग में कोई उल्लेख नहीं कर रहे हैं। वे बार्हस्पत्य संवत्सर का ही उल्लेख करते हैं । स्यात् उनको चान्द्र और बार्हस्पत्य संवत्सर का भेद[2] ही मालूम नहीं। **"श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वाः कुर्याच् चान्द्रमसर्तुषु"** (निर्णयसिन्धु, ऋतुनिर्णयप्रकरण) इत्यादि वचनानुसार भी श्रौतस्मार्तधर्मकृत्य के लिए प्रथमकल्प के रूप में आवश्यक चान्द्र ऋतुओं का भी मानों इनको ज्ञान ही नहीं है। श्रौत-स्मार्त धर्म-कृत्यों में चान्द्रमान की ही ग्राह्यता के विषय में सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय की अनुसन्धानपत्रिका सारस्वती सुषमा में (वर्ष ५१, अङ्क १-४) प्रमोदवर्धन

---

१. आर्ष्टिषेणवचन, **निर्णयसिन्धु**, अब्दनिर्णयप्रकरण (द्रष्टव्य– धर्मसिन्धु का प्रारम्भभाग)।

२. चान्द्र संवत्सर वैदिक संवत्सर-परिवत्सरादि से अभिन्न रूप में सदाकाल तपश्शुक्ल-प्रतिपदा में (माघशुक्लप्रतिपदा में) ही प्रवृत्त होते हैं। इन का कभी भी क्षय नहीं होता है। बार्हस्पत्य संवत्सर बृहस्पति के राशियों में परिभ्रमण के आधार में विभिन्न समयों में प्रवृत्त होते हैं और प्रायः ८५ सौर वर्षों में एक बार्हस्पत्य संवत्सर का क्षय होता है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कौण्डिन्न्यायन का **"जैमिनीय-धर्ममीमांसाशास्त्र-निर्णीतानां वैदिककृत्यकालानां चान्द्रमाननियतत्वम्"** शीर्षक का विशिष्ट लेख भी स्वाद्ध्यायशाला की ओर से प्रकाशित है। ये लोग पञ्चाङ्गों में केवल आनुकल्पिक गौण सौर ऋतु (उसमें भी निरयण-मकरमासादिमासद्वयात्मक अवास्तव सौर ऋतु) लिखते हैं। इनके चान्द्र मास भी ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के विज्ञ और अनुयायी द्विजाति के सम्मत अमान्त रूप के नहीं हैं, पूर्णिमान्त हैं। वेदमन्त्रोक्त चान्द्र मास **"मधुश् च माधवश् च वासन्तिकावृतू"** (शु.य.वे.१३।२५, १४।६, १४।१५, १४।१६, १४।२७, १५।५७; तै.सं.४।४।११।११) इत्यादि मन्त्रप्रमाण से और **"मन्त्रचोदनयोर् मन्त्रबलम् प्रयोगित्वात्"** (कात्यायनश्रौतसूत्र १।५।७) इत्यादि वचनों से ऋतुबद्ध सिद्ध होते हैं; नक्षत्रबद्ध नहीं; इस वस्तुस्थिति में पाणिनि का **"साऽस्मिन् पौर्णमासीति"** (अष्टाध्यायी ४।२।२१) इत्यादि निर्वचन शब्दरूपज्ञान में और स्वरज्ञान में ही उपयोगी ठहरते हैं। ऐसी बात को वैदिकधर्ममीमांसकशिरोमणि कुमारिलभट्ट ने भी **"यत्रार्थस्य विसंवादः प्रत्यक्षेणोपलभ्यते। स्वरसंस्कारमात्रार्था तत्र व्याकरणस्मृतिः"** (तन्त्रवार्तिक २।१।१७, आनन्दाश्रमसस्करण, पृ.४००) कहकर सूचित किया है। पौर्णमासियों में एकमात्र नक्षत्र से चन्द्र का योग नहीं माने जाने से भी यह बात स्पष्ट होती है। इस विषय में भी इन आधुनिक सूर्यसिद्धन्तादिमूलक पञ्चाङ्गवालों को गाढ भ्रम हुआ है। इनको चैत्रकृष्णपक्ष व्यतीत होने पर मास के मध्य से चैत्रशुक्लप्रतिपदा में नववत्सरारम्भ लिखने में भी कोई असामञ्जस्य का अथवा लज्जा का अनुभव नहीं होता है। प्रचलित पञ्चाङ्गों की ये सब बातें वैदिक मूल परम्परा की सर्वथा प्रतिकूल और नित्यस्वाध्यायाध्ययन में पढे जानेवाले वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ की विरुद्ध हैं। अतः प्रचलित पञ्चाङ्गों की ये सब बातें मनुस्मृति के **"सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः"** (४।१७) इस वचन के विचार से भी सर्वथा त्याज्य ठहरती हैं। भारतवर्ष के विद्वानों को इस विषय में विशेष ध्यान देना चाहिए ।

१२. अर्वाचीन काल में लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ का अनुशीलन

इन सब बातों से लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष ग्रन्थ का महत्त्व भलीभाँती स्पष्ट हो जाता है। इस ग्रन्थ का पाठ वैदिक ब्राह्मण करते आ रहे थे। वैदिक वाङ्मय के ग्रन्थकार लोग भी इसका उल्लेख और कुछ उद्धरण भी करते आ रहे थे। किन्तु इस ग्रन्थ की कालगणनापद्धति की और सूर्यसिद्धान्तादि अर्वाचीन ज्योतिषग्रन्थ की कालगणनापद्धति की विवेचना करने में उनका ध्यान नहीं जाता

Prof. Amodavardhana Kaundinhyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

था। इस ग्रन्थ की चर्चा अर्वाचीन काल में पाश्चात्त्य संस्कृतविद् कोलब्रूक, म्याक्समूलर, याकोबि, व़ेबेर, थिबो इत्यादि लोगों ने की है। भारतीय लोगों में कृष्णशास्त्री गोडबोले, जनार्दन बालाजी मोडक, शङ्कर-बालकृष्ण-दीक्षित, लाला छोटेलाल (बार्हस्पत्य), सुधाकर द्विवेदी, बालगङ्गाधर तिलक, योगेशचन्द्र राय, शामशास्त्री, गोरखप्रसाद, सत्यप्रकाश इत्यादि लोगों ने भी इस ग्रन्थ की चर्चा की है। इस ग्रन्थ का वर्तमान काल में भी वैदिक धर्म के अग्न्याधान-दर्शपूर्णमासादि यज्ञों में और नामकरण-उपनयन-विवाहादि संस्कारों में अपेक्षित कालज्ञान के उपयोगी साधन के रूप में प्रयोग हो सकने के विषय में उन लोगों ने सम्यक् विचार नहीं किया है। गीताप्रेस की कल्याण पत्रिका की हिन्दूसंस्कृति अङ्क में (२००६ संवत्) तो इस ग्रन्थ की महत्ता को समुचित रूप में समझे विना पण्डित इन्द्रनारायण द्विवेदी ने "हिन्दू ज्योतिर्विज्ञान अथवा भारतीय ज्योतिःशास्त्र" शीर्षक के लेख में 'वेदाङ्गज्यौतिष और हमारे सिद्धान्तज्यौतिष' नाम के प्रकरण में (पृ.७४९) "इतना ही नहीं, आर्च और याजुष ज्यौतिषको ध्यानपूर्वक पढनेसे विदित होता है कि इनकी रचनाके समयमें हमारे सिद्धान्तज्योतिषकी सूक्ष्म गणना प्रचलित थी और गणितानभिज्ञ वैदिकोंके लिए ही ज्योतिर्विदोंने स्थूल रीतिसे दर्शपूर्णमास और विषुवायन तथा तिथिनक्षत्रादिके जाननेके लिए चुटकुले बना दिए थे, जिनको आजके इतिहासज्ञ वेदाङ्गके नाम से अत्यधिक महत्त्व दे रहे हैं। वस्तुतः वे हमारे मूल ज्योतिःसिद्धान्तके पश्चात् बनाए गए हैं।" इत्यादि लिखा है। इन्द्रनारायण द्विवेदी का यह विचार सर्वथा भ्रान्त है।

वाराणसी के सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय की अनुसन्धानपत्रिका **सारस्वती सुषमा** में (५० वर्ष, ३-४ अङ्क, मार्गशीर्ष-फाल्गुनपूर्णिमा, वि.सं. २०५२) हमारा **"वेदाङ्गज्योतिषं युगवर्षायनर्तुमासाधिमासादिगणना च"** नाम का निबन्ध और वाराणसी के ही **सन्मार्ग** (दैनिक) में (१९९८-४-१,२) हमारा **"लगध-प्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष और नववर्षारम्भ"** नाम का लेख प्रकाशित होने के बाद इधर लोगों में वेदाङ्गज्योतिष के विषय में जिज्ञासा बढी है और कुछ ग्रन्थ पुनर्-मुद्रित, सम्पादित और विरचित भी हुए हैं। किन्तु उनमें नई व्याख्या कम ही है।

हमने वेदाङ्गज्योतिष ग्रन्थ का वर्तमान काल में भी वैदिक धर्म के अग्न्याधान-दर्शपूर्णमासादि यज्ञों में और नामकरण-उपनयन-विवाहादि संस्कारों में अपेक्षित कालज्ञान के उपयोगी साधन के रूप में प्रयोग हो सकने के विषय में सम्यक् विचार करके व्याख्या की है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१३. स्वाद्ध्यायशाला में लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ का विशिष्ट अध्ययन

नेपाल के सम्प्रशासनकेन्द्र काठमाण्डू में वर्तमान वेद-वेदाङ्गों के अध्ययन के एक विलक्षण गुरुकुल के रूप में वर्तमान हमारी स्वाध्यायशाला में वेद-वेदाङ्गादि शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया जा रहा है। वेदाङ्गों में शिक्षा-वेदाङ्ग का आलोडन करके ५००० वर्षों के संस्कृत वाङ्मय के इतिहास में शिक्षा-वेदाङ्ग का अद्वितीय सर्वापूर्ण विशालकाय (सव्याख्य ११५८ श्लोकोंवाला ८९६ पृष्ठों का) संस्कृतग्रन्थ **कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा** विरचित और प्रकाशित किया गया है (२०४९ वै.)। कल्प-वेदाङ्ग के क्षेत्र में माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-शाखाध्यायियों की प्रचलित नित्यसदाचारकर्म-संस्कारकर्म-श्राद्धकर्मादि की पद्धतियों की अस्तव्यस्तता के निराकरण का मार्ग दिखाने के लिए आवश्यक उपोद्घात और प्रमाणपुष्ट टिप्पणियाँ देकर **वैदिक-मन्त्रसङ्ग्रह** प्रकाशित किया गया है (२०५२ वै.)। ये ग्रन्थ दिल्ली में राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थान के और लालबहादुरशास्त्री-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठ के पुस्तकालय में, प्रयाग में गङ्गानाथझा-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठ में, वाराणसी में गोयन्कापुस्तकालय में और विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में तथा कोलकाता में भारतीयभाषापरिषद् के पुस्तकालय में भी उपलब्ध हैं। व्याकरण में पाणिनीय व्याकरण का पूरण और परिष्कार तथा व्याख्यान किया जा रहा है। निरुक्तक्षेत्र में लगभग ६००० श्लोकों का **वेदभाषानिघण्टु (कौण्डिन्न्यायनकोष)** बनाया जा रहा है, और उसका भूलोककाण्डान्तर्गत देववर्ग-ब्रह्मवर्ग-सम्मिलित निदर्शनांश प्रकाशित भी किया गया है (२०५० वै.)। इस प्रकार स्वाद्ध्यायशाला में किए गए वेद के मन्त्रसंहिता, ब्राह्मणग्रन्थ, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र इत्यादि कल्पशास्त्र, शिक्षाव्याकरणादिवेदाङ्ग, वेदाङ्गज्योतिष और स्मृतिपुराणादि ग्रन्थों के अध्ययन-मनन के परिणामस्वरूप हम इस निष्कर्ष में पहुचे हैं कि लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष के तात्पर्यार्थ को लेकर उसी आधार पर हम आज भी वैदिक यज्ञ-संस्कारादि कृत्यों को श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्र-प्रोक्त ऋतु में सम्पन्न कर सकते हैं। इस विषय को हमने २०५२ संवत् में ही प्रकाशित **वैदिक-मन्त्रसङ्ग्रह** के परिशिष्ट में स्पष्ट किया था, सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय की पत्रिका सारस्वती सुषमा में (५० वर्ष, ३-४ अङ्क) और वाराणसी से प्रकाशित होनेवाली दैनिक पत्रिका सन्मार्ग में (१९९८ अप्रैल १,२) भी इस विषय में लेख प्रकाशित किए गए थे। इस कालगणनापरम्परा को धार्मिक क्षेत्र में जीवित रखना वैदिक धर्म की रक्षा के लिए तथा भारतवर्ष के गौरव की रक्षा के लिए भी अत्यन्त उचित तथा आवश्यक है और आचार्य लगधप्रोक्त

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेदाङ्गज्योतिष को आधुनिक काल में वैदिक धार्मिक कृत्य के लिए सर्वथा अनुपयोगी बताना बहूत बडा अविवेक और भूल है।

१४. वैदिककालगणनाव्यवस्था के सम्बन्ध में स्वाद्ध्यायशाला के निष्कर्ष

अब हमारे स्वाद्ध्यायशाला में किए गए लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ के और वेदमन्त्रसंहिता-ब्राह्मणग्रन्थ-श्रौतसूत्रादि ग्रन्थों के अध्ययन-मनन के फलस्वरूप प्राप्त कुछ निष्कर्ष वैदिकधर्म तथा वाङ्मय के अनुयायी एवम् प्रेमी विद्वानों के विवेचनार्थ और आकलनार्थ सङ्क्षेप में नीचे प्रस्तुत करते हैं।

१. वैदिक धर्म में आवश्यक वेदप्रोक्त पञ्चवर्षात्मक युगका सिद्धान्त ब्रह्मगुप्त की अनार्ष उक्ति[१] से खण्डित नहीं हो सकता है[२]।

२. वैदिकों के युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि सभी सौरचान्द्र हैं।

३. अयन और विषुव को सूर्य से और मास को चन्द्र से लक्षित करना चाहिए।

४. आर्यावर्त में मध्याह्नों में शङ्कु की छाया सब से लम्बी जिस दिन होगी उस दिन से सूर्य का उदगयन (उत्तरायण) और सब से छोटी जिस दिन होगी उस दिन से दक्षिणायन प्रवृत्त होता है।

५. सूर्य की वास्तविक उदगयनप्रवृत्ति से सातवें-आंठवें दिन में अथवा उस के बाद आनेवाली प्रथम अमावास्या में पूर्ण होनेवाला शुक्लप्रतिपदादि अमावास्यान्त चान्द्र मास वैदिक प्रकृतिसम्मत और धर्मकृत्यार्थक कालगणना के आधारभूत वर्ष का प्रथम मास तपोमास (वैदिक आर्तव माघमास) होता है।

६. उस मास की शुक्लप्रतिपदा से वैदिक धार्मिक अनुष्ठानादि के प्रयोजन के लिए नवीन वर्ष, अयन, ऋतु और मास प्रवृत्त माने जाते हैं।

---

१. युगमाहुः पञ्चाब्दं रविशशिनोः संहिताङ्गकारा यत्।
अधिमासाऽवमरात्र-स्फुटतिथ्यज्ञानतस् तदसत्॥
—ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, तन्त्रपरीक्षाध्याय, पद्य २।

२. युगमार्षं हि पञ्चाब्दं ब्रह्मगुप्तादिजल्पितैः।
नाऽनार्षैर् बाध्यते धर्मे परं मानमृषिर् यतः॥
—वैदिक-मन्त्र-सङ्ग्रहः, स्वाद्ध्यायाशाला, काठमाण्डु, २०५२ वै., पृ.१३७; सारस्वती सुषमा (५० वर्ष, ३-४ अङ्क) स.सं.वि.वि., वाराणसी, २०५२वै., पृ.२६१।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७. धार्मिक कार्य के लिए ग्राह्य सौरचान्द्र ऋतु किसी किसी वर्ष में वास्तविक सौर ऋतु से २७-२८ दिन तक पहले भी आ सकता है।

८. उदाहरणार्थ २०६१ वैक्रमाब्द के बापूदेवशास्त्रिप्रवर्तितदृक्सिद्ध-पञ्चाङ्ग में दिसम्बर १२ तारीख में उल्लिखित मार्गशीर्ष-शुक्लप्रतिपदा ही लगध-प्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषानुसार तपश्शुक्लप्रतिपदा (वैदिक आर्तवमाघशुक्लप्रतिपदा) है और इसी दिन सूर्योदय से वैदिक धार्मिक कालगणना के प्रयोजन के लिए वैदिक पञ्चवर्षात्मक युग के पञ्चमवर्ष वत्सर का, उत्तरायण का, शिशिरऋतु का, तपोमास का (वैदिक आर्तव माघमास का), शुक्लपक्ष का और प्रतिपदा का प्रवेश माना जाता है। इसी अवसर में कृष्णस्वर्गारोहण से गणनीय कलिवर्ष का ५०७०वाँ वर्ष भी प्रविष्ट होता है।

९. दृश्य सूर्य के एक वास्तविक अयन में अथवा उस प्रकार के अयन की समाप्ति के बाद ६ दिन तक के समय में ७ अमावास्याएँ आती हैं तो सप्तम अमावास्या में पूर्ण होनेवाला मास अधिकमास होता है।

१०. इस प्रकार लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषानुसार दृक्सिद्ध सौर अयन के अन्त में होनेवाले शुचिमास (वैदिक आर्तव आषाढ) अथवा सहस्यमास (वैदिक आर्तव पौष) अधिकमास हो सकते हैं, अन्य मास नहीं। यही अधिकमास का सिद्धान्त नेपाल के लिच्छविकाल (लगभग ५२० वैक्रमाब्द से ९०० वैक्रमाब्द तक) के शिलालेखों में व्यवहृत पाया जाता है, और इस विषय के स्पष्टीकरण के लिए द्रोणकृत **रत्नकरण्डिकानामक स्मृतिसमुच्चय** और **धर्मनिर्णयतिथिसार-सङ्ग्रह** नाम के दो प्राचीन ग्रन्थ भी नेपाल के राष्ट्रिय अभिलेखालय में सुरक्षित पाए जाते हैं।

११. वैदिक मूल कालगणनापद्धति में क्षयमास नहीं होता है।

१२. वैदिक तिथिगणना में कृष्णचतुर्दशी तिथि टूट सकती है, अन्य तिथियाँ नहीं। तिथिवृद्धि भी नहीं होती है।

१३. श्रौत-स्मार्त धार्मिक कृत्य के लिए संवत्सर-परिवत्सरादि वर्ष, शिशिरादि ऋतु, तपोमासादि मास और शुक्लप्रतिपदादि तिथि लगधप्रोक्त वेदाङ्ग-ज्योतिष के अनुकूल रूप में ही लेने चाहिए।

१४. श्रौत-स्मार्त-धर्मकृत्यों के अधिकारी द्विजाति का धर्मकृत्यों में प्रयोज्य नक्षत्र-नाम नक्षत्रदेवता-सम्बद्ध होना चाहिए, चूचेचोला इत्यादि के शतपदचक्र से अथवा अवकहडचक्र से सम्बद्ध नहीं।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१५. राशि-सङ्क्रान्ति-ग्रह-ग्रहण-जन्मपत्री-ग्रह-दशाफलादि-व्यवस्था के विषय में लगधप्रोक्त मूल वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ से विरोध न होने से अन्य ग्रन्थों को मान्यता दी जा सकती है।

१६. नवीन ज्योतिषग्रन्थानुसारी राशिमूलक शुद्ध सौर मासों के नाम मकर-मास, कुम्भमास, मीनमास, मेषमास, वृषमास इत्यादि माने जा सकते हैं। इसका सङ्केत भागवत में (५।२२।५) भी है। स्कन्दपुराण में वैष्णवखण्ड में (२।१।१७।८, २।१।२७।१०) कन्यामास और कुम्भमास ये सौरमासनाम प्रयुक्त हैं। शिवपुराण में (१।१२।२२,२५,२७) सिंहमास, वृश्चिकमास, मृगमास ये सौरमासनाम प्रयुक्त हैं। लोक में केरलप्रदेशादि में ऐसे मासनाम प्रचलित भी हैं।

१५. प्रचलित पञ्चाङ्गों के सिद्धान्त में असामञ्जस्य

आजकल के प्रचलित धार्मिक पञ्चाङ्गों में उत्तरायणारम्भ माघ में और नववर्षारम्भ चैत्र में मानना परस्पर असमन्वित बातें हैं। समन्वय के लिए तो उत्तरायणारम्भ भी चैत्र में मानना आवश्यक होता है, नहीं तो नववर्षारम्भ भी माघ में ही मानना पडता है। प्रचलित काशीविश्वनाथपञ्चाङ्ग, महावीरपञ्चाङ्ग, वापूदेव-शास्त्रिप्रवर्तित दृक्सिद्ध पञ्चाङ्ग इत्यादि में चैत्र मास के कृष्णपक्ष के व्यतीत होने पर मास के मध्य के चैत्रशुक्लप्रतिपदा से धार्मिक नववर्ष का आरम्भ मानने की बात भी अत्यन्त असमञ्जस बात है। चैत्रशुक्लप्रतिपदा से नववर्ष मानने के पक्ष में मासों को भी शुक्लादि ही मानना उचित होता है, कृष्णादि नहीं। भारतीय राष्ट्रिय पञ्चाङ्ग में वसन्त ऋतु के द्वितीय मास में विषुवद्दिन के दूसरे दिन में नव-वर्षारम्भ मानना और उसी दिन से वैदिक माधव मास की प्रवृत्ति मानना भी वैदिक मूल परम्परा की सर्वथा प्रतिकूल बात दिखाई देती है। वैदिक तपस्-तपस्यादि मास सौरायनसापेक्ष चान्द्रमास होने से वैदिकधर्म में उनकी प्रवृत्ति शुक्लप्रतिपदा से ही मानी जाती है। श्रौत-स्मार्त यज्ञादि में चान्द्रमासनिरपेक्ष सौरमास का उपयोग ब्राह्मणग्रन्थ और श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्रादि वाङ्मय में विहित नहीं पाया जाता है। भारतवर्षीय मूल वैदिककालगणनापद्धति का आकलन करने में बडे वैज्ञानिक मेघनाद साहा की अध्यक्षतावाली भारतसम्प्रशासनद्वारा नियुक्त पञ्चाङ्गसुधारसमिति भी असमर्थ ही दिखाई देती है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१६. लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ के अनुशीलन की और पञ्चाङ्गों में तदनुकूल विषयों के समावेश की आवश्यकता

इस स्थिति में हमारे विचार में भारतवर्ष के गौरव की रक्षा तथा अभिवृद्धि के लिए लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ का गम्भीर अनुशीलन होना चाहिए, सिद्धान्तज्योतिषाचार्यपरीक्षा धर्मशास्त्राचार्यपरीक्षा इत्यादि में भी व्याख्यासहित इस मूल ग्रन्थ को निर्धारित करना चाहिए, और भारतवर्षीय धार्मिक पञ्चाङ्गकारों को भी अपने-अपने पञ्चाङ्गों में वैदिक संवत्सर-परिवत्सरादि वर्षों के आरम्भदिन, वैदिक धार्मिक उदगयनारम्भ-दक्षिणायनारम्भ के दिन, वैदिक शिशिरर्त्वादि ऋतुओं के आरम्भ के दिन, वैदिक तपस्-तपस्यादि मासों के आरम्भ के दिन, पूर्णमासेष्टिदिन तथा दर्शेष्टिदिन, और वैदिक अधिमासारम्भदिन इत्यादि भी लगधप्रोक्त **'पञ्चसंवत्सरमयम्'** इत्यादि मूल वेदाङ्गज्योतिष के अनुकूल रूप में निर्दिष्ट करना चाहिए। कोई नेपाली पञ्चाङ्ग ने हमारे इस प्रस्ताव को अपनाकर उन विषयों का समावेश किया भी है।

वैदिक धर्म में लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ की प्रमाणता में ज्योतिषियों, पण्डितों और वैदिकों को कोई सन्देह हो तो उसमें खुले रूप में शास्त्रार्थक्रम चलाना चाहिए और उसको सार्वजनिक सञ्चारमाध्यमों को भी प्रकाशनादि से प्रोत्साहित करना चाहिए। धार्मिक सङ्घ-संस्थाओं को और समर्थ विद्वानों को सभा, सम्मेलन, परिचर्चा, गोष्ठी इत्यादि की आयोजना करके इस विषय का लोक में प्रचार भी करते रहना चाहिए।

१७. प्रस्तुत हिन्दी व्याख्या की विशेषताएँ

सोमाकर को छोडकर अन्य शङ्करबालकृष्णदीक्षितादि अर्वाचीन व्याख्याताओं ने केवल इतिहास की दृष्टि से ही वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ की व्याख्या की है। तथापि उनकी व्याख्याओं का भी मनन करके और वेदाङ्गज्योतिष के यथालाभ हस्तलिखित पुस्तकों के पाठों को भी देखकरके हमने इस संक्षिप्त हिन्दी व्याख्या को प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत व्याख्या की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं—

(१) प्रस्तुत व्याख्या में वेद-वेदाङ्ग-वेदोपाङ्ग-स्मृति-पुराण-धर्मशास्त्र-निबन्ध इत्यादि के अध्ययन के आधार में लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ की श्रौत-स्मार्त धर्मकृत्यों के कालों के प्रतिपादन के लिए वर्तमान काल में भी अनुसरणीयता प्रतिपादित की गई है।

Prof. Amodavardhana Kaundinhyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(२) लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ के तात्पर्यार्थ का स्पष्टीकरण और श्रुतिस्मृतिपुराणवचनों से समर्थित रूप में इस व्याख्या में दृढतापूर्वक किया गया है।

(३) सोमाकर ने लगधमुनिप्रोक्त कालगणनापद्धति को सभी काल में प्रयोगयोग्यता खोलकर नहीं बताई है और सभी श्लोकों के स्पष्ट अर्थ भी नहीं बताए हैं, प्रस्तुत संक्षिप्त हिन्दी व्याख्या में लगधमुनिप्रोक्त कालगणनापद्धति का सारभूत सिद्धान्त और उसका तात्पर्यार्थ सभी कालों में प्रयोज्य होने की बात निष्कर्ष रूप में प्रतिपादित और समर्थित की गई है और प्रायः सभी श्लोकों के स्पष्ट अर्थ भी बताए गए हैं।

(४) षष्ठ श्लोक के आदियुगशब्द का सुधाकर-बार्हस्पत्यादि से बताए गए 'युग का आदि' इस अर्थ को छोडकर सोमाकरभाष्य के अनुकूल रूप में इस ग्रन्थ की कालगणना का आधारभूत आदियुग (प्रथम आदर्श युग) इस अर्थ को ही लिया गया है और इस ग्रन्थ की स्थिति को बिलकूल भिन्न पृष्ठभूमि में स्थापित किया गया है।

(५) षष्ठ श्लोक की व्याख्या में वर्तमान समय में कलिसंवत् से संवत्सर-परिवत्सरादि वर्षों का और चान्द्र प्रभवादि संवत्सरों का ज्ञान करने की रीति स्पष्ट की गई है।

(६) सप्तम श्लोक की व्याख्या में उदगयन को मुख्य प्रतिपाद्य रूप में और उसके नक्षत्रविशेष से सहभाव को उपलक्षण के रूप में व्याख्या करके कालगणनोपायप्रदर्शन के रूप में इस ग्रन्थ की सदा प्रयोज्यता सिद्ध की गई है।

(७) एकादश श्लोक के पूर्वव्याख्याताओं से अव्याख्यात उत्तरार्ध का अर्थ परम्परागत पाठ को ही युक्तियुक्त रूप से लेकर स्पष्ट किया गया है।

(८) पूर्वव्याख्याताओं से अन्यथा प्रतिपादित बारहवें श्लोक का अर्थ श्रुति-स्मृति-पुराणादि धर्मशास्त्रसम्मत रूप में प्रतिपादित है।

(९) आदियुग के सावनदिनों के १२४ पर्वान्तों की विस्तृत व्याख्यात्मक सारणी प्रस्तुत की गई है।

(१०) नेपाल में सुरक्षित ग्रन्थों शिलालेखों और अन्य लेख्यों के भी सहायता से वेदाङ्गज्योतिषोक्त अधिमासव्यवस्था की युक्तियुक्त और व्यावहारिक व्याख्या प्रस्तुत करके अन्यव्याख्याताओं से अप्रकाशित वस्तुतथ्य प्रकाशित किया गया है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इससे वैदिक अधिमास की पद्धति का सार्वकालिक उपयोग सिद्ध करने का कार्य हुआ है।

(११) द्विजातियों के नक्षत्रनामकरण में लगधमुनिप्रोक्त व्यवस्था की अनुसरणीयता का दृढतापूर्वक प्रतिपादन किया गया है।

(१२) हस्तलेखों के आधार में और अन्य युक्ति के आधार में भी मूल ग्रन्थ के कतिपय समीचीनतर पाठ भी समाविष्ट किए गए हैं (द्र.– श्लो. ११,१३,१४, १६,२६,३१,३७,३८,४२)।

(१३) लगध के उल्लेख से युक्त ४३ वें श्लोक का हस्तलिखित पाठ के आधार से भी यजुर्वेदियों के वेदाङ्गज्योतिष में भी पठित होना सिद्ध किया गया है।

(१४) वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ से विरुद्ध अंशों में आर्यभटीय-ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त-सूर्यसिद्धान्तादि की अमान्यता भी इस भूमिका में स्पष्ट की गई है।

हमारे प्रकाशित (२००५ क्रै.) संस्कृतव्याख्यान के सारांश को लेकर प्रस्तुत यह संक्षिप्त हिन्दी व्याख्या भी वेदाङ्गज्योतिष के क्षेत्र में नवीन और बहुत ही बडी उपलब्धि है, विद्वज्जन इस व्याख्या का पर्यालोचन करें॥

—शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन

कलियुगसंवत् ५०७३,
वैदिक-मधुशुक्लषष्ठी,
ग्रन्थकार का अडसठवाँ जन्मदिन
(२०६४।१०।२९ वै.=२००८।२।१२ क्रै.)

स्वाद्ध्यायशाला,
१६८, शिवभक्तमार्ग (नीलसरस्वतीमार्गसंलग्न),
लाजिम्पाट्, काठमाण्डु–२, नेपाल,
☎ ००९७७-१-४४३३३२७।
E-mail : svadhyaya@hotmail.com

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ

यजुर्वेदिनां परम्परयाऽऽगतं परिष्कृतं

वेदाङ्गज्योतिषम्

पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः ॥१॥

ज्योतिषामयनं पुण्यं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।
सम्मतं ब्राह्मणेन्द्राणां यज्ञकालार्थसिद्धये ॥२॥

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्व्या विहिताश् च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान् ॥३॥

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥४॥

माघशुक्लप्रपन्नस्य पौषकृष्णसमापिनः।
युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते ॥५॥

स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदाऽऽदियुगं माघस् तपःशुक्लोऽयनं ह्युदक् ॥६॥

प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणाऽर्कस् तु माघश्रावणयोः सदा ॥७॥

घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्ययनेन तु ॥८॥

प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदशम्।
चतुर्थं दशमं चैव द्विर् युग्मं बहुले त्वृतौ ॥९॥

वसुस् त्वष्टा भवोऽजश् च मित्रः सर्पोऽश्विनौ जलम्।
धाता कश् चाऽयनाद्याः स्युरर्धपञ्चमभस् त्वृतुः ॥१०॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एकान्तरेऽह्नि मासे च पूर्वान् कृत्वाऽऽदिरुत्तरः।
अर्धयोः पञ्चपर्वाणावृतू पञ्चदशाऽष्टमौ ॥११॥

द्यु हेयं पर्व चेत् पादे पादस् त्रिंशत् तु सैकिका।
भागात्मनाऽपमृज्याऽंशान् निर्दिशेदधिको यदि ॥१२॥

निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं चाऽऽप्तसंयुतम्।
षष्ट्याषष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरुच्यते ॥१३॥

स्युः पादोर्ध्वं त्रिपद्यायास् त्रिर् द्व्येकेऽह्नः कृते स्थितिम्।
साम्येनेन्दोः स्तृणोऽन्ये तु पञ्चकाः पर्वसम्मिताः ॥१४॥

भाऽंशाः स्युरष्टकाः कार्याः पक्षद्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणश् चोनः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि ॥१५॥

नवकैरुद्गतोऽंशः स्यादूनः सप्तगुणो भवेत्।
आवापस् त्वयुजेऽर्धं स्यात् पौलस्त्येऽस्तङ्गतेऽपरम् ॥१६॥

जावाद्यंशैः समं विद्यात् पूर्वार्धे पर्वसूत्तराः।
भादानं स्याच् चतुर्दश्यां द्विभागेभ्योऽधिको यदि ॥१७॥

१जौ २द्रा ३गः ४खे ५श्वे ६ही ७रो ८षाश्
९चिन् १०मू ११षक् १२ण्यः १३सू १४मा १५धा १६णः।
१७रे १८मृ(म्रे) १९घाः २०स्वा २१पो २२जः २३कृ २४ष्यो
२५ह २६ज्ये २७ष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गैः ॥१८॥

कार्या भांशाष्टकस्थाने कला एकान्नविंशतिः।
ऊनस्थाने तु सप्ततिमुद्वपेद् युक्तिसम्भवे ॥१९॥

तिथिमेकादशाभ्यस्तां पर्वभांशसमन्विताम्।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत् ॥२०॥

याः पर्वभादानकलास् तासु सप्तगुणा तिथिः।
युक्ता ताश् च विजानीयात् तिथिभादानिकाः कलाः ॥२१॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अतीतपर्वभागेभ्यः शोधयेद् द्विगुणां तिथिम्।
तेषु मण्डलभागेषु तिथिनिष्ठां गतो रविः ॥२२॥

विषुवन्तं द्विरभ्यस्तं रूपोनं षड्गुणीकृतम्।
पक्षा यदर्धं पक्षाणां तिथिः स विषुवान् स्मृतः ॥२३॥

पलानि पञ्चाशदपां धृतानि तदाढकं द्रोणमतः प्रमेयम्
त्रिभिर् विहीनं कुडवैस्तु कार्यं तन् नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम् ॥२४॥

एकादशभिरभ्यस्य पर्वाणि नवभिस् तिथिम्।
युगलब्धं सपर्व स्याद् वर्तमानार्कभं क्रमात् ॥२५॥

सूर्यर्क्षभागान् नवभिर् विभज्य शेषं द्विरभ्यस्य दिनोपभुक्तिः।
तिथेर् युता भुक्तिदिनेषु कालोऽयोगे दिनैकादशकेन तद् भम् ॥२६॥

त्रिंशी भशेषो दिवसांशभागश् चतुर्दशस्याऽप्युपनीय भिन्नम्।
भार्धाऽधिके चाऽपि गते परोऽंशो द्वावुक्तमेकं नवकै रवेर् द्यु ॥२७॥

त्रिशत्यह्नां सषट्षष्टिरब्दः षट् चर्तवोऽयने।
मासा द्वादश सौराः स्युरेतत् पञ्चगुणं युगम् ॥२८॥

उदया वासवस्य स्युर् दिनराशिः सपञ्चकः।
ऋषेर् द्विषष्ट्या हीनः स्याद् विंशत्या सैकया स्तृणाम् ॥२९॥

पञ्चत्रिंशं शतं पौष्णमेकोनमयनान्यृषेः।
पर्वणां स्याच् चतुष्पादी काष्ठानां चैव ताः कलाः ॥३०॥

सावनेन्दुस्तृमासानां षष्टिः सैकद्विसप्तिका।
द्युत्रिंशत् सावनः साऽर्धः सौरः स्तृणां स पर्ययः ॥३१॥

अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिर् बृहस्पतिः।
सर्पाश् च पितरश् चैव भगश् चैवाऽर्यमाऽपि च ॥३२॥

सविता त्वष्टाऽथ वायुश् चेन्द्राऽग्नी मित्र एव च।
इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वेदेवास् तथैव च ॥३३॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विष्णुर् वसवो वरुणोऽज एकपात् तथैव च।
अहिर्बुध्न्यस् तथा पूषा अश्विनौ यम एव च ॥३४॥

नक्षत्रदेवता ह्येता एताभिर् यज्ञकर्मणि।
यजमानस्य शास्त्रज्ञैर् नाम नक्षत्रजं स्मृतम् ॥३५॥

उग्राण्यार्द्रा च चित्रा च विशाखा श्रवणोऽश्वयुक्।
क्रूराणि तु मघाः स्वातिर् ज्येष्ठा मूलं यमस्य यत् ॥३६॥

द्व्यूनं द्विषष्टिभागेन दिनं सौराच् च पार्वणम्।
यत्कृतावुपजायेते मध्येऽन्ते चाऽधिमासकौ ॥३७॥

कला दश सविंशाः स्यान् नाडिका ते मुहूर्तकः।
द्यु त्रिंशत् तत् कलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत् ॥३८॥

ससप्तकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
नवमानि च पञ्चाऽह्नः काष्ठा पञ्चाक्षरा भवेत् ॥३९॥

यदुत्तरस्याऽयनतो गतं स्याच् छेषं तथा दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादशं स्याद् दिवसप्रमाणम् ॥४०॥

यदर्धं दिनभागानां सदा पर्वणिपर्वणि।
ऋतुशेषं तु तद् विद्यात् संख्याय सह पर्वणाम् ॥४१॥

इत्युपायसमुद्देशो भूयोऽप्येनं प्रकल्पयेत्।
ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं विभजेज् ज्ञातराशिना ॥४२॥

इत्येतन् मासवर्षाणां मुहूर्तोदयपर्वणाम्।
दिनर्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत् ॥४३॥

सोमसूर्यस्तृचरितं विद्वान् वेदविदश्नुते।
सोमसूर्यस्तृचरितं लोकं लोके च सन्ततिम्,
लोकं लोके च सन्ततिमिति ॥४४॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ

यजुर्वेदिनां परम्परयाऽऽगतं परिष्कृतं

वेदाङ्गज्योतिषम्

(हिन्दीव्याख्यासहितम्)

[प्रणाम तथा प्रतिज्ञा]

पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः ॥१॥

ज्योतिषामयनं पुण्यं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।
सम्मतं ब्राह्मणेन्द्राणां यज्ञकालार्थसिद्धये॥२॥

नमो धर्माय महते वेदाय च स्वयम्भुवे। ऋषिभ्यश् च ब्राह्मणेभ्यो वेदविद्भ्यो नमोनमः॥१॥
सरस्वतीं च ब्रह्माणं लक्ष्मीं नारायणं तथा। शिवां शिवं तथाऽम्बां चाऽऽवुकं च कलये हृदि॥२॥
वेदाङ्गं ज्योतिषं शास्त्रं मुनिना लगधेन हि। प्रोक्तं पुरातनं ज्येष्ठं पूजितं वेदसम्मितम्॥३॥
पुराकालात् प्रभृत्येव स्वाध्यायाध्यायिभिर् द्विजैः। श्रद्धयाऽधीयमानं च ब्रह्मयज्ञे प्रयत्नतः॥४॥
वेदेषु च तदङ्गेषु श्रद्धया परया दृढम्। प्रेरितोऽहं स्वधर्मे च वर्तमानो यथाबलम्॥५॥
व्याख्यास्यामि प्रयोक्तुं तच् श्रौतस्मार्तेषु कर्मसु। इदानीमपि ग्राह्यस्य कालस्य हि निरूपणे॥६॥
लोकभाषामयीं व्याख्यां संक्षिप्तां सारबोधिनीम्। स्पष्टां विशिष्टां सरलां करिष्ये धर्मशुद्धये॥७॥

पाँच संवत्सररूप शरीर से युक्त और उसी पाँच संवत्सरयुक्त युग के अध्यक्ष तथा अहोरात्र, ऋतु, अयन और मास इत्यादि अङ्गों से युक्त प्रजापति को मस्तक से प्रणाम करके शरीर, वाणी और मन से शुद्ध मैं अग्न्याधान, पौर्णमास-याग, दर्शयाग, आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढपशुबन्ध, अग्निष्टोमसोमयाग इत्यादि श्रौत यज्ञों के और उपनयन-विवाहादि स्मार्त कृत्यों के लिए भी आवश्यक तिथि, पक्ष, पर्व, मास, ऋतु, अयन, वर्ष इत्यादि कालरूप प्रयोजन के ज्ञानार्थ श्रेष्ठ श्रौत-स्मार्तकर्माधिकारी ब्राह्मणों के सम्मत पुण्यजनक चन्द्र-सूर्य-नक्षत्ररूप ज्योतियों की गति के प्रतिपादक शास्त्र को क्रम से उत्तम रूप से बताऊँगा॥१–२॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[ज्योतिषज्ञान की आवश्यकता]

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः
कालानुपूर्व्या विहिताश् च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं
यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥३॥

ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद-अथर्ववेदरूप मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद विविध यज्ञों के प्रतिपादन और सम्पादन के लिए प्रवृत्त हैं, यज्ञ वेदों में कालक्रमानुसार विहित हैं, अतः कालानुपूर्वयज्ञानुविधान के ज्ञान के साधन के अनुशासनरूप इस ज्योतिषशास्त्र को जो जानता है वह यज्ञों को जानता है। [इस प्रकार यह वेदाङ्ग-शास्त्र है]॥३॥

[ज्योतिषप्रशंसा]

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्॥४॥

शिखा जैसा मयूरों के शिर में होती है, मणि जैसे नागों के मूर्धा में स्थित होते हैं, उसी प्रकार गणितरूप ज्योतिष शिक्षा-कल्प-व्याकरणादिरूप वेदाङ्ग-शास्त्रों के मूर्धा में स्थित होता है। [यह ज्योतिषरूप वेदाङ्ग की प्रशंसा है]॥४॥

[वेदाङ्गज्योतिष का प्रतिपाद्य विषय]

माघशुक्लप्रपन्नस्य पौषकृष्णसमापिनः।
युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते॥५॥

माघ मास के शुक्ल पक्ष (की प्रतिपदा) में शुरू होनेवाले और पौष मास के कृष्णपक्ष (की अमावास्या) में समाप्त होनेवाले पाँच वर्षोंवाले युग के काल का ज्ञान (वैदिक ज्योतिषज्ञ मुनि लोग) बताते हैं।

विशेष– यद्यपि इस ग्रन्थ में युग के पाँच वर्षों के पृथक् नाम उल्लिखित नहीं हैं तथापि युगान्तर्गत वर्षों के संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर (इडावत्सर), इद्वत्सर (अनुवत्सर / उद्वत्सर / इदुवत्सर), वत्सर (उद्वत्सर) ये नाम वेदों में उल्लिखित हैं॥५॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[आदियुग का निरूपण]

स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदाऽऽदियुगं माघस् तपश्शुक्लोऽयनं ह्युदक् ॥६॥

जब श्रविष्ठा (धनिष्ठा) नक्षत्र से युक्त (धनिष्ठा नक्षत्र का आदि में वर्तमान) चन्द्रमा और सूर्य आकाश में साथ-साथ उदित होते हैं, उसी समय में आद्य पञ्च-वर्षात्मक युग, माघमास, तपश्शुक्लपक्ष (-प्रतिपदा) और उदगयन भी साथ साथ शुरू होते हैं। [इस श्लोक में प्रतिपादित आदियुग की स्थिति को यथार्थ रूप में न समझने के कारण से सुधाकर द्विवेदी प्रभृति अर्वाचीन लोग इस वेदाङ्गज्योतिष ग्रन्थ के सम्पूर्ण अर्थ को और तात्पर्यको अच्छी तरह समझने में असमर्थ रहे हैं, और अनेक भ्रान्त कल्पना करने में लगे हैं। यहाँ नक्षत्र उपलक्षण है, अयन मुख्य है।]

विशेष– इस श्लोक से वैदिक नववर्ष का आरम्भ माघशुक्ल-प्रतिपदा में होता है, चैत्रशुक्लप्रतिपदा में नहीं, यह बात स्पष्ट हो जाती है, और प्रमाणित भी होती है। इस विषय में वेदाङ्गज्योतिष की हमारी संस्कृतव्याख्या और भूमिका में विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। सूर्य के वास्तविक दृक्सिद्ध उत्तरायणप्रारम्भ के आसन्न काल में पडनेवाली शुक्लप्रतिपदा ही तपश्शुक्लप्रतिपदा अथवा माघशुक्लप्रतिपदा है यह बात भी इसी श्लोक से और अधिमासव्यवस्था से अवगत होती है। इस स्थिति में निर्मलचन्द्र लाहिडी का अर्वाचीन राशिपद्धति में आधृत **'मेषादिस्थे सवितरि योयो मासः प्रपूर्यते चान्द्रः। चैत्रादिः स ज्ञेयः पूर्ति-द्वित्वेऽधिमासोऽन्त्यः'** इत्यादि मासपरिभाषा को मानकर निर्धारित माघशुक्ल-प्रतिपदा में वेदाङ्गज्योतिषोक्त नववर्षारम्भ मानना अयुक्त ही सिद्ध होता है।

वर्तमान वर्ष वैदिक संवत्सर-परिवत्सरादि वर्षों में कौन-सा वर्ष है और चान्द्र प्रभवादि ६० वर्षों में वर्तमान वर्ष कौन-सा वर्ष है, इस बात को जानने के लिए वर्तमान काल में प्रसिद्ध कलिवर्षसङ्ख्या को महाभारतयुद्धाब्द मानकर उसमें ३६ घटाकर उसको वर्तमान कलिवर्ष मानकर उसमें ६० का भाग देकर शेष से चान्द्र प्रभवादि संवत्सरों को जानना चाहिए और उस शेष को ५ का भाग देकर लब्धि तथा शेष से बीते हुए तथा वर्तमान वैष्णवादि युगों को और शेष से वर्तमान वैष्णवादि युग के संवत्सर-परिवत्सरादि वैदिक वर्षों को जानना चाहिए। जैसे उक्त प्रकार के कलिवर्ष में ६० का भाग देने से २९ शेष रहने पर चान्द्र प्रभवादि में २९ वाँ मन्मथ संवत्सर होगा, २९ में ५ का भाग देने से लब्धि ५ और शेष ४

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होने से वैष्णवादि ५ युग बीतने पर छठा आहिर्बुध्न्य युग वर्तमान होगा और उसका चौथा वर्ष वैदिक ५ वर्षों में से चौथा इद्वत्सर होगा।

जैसे– सन् २०११ अप्रैल ४ सोमवार की चैत्रशुक्लप्रतिपदा में प्रचलित कलिवर्षसङ्ख्या ५११२ है। उस से ३६ घटाने पर (५११२–३६) फल हुआ वास्तव कलिवर्ष, अर्थात् ५०७६। इस प्रकार ज्ञात कलिवर्ष में ६० का भाग देने से ३६ शेष हुआ। अतः चान्द्र प्रभवादि में ३६ वाँ शुभकृत् संवत्सर हुआ। ३६ में ५ का भाग देने से लब्धि ७ और शेष १ होने से वैष्णवादि ७ युग बीतने पर आठवाँ वैश्वदेव युग वर्तमान अवगत हुआ और उसका पहला वर्ष वैदिक ५ वर्षों में से पहला संवत्सर हुआ। यह संवत्सर उस २०११ अप्रैल ४ से चार चान्द्र मास पूर्ववर्ती २०१० दिसम्बर ६ सोमवार की वैदिक आर्तव तपश्शुक्लप्रतिपदा से प्रारब्ध होता है॥६॥

[उदगयन-दक्षिणायनकाल का निर्देश]

प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्ऽर्धे दक्षिणाऽर्कस् तु माघ-श्रावणयोः सदा॥७॥

[उस आदियुग में] धनिष्ठा नक्षत्र का आदि में स्थित सूर्य और चन्द्रमा उत्तर की ओर चलते हैं और आश्लेषा नक्षत्र का अर्धभाग में स्थित सूर्य तो दक्षिण की ओर चलता है। सदाकाल माघ मास में (सूर्य का) उत्तरायण और श्रावणमास में दक्षिणायन होता है। [यहाँ नक्षत्र को उपलक्षण मात्र और अयन को मुख्य जानकर विचार करना चाहिए।]

आद्ययुगप्रवृत्तिकाल में पौर्णमासीनक्षत्रमूलक चान्द्रमासनाम माघफाल्गुनादि की और ऋतुबद्ध चान्द्रमासनाम तपस्तपस्यादिकों की सुसमन्वितता होने की बात तथा दोनों प्रकार के नामों का समन्वय का ऋतु-बद्धता-प्रधानतया सदा स्थापनीयत्व भी सूचित करने के लिए सूर्य का सदा माघ और श्रावण में क्रमशः उदगयन और दक्षिणायन होने की बात बताई गई है। इससे वेदाङ्गज्योतिषकार को माघ-श्रावणादि मास की ऋतुबद्धता ही मान्य होने की बात अवगत होती है।

वास्तविक ऋतुनियामकत्व सूर्य के उदगयन और दक्षिणायन का ही है, न कि सूर्य के नक्षत्रयोग का, वेदमन्त्रोक्त तपस्-तपस्य-मधु-माधवादि मासों की ऋतुबद्धता *"तपश् च तपस्यश् च शैशिरावृतू"* (शु.य.वे.१५।५७, तै.सं.४।४।११।१) *"मधुश् च माधवश् च वासन्तिकावृतू"* (शु.य.वे.१३।२५, तै.सं.४।४।११।१) इत्यादि मन्त्रवाक्य के प्रामाण्य से अवगत होती है। नक्षत्र उपलक्षण है, अयन मुख्य है॥७॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[दिवसमान की वृद्धि और रात्रिमान के ह्रास से अयन का निरूपण]

घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्यर्यनेन तु॥८॥

सूर्य के उत्तर की ओर चलने पर नाडीयन्त्र में एक प्रस्थ (लगभग एक सेर अथवा एक लिटर) पानी आने में जितना समय लगता है उतना समय (प्रतिअहोरात्र) दिन की वृद्धि और रात का ह्रास (क्षय) होता है, सूर्य की दक्षिण की ओर गति होने पर उलटा (दिन में ह्रास और रात में वृद्धि) होता है। एक अयनभर में छः मुहूर्त दिन की वृद्धि और रात्रि का ह्रास अथवा छः मुहूर्त रात्रि की वृद्धि और दिन का ह्रास होता है। [यह दिन की वृद्धि और रात का ह्रास तथा रात की वृद्धि तथा दिन का ह्रास छः मुहूर्तों के समूह का इधर-उधर (कभी दिन की ओर और कभी रात की ओर) चलने से होता है।]

विशेष– इस श्लोक से चान्द्र वर्ष, अयन, ऋतु, मास तथा अधिमास के व्यवस्थापक के रूप में दृक्सिद्ध दिवसवृद्धि तथा रात्रिह्रास से युक्त और रात्रिवृद्धि तथा दिवसह्रास से युक्त सौर अयन को सूक्ष्म रूप में निरीक्षण करके ही वैदिकों से लिया जाता है, यह बात भी सूचित हुई है। दिवसप्रमाण (दिनमान) के प्रतिपादन से भी (श्लो. ४०) यह बात सूचित होती है। सौर वर्षको ३६६ दिन का, सौर अयन को १८३ दिन का, सौर ऋतु को ६१ दिन का तथा सौर मास को ३०½ दिन का मान कर गणित प्रदर्शित करने का कारण दूसरा ही है। वेदाङ्गज्योतिष के अन्य व्याख्याता और समीक्षक लोग इस श्लोक के मर्म को ठीक प्रकार से न समझने से और वेदाङ्गज्योतिष की शैली को भी ठीक प्रकार से अवगत न कर सकने से वेदाङ्गज्योतिषकार को वस्तुतः सौर वर्ष, अयन, ऋतु इत्यादि का सर्वथा वास्तविक मान ही अभीष्ट है, तथापि प्रयोग में चान्द्र मान ही प्रधान होने से केवल गणितलाघवादि के लिए ही उपर्युक्त आसन्न सौर मान को लेकर इस ग्रन्थ में निदर्शनार्थ गणित प्रदर्शित किया गया है, इस बात को हृदयङ्गम न कर सके और अनेक अयुक्तियुक्त कल्पना कर बैठे, इस तथ्य में विवेकशील पाठकों को अच्छी तरह ध्यान देना चाहिए॥८॥

[सौर अयन के आरम्भ की तिथियाँ]

प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदशम्।
चतुर्थं दशमं चैव द्विर् युग्मं बहुले त्वृतौ॥९॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[उक्त आदियुग के दश अयनों में] प्रथम, सप्तम, त्रयोदश, चतुर्थ और दशम तिथि को क्रमशः दो वार (सूर्य के) अयन (दूसरे अयन में गमन) के आदि में रहनेवाले तिथि (वैदिक ज्योतिषज्ञ मुनि लोग) बताते हैं। उनमें समसङ्ख्या के तिथि (चतुर्थ और दशम तिथि) तो कृष्ण पक्षके समय में पडते हैं [द्रष्टव्य– अगले श्लोक की व्याख्या में प्रदर्शित सारणी]। यह बात आदियुग के लिए ही कही गई है, अन्य युगों के लिए नहीं, यह बात समझनी चाहिए।

विशेष– यहाँ प्रतिपदा को प्रथम तिथि, सप्तमी को सप्तम तिथि इत्यादि कहा गया है। तिथिशब्द संस्कृत में पुंलिङ्ग में भी प्रयुक्त होता है॥९॥

[सौर अयन के आरम्भ में रहनेवाले चान्द्र नक्षत्र]

वसुस् त्वष्टा भवोऽजश् च मित्रः सर्पोऽश्विनौ जलम्।
धाता कश् चाऽयनाद्याः स्युरर्धपञ्चमभस् त्वृतुः ॥१०॥

[उस आदियुग में] धनिष्ठा, चित्रा, आर्द्रा, पूर्वभद्रपद, अनुराधा, आश्लेषा, अश्विनी, पूर्वाषाढा, उत्तरफल्गुनी और रोहिणी क्रमशः सूर्य के दश अयनों (दूसरे अयन में गमनों) के आदि में रहनेवाले चान्द्र नक्षत्र होते हैं। [सौर] ऋतु तो (सूर्य के) पूरे चार नक्षत्रों के और पञ्चम नक्षत्र का आधे भाग के भोग का काल होता है॥१०॥

अयन	पक्ष	तिथि	नक्षत्रदेवता	चन्द्रनक्षत्र
१	शुक्ल	प्रथम तिथि (प्रतिपदा)	वसु	धनिष्ठा
२	"	सप्तम तिथि (सप्तमी)	त्वष्टा	चित्रा
३	"	त्रयोदश तिथि (त्रयोदशी)	भव	आर्द्रा
४	कृष्ण	चतुर्थ तिथि (चतुर्थी)	अज	पूर्वभद्रपद
५	"	दशम तिथि (दशमी)	मित्र	अनुराधा
६	शुक्ल	प्रथम तिथि (प्रतिपदा)	सर्प	आश्लेषा
७	"	सप्तम तिथि (सप्तमी)	अश्विनौ	अश्विनी
८	"	त्रयोदश तिथि (त्रयोदशी)	जल	पूर्वाषाढा
९	कृष्ण	चतुर्थ तिथि (चतुर्थी)	धाता (अर्यमा)	उत्तरफल्गुनी
१०	"	दशम तिथि (दशमी)	क (प्रजापति)	रोहिणी

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[सौर ऋतु के आरम्भ की तिथियाँ और पञ्चपर्वा ऋतु]

एकान्तरेऽह्नि मासे च पूर्वान् कृत्वाऽऽदिरुत्तरः ।
अर्धयोः पञ्चपर्वाणावृतू पञ्चदशाऽष्टमौ ॥११॥

पूर्व ऋतुओं के आरम्भ की तिथियों को और मासों को एक तिथि से और एक मास से व्यवहित बनाकर (तीसरे मास में और तीसरे तिथि में) अगला ऋतु का आदि तिथि होती है। अर्थात् पूर्व ऋतु के आरम्भ के चान्द्र मास से तृतीय चान्द्र मास में और पूर्व ऋतु के आरम्भ की तिथि की तीसरी तिथि में उत्तर ऋतु की प्रवृत्ति (शुरुआत) होती है। पञ्चवर्षात्मक आदियुग के पूर्वार्ध में (पूर्वार्ध के पन्द्रह ऋतुओं में) और उत्तरार्ध में (उत्तरार्ध के पन्द्रह ऋतुओं में) पन्द्रहवाँ ऋतु और आठवाँ ऋतु ये दो ऋतु पाँच पर्ववाले (पाँच पक्षसन्धियों से युक्त) होते हैं।

विशेष– शङ्करबालकृष्ण दीक्षित ने इस श्लोक के पूर्वाऽर्ध का ही अर्थ लिखा है (पृ.११७)। बार्हस्पत्य से स्वकपोलकल्पित अर्थ किया गया मालूम होता है। सुधाकर ने भी स्वकपोलकल्पित अर्थ ही किया है। बालगङ्गाधर तिलक ने तो इस श्लोक के अर्थ का विचार ही नहीं किया है। शामशास्त्री ने इस श्लोक का मनमाना पाठान्तर की कल्पना करके अयथार्थ अर्थ दिया है। हमने तो *"पञ्चपर्वाणामृद्रू"* इस पाठ के स्थान पर *"पञ्चपर्वाणावृतू"* इस न्याय्य पाठ को मानकर अर्थ किया है। जिस आदर्शभूत [प्रतिमानरूप] पञ्चवर्षात्मक आदियुग में पूर्वार्ध में माघशुक्लप्रतिपदा में प्रथम ऋतु (शिशिर) का आरम्भ होता है, उस युग में चैत्रशुक्लपूर्णिमा में प्रवृत्त और ज्येष्ठकृष्णप्रतिपदा में समाप्त आठवाँ ऋतु पूर्णिमा, अमावास्या, पूर्णिमा, अमावास्या, पूर्णिमा इन पाँच पर्वों से युक्त अत एव पञ्चपर्वा होता है; ज्येष्ठकृष्णचतुर्दशी में आरब्ध और अधिकाषाढ की अमावास्या में समाप्त पन्द्रहवाँ ऋतु अमावास्या, पूर्णिमा, अमावास्या, पूर्णिमा, अमावास्या इन पाँच पर्वों से युक्त अत एव पञ्चपर्वा होता है। इस प्रकार आठवाँ और पन्द्रहवाँ दो सौर ऋतु पञ्चपर्वा होते हैं। इसी प्रकार उसी आदर्शभूत पञ्चवर्षात्मक युग में श्रावणशुक्लप्रतिपदा में प्रवृत्त युग के द्वितीयार्ध का (उत्तरार्ध का) आश्विनशुक्लपूर्णिमा में प्रवृत्त और मार्गकृष्णप्रतिपदा में समाप्त आठवाँ ऋतु पूर्णिमा, अमावास्या, पूर्णिमा, अमावास्या, पूर्णिमा इन पाँच पर्वों से युक्त अत एव पञ्चपर्वा होता है, मार्गकृष्णचतुर्दशी में प्रवृत्त और अधिकपौषामावास्या में समाप्त पन्द्रहवाँ ऋतु भी अमावास्या, पूर्णिमा, अमावास्या, पूर्णिमा, अमावास्या इन पाँच पर्वों से युक्त अत एव पञ्चपर्वा होता है। इस प्रकार दोनों युगार्धों के आठवें और पन्द्रहवें दो सौर ऋतु पञ्चपर्वा होते हैं। श्लोक में पञ्चदशाष्टमौ यह प्रयोग वृत्त के

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुरोध से किया गया है। इस प्रकार इस श्लोक में 'पञ्चवर्षाणाम्' और 'पञ्चदशेऽष्टमौ' ऐसे पाठों की पूर्वव्याख्याताओं से की गई कल्पना निरर्थक ही है।

यद्यपि ऋतुलक्षणानुसार ऋतु का आरम्भ किस दिन में होता है यह निर्णय दुष्कर है, यह बात श्रुति में भी कही गई है (आत्रेय-तैत्तिरीय-कृष्णयजुर्वेदसंहिता ६।५।३।१-२, माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-शतपथब्राह्मण ४।३।१।७)। कल्पसूत्र में भी ऋतुमुखों के दुर्ज्ञेयत्व के सूचक के रूप में ऋतुपात्र का निर्माण करने की व्यवस्था है (कात्यायनश्रौतसूत्र ९।२।१३)। [ऋतुपात्र के उभयतोमुखता के विधान के प्रयोजन को न समझकर महामहोपाध्याय विद्याधर गौड ने व्याख्यान किया है, कर्क और देवयाज्ञिक ने तो उस प्रकार का अयुक्त व्याख्यान नहीं किया हैं।] इस प्रकार ऋतुमुख का दुर्निरूपत्व यज्ञप्रक्रिया से भी सूचित ही है, तथापि श्रुतिस्मृतिकृत ऋतुविधान के निर्वाह के लिए सौरचान्द्र और शुद्ध सौर ऋतुमुखों की व्यवस्था प्रस्तुत वेदाङ्गज्योतिषशास्त्र में लगधमुनि ने प्रतिपादित की है।।११।।

[पक्षद्युहानव्यवस्था और पादपरिभाषादि]

द्यु हेयं पर्व चेत् पादे पादस् त्रिंशत् तु सैकिका।
भागात्मनाऽपमृज्याऽंशान् निर्दिशेदधिको यदि ।।१२।।

यदि अहोरात्र के पाद (प्रथम चतुर्थांश) में किसी पर्व (पक्ष) की समाप्ति होती है तो उस पर्व (पक्ष) के एक दिन (चतुर्दशी तिथि) को छोडना (टूटाना) चाहिए। अर्थात् उस पक्ष में चतुर्दशी न रखकर त्रयोदशी के बाद अमावास्या मानकर एक दिन छोडकरके १४ दिनों का ही एक पक्ष मानना चाहिए। १२४ अंशवाले अहोरात्र का पाद ३१ अंशों से परिमित होता है ($\frac{३१}{१२४}$)। गत पर्वों के अन्तों के अहोरात्रांशो को सङ्कलित करके यदि वह सङ्कलित अहोरात्रांशसमूह एक अहोरात्र के पूर्ण अंशों से (१२४ अंशों से) अधिक होता है तो उसको अहोरात्र के पूर्ण अंशों की सङ्ख्या से तष्ट (विभक्त) करके अवशिष्ट अंशों का निर्देश करे।

अथवा वक्ष्यमाण **"अतीतपर्वभागेभ्यः शोधयेद् द्विगुणां तिथिम्"** (श्लो. २२) इस श्लोक में बताए गए प्रकार से ज्ञात दिनांशरूप पर्व की समाप्तिकाल को लेकर 'यदि अहोरात्र के पाद (प्रथम चतुर्थांश) में किसी पर्व (पक्ष) की समाप्ति होती है तो उस पर्व (पक्ष) के एक दिन (चतुर्दशी तिथि) को छोडना (टूटाना) चाहिए' यह बात कही गई है। वहाँ यदि घटाए जानेवाले दिनांशराशि अतीत पर्व के दिनांशराशि से अधिक हो तो अतीत पर्व के भागों को सम्पूर्ण

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भागात्मक राशि (१२४) से जोड कर अतीतपर्वदिनांशराशि बनाकर उस राशि से द्विगुणित तिथि को घटाने पर अवशिष्ट अंशों को उस दिन के पर्वसमाप्त्यंश के - रूप में निर्देश करे।

जैसे आदियुग के चतुर्थ पर्व में पर्वभाग ४ हैं, पञ्चम पर्व में घटाए जानेवाले भाग ३० हैं। वहाँ अतीतपर्वभाग को सम्पूर्णभागात्मक राशि (१२४) से जोडने पर ४+१२४=१२८, उसके बाद उस राशि से उस पञ्चम पर्व के द्विगुणित तिथिरूप (अधिक) राशि को घटाने पर १२८–३०=९८, अतः ये ही पाँचवें पर्व की समाप्ति के भाग (सावनदिनांश) के रूप में निर्देश्य भाग हैं। (प्रस्तुत श्लोक की हमारी व्याख्या का स्पष्टतया अवबोध के लिए धनिष्ठादि में सूर्योदयकाल में शुक्लपक्षप्रतिपदारम्भ में उदगयन के आदि में प्रवृत्त होनेवाले पञ्चवर्षात्मक आदियुग के १२४ पर्वों के (१२४ पक्षों के) सम्बद्ध सावनदिनों में समातिकाल की प्रदर्शिका सारणी अधोलिखित है। इस सारणी में पर्वनक्षत्र और पर्व की समाप्ति के नक्षत्र के अंश भी दिए गए हैं–

(१) $१४\frac{९४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १५ वें दिन में उपवसथ, १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। ($१४\frac{७३}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १४ नक्षत्र बीतकर मघा नक्षत्र का ७३ वाँ अंश बीतने पर प्रथम पर्व की समाप्ति)।

(२) $२९\frac{६४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ३० वें दिन में उपवसथ, ३१ वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। ($२९\frac{२२}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से २९ नक्षत्र बीतकर पूर्वभद्रपद नक्षत्र का २२ वाँ अंश बीतने पर द्वितीय पर्व की समाप्ति)।

(३) $४४\frac{३४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ४५वें दिन में उपवसथ, ४६वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। ($४३\frac{९५}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ४३ नक्षत्र बीतकर उत्तरफल्गुनी के ९५ अंश बीतने पर तृतीय पर्व की समाप्ति)।

(४) $५९\frac{४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ५९वें दिन में उपवसथ, ६०वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में दर्शेष्टि। ($५८\frac{४४}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ५८ नक्षत्र बीतकर रेवती के ४४ अंश बीतने पर चतुर्थ पर्व की समाप्ति)।

Prof. Ambodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(५) $७३\frac{९८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ७४वें दिन में उपवसथ, ७५वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। ($७२\frac{११७}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ७२ नक्षत्र बीतकर चित्रा नक्षत्र का ११७ वाँ अंश बीतने पर पञ्चम पर्व की समाप्ति)।

(६) $८८\frac{६८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ८९वें दिन में उपवसथ, ९०वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। ($८७\frac{६६}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ८७ नक्षत्र बीतकर अपभरणी नक्षत्र का ६६ वाँ अंश बीतने पर षष्ठ पर्व की समाप्ति)।

(७) $१०३\frac{३८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १०४वें दिन में उपवसथ, १०५वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। ($१०२\frac{१५}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १०२ नक्षत्र बीतकर अनुराधा नक्षत्र का १५वाँ अंश बीतने पर सप्तम पर्व की समाप्ति)।

(८) $११८\frac{८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ११८वें दिन में उपवसथ, ११९वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में दर्शेष्टि। ($११६\frac{८८}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ११६ नक्षत्र बीतकर रोहिणी नक्षत्र का ८८ वाँ अंश बीतने पर अष्टम पर्व की समाप्ति)।

(९) $१३२\frac{१०२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १३३वें दिन में उपवसथ, १३४वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। ($१३१\frac{३७}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १३१ नक्षत्र बीतकर मूल नक्षत्र का ३७ वाँ अंश बीतने पर नवम पर्व की समाप्ति)।

(१०) $१४७\frac{७२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १४८वें दिन में उपवसथ, १४९वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। ($१४५\frac{११०}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १४५ नक्षत्र बीतकर आर्द्रा नक्षत्र का ११० वाँ अंश बीतने पर दशम पर्व की समाप्ति)।

(११) $१६२\frac{४२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १६३वें दिन में उपवसथ, १६४वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। ($१६०\frac{५९}{१२४}$ युग के आरम्भ

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १६० नक्षत्र बीतकर उत्तराषाढा नक्षत्र का ५९ वाँ अंश बीतने पर ग्यारहवें पर्व की समाप्ति)।

(१२) $१७७\frac{१२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १७७वें दिन में उपवसथ, १७८वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में दर्शेष्टि। ($१७५\frac{८}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १७५ नक्षत्र बीतकर आश्लेषा नक्षत्र का ८ वाँ अंश बीतने पर बारहवें पर्व की समाप्ति)।

(१३) $१९१\frac{१०६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १९२वें दिन में उपवसथ, १९३वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। ($१८९\frac{८१}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १८९ नक्षत्र बीतकर श्रविष्ठा (धनिष्ठा) नक्षत्र का ८१ वाँ अंश बीतने पर तेरहवें पर्व की समाप्ति)।

(१४) $२०६\frac{७६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से २०७वें दिन में उपवसथ, २०८वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। ($२०४\frac{३०}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से २०४ नक्षत्र बीतकर पूर्वफल्गुनी नक्षत्र का ३० वाँ अंश बीतने पर चौदहवें पर्व की समाप्ति)।

(१५) $२२१\frac{४६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से २२२वें दिन में उपवसथ, २२३वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। ($२१८\frac{१०३}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से २१८ नक्षत्र बीतकर पूर्वभद्रपद नक्षत्र का १०३ वाँ अंश बीतने पर पन्द्रहवें पर्व की समाप्ति)।

(१६) $२३६\frac{१६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से २३६वें दिन में उपवसथ, २३७वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में दर्शेष्टि। ($२३३\frac{५२}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से २३३ नक्षत्र बीतकर हस्त नक्षत्र का ५२ वाँ अंश बीतने पर सोलहवें पर्व की समाप्ति)।

(१७) $२५०\frac{११०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से २५१वें दिन में उपवसथ, २५२वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। ($२४८\frac{१}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से २४८ नक्षत्र बीतकर अश्विनी नक्षत्र का प्रथम अंश बीतने पर सत्रहवें पर्व की समाप्ति)।

Prof. Amodavardhana Kaundinyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१८) २६५$\frac{८०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से २६६वें दिन में उपवसथ, २६७वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (२६२$\frac{७४}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से २६२ नक्षत्र बीतकर स्वाति नक्षत्र का ७४ वाँ अंश बीतने पर अठारहवें पर्व की समाप्ति)।

(१९) २८०$\frac{५०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से २८१वें दिन में उपवसथ, २८२वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (२७७$\frac{२३}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से २७७ नक्षत्र बीतकर कृत्तिका नक्षत्र का २३ वाँ अंश बीतने पर उन्नीसवें पर्व की समाप्ति)।

(२०) २९५$\frac{२०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से २९५वें दिन में उपवसथ, २९६वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में दर्शेष्टि। (२९१$\frac{९६}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से २९१ नक्षत्र बीतकर अनुराधा नक्षत्र का ९६ वाँ अंश बीतने पर बीसवें पर्व की समाप्ति)।

(२१) ३०९$\frac{११४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ३१०वें दिन में उपवसथ, ३११वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (३०६$\frac{४५}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ३०६ नक्षत्र बीतकर मृगशीर्ष नक्षत्र का ४५ वाँ अंश बीतने पर इक्कीसवें पर्व की समाप्ति)।

(२२) ३२४$\frac{८४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ३२५वें दिन में उपवसथ, ३२६वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (३२०$\frac{११८}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ३२० नक्षत्र बीतकर मूलबर्हणी नक्षत्र का ११८ वाँ अंश बीतने पर बाईसवें पर्व की समाप्ति)।

(२३) ३३९$\frac{५४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ३४०वें दिन में उपवसथ, ३४१वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (३३५$\frac{६७}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ३३५ नक्षत्र बीतकर पुनर्वसु नक्षत्र का ६७ वाँ अंश बीतने पर तेईसवें पर्व की समाप्ति)।

(२४) ३५४$\frac{२४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ३५४वें दिन में उपवसथ, ३५५वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में दर्शेष्टि। (३५०$\frac{१६}{१२४}$ युग के आरम्भ में

Prof. Amodavardhana Kaundinyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ३५० नक्षत्र बीतकर श्रवण नक्षत्र का १६ वाँ अंश बीतने पर चौबीसवें पर्व की समाप्ति)।

(२५) ३६८$\frac{११८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ३६९वें दिन में उपवसथ, ३७०वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (३६४$\frac{८९}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ३६४ नक्षत्र बीतकर आश्लेषा नक्षत्र का ८९ वाँ अंश बीतने पर पचीसवें पर्व की समाप्ति)।

(२६) ३८३$\frac{८८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ३८४वें दिन में उपवसथ, ३८५वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (३७९$\frac{३८}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ३७९ नक्षत्र बीतकर शतभिषक् नक्षत्र का ३८ वाँ अंश बीतने पर छब्बीसवें पर्व की समाप्ति)।

(२७) ३९८$\frac{५८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ३९९वें दिन में उपवसथ, ४००वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (३९३$\frac{१११}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ३९३ नक्षत्र बीतकर पूर्वफल्गुनी नक्षत्र का १११ वाँ अंश बीतने पर सत्ताईसवें पर्व की समाप्ति)।

(२८) ४१३$\frac{२८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ४१३वें दिन में उपवसथ, ४१४वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में दर्शेष्टि। (४०८$\frac{६०}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ४०८ नक्षत्र बीतकर उत्तरभद्रपद नक्षत्र का ६० वाँ अंश बीतने पर अट्ठाईसवें पर्व की समाप्ति)।

(२९) ४२७$\frac{१२२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ४२८वें दिन में उपवसथ, ४२९वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (४२३$\frac{९}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ४२३ नक्षत्र बीतकर चित्रा नक्षत्र का ९ वाँ अंश बीतने पर उनतीसवें पर्व की समाप्ति)।

(३०) ४४२$\frac{९२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ४४३वें दिन में उपवसथ, ४४४वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (४३७$\frac{८२}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ४३७ नक्षत्र बीतकर अश्विनी नक्षत्र का ८२ वाँ अंश बीतने पर तीसवें पर्व की समाप्ति)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(३१) ४५७$\frac{६२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ४५८वें दिन में उपवसथ, ४५९वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (४५२$\frac{३१}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ४५२ नक्षत्र बीतकर विशाखा नक्षत्र का ३१ वाँ अंश बीतने पर इकत्तीसवें पर्व की समाप्ति)।

(३२) ४७२$\frac{३२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ४७३वें दिन में उपवसथ, ४७४वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (४६६$\frac{१०४}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ४६६ नक्षत्र बीतकर कृत्तिका नक्षत्र का १०४ वाँ अंश बीतने पर बत्तीसवें पर्व की समाप्ति)।

(३३) ४८७$\frac{२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ४८७वें दिन में उपवसथ, ४८८वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (४८१$\frac{५३}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ४८१ नक्षत्र बीतकर ज्येष्ठा नक्षत्र का ५३ वाँ अंश बीतने पर तेंतीसवें पर्व की समाप्ति)।

(३४) ५०१$\frac{९६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ५०२वें दिन में उपवसथ, ५०३वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (४९६$\frac{२}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ४९६ नक्षत्र बीतकर आर्द्रा नक्षत्र का दूसरा अंश बीतने पर चौतीसवें पर्व की समाप्ति)।

(३५) ५१६$\frac{६६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ५१७वें दिन में उपवसथ, ५१८वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (५१०$\frac{७५}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ५१० नक्षत्र बीतकर पूर्वाषाढा नक्षत्र का ७५ वाँ अंश बीतने पर पैंतीसवें पर्व की समाप्ति)।

(३६) ५३१$\frac{३६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ५३२वें दिन में उपवसथ, ५३३वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (५२५$\frac{२४}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ५२५ नक्षत्र बीतकर पुष्य के २४ वाँ अंश बीतने पर छत्तीसवें पर्व की समाप्ति)।

(३७) ५४६$\frac{६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ५४६वें दिन में उपवसथ, ५४७वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (५३९$\frac{९७}{१२४}$ युग के आरम्भ

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ५३९ नक्षत्र बीतकर श्रवण के ९७ वाँ अंश बीतने पर सैंतीसवें पर्व की समाप्ति)।

(३८) ५६०$\frac{१००}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ५६१वें दिन में उपवसथ, ५६२वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (५५४$\frac{४६}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ५५४ नक्षत्र बीतकर मघा नक्षत्र का ४६ वाँ अंश बीतने पर अडतीसवें पर्व की समाप्ति)।

(३९) ५७५$\frac{७०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ५७६वें दिन में उपवसथ, ५७७वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (५६८$\frac{११९}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ५६८ नक्षत्र बीतकर शतभिषक् नक्षत्र का ११९ वाँ अंश बीतने पर उनचालीसवें पर्व की समाप्ति)।

(४०) ५९०$\frac{४०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ५९१वें दिन में उपवसथ, ५९२वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (५८३$\frac{६८}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ५८३ नक्षत्र बीतकर उत्तरफल्गुनी नक्षत्र का ६८ वाँ अंश बीतने पर चालीसवें पर्व की समाप्ति)।

(४१) ६०५$\frac{१०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ६०५वें दिन में उपवसथ, ६०६वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (५९८$\frac{१७}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ५९८ नक्षत्र बीतकर रेवती नक्षत्र का १७ वाँ अंश बीतने पर एकतालीसवें पर्व की समाप्ति)।

(४२) ६१९$\frac{१०४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ६२०वें दिन में उपवसथ, ६२१वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (६१२$\frac{९०}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ६१२ नक्षत्र बीतकर चित्रा नक्षत्र का ९० वाँ अंश बीतने पर बयालीसवें पर्व की समाप्ति)।

(४३) ६३४$\frac{७४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ६३५वें दिन में उपवसथ, ६३६वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (६२७$\frac{३९}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ६२७ नक्षत्र बीतकर अपभरणी नक्षत्र का ३९ वाँ अंश बीतने पर तेंतालीसवें पर्व की समाप्ति)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(४४) ६४९$\frac{४४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ६५०वें दिन में उपवसथ, ६५१वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (६४१$\frac{११२}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ६४१ नक्षत्र बीतकर विशाखा नक्षत्र का ११२ वां अंश बीतने पर चौवालीसवें पर्व की समाप्ति)।

(४५) ६६४$\frac{१४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ६६४वें दिन में उपवसथ, ६६५वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (६५६$\frac{६१}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ६५६ नक्षत्र बीतकर रोहिणी नक्षत्र का ६१ वां अंश बीतने पर पैंतालीसवें पर्व की समाप्ति)।

(४६) ६७८$\frac{१०८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ६७९वें दिन में उपवसथ, ६८०वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (६७१$\frac{१०}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ६७१ नक्षत्र बीतकर मूलबर्हणी नक्षत्र का १० वां अंश बीतने पर छियालीसवें पर्व की समाप्ति)।

(४७) ६९३$\frac{७८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ६९४वें दिन में उपवसथ, ६९५वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (६८५$\frac{८३}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ६८५ नक्षत्र बीतकर आर्द्रा नक्षत्र का ८३ वां अंश बीतने पर सैंतालीसवें पर्व की समाप्ति)।

(४८) ७०८$\frac{४८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ७०९वें दिन में उपवसथ, ७१०वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (७००$\frac{३२}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ७०० नक्षत्र बीतकर उत्तराषाढा नक्षत्र का ३२ वां अंश बीतने पर अडतालीसवें पर्व की समाप्ति)।

(४९) ७२३$\frac{१८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ७२३वें दिन में उपवसथ, ७२४वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (७१४$\frac{१०५}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ७१४ नक्षत्र बीतकर पुष्य नक्षत्र का १०५ वां अंश बीतने पर उनचासवें पर्व की समाप्ति)।

(५०) ७३७$\frac{११२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ७३८वें दिन में उपवसथ, ७३९वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (७२९$\frac{५४}{१२४}$ युग के आरम्भ में

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ७२९ नक्षत्र बीतकर धनिष्ठा नक्षत्र का ५४ वाँ अंश बीतने पर पचासवें पर्व की समाप्ति)।

(५१) ७५२$\frac{८२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ७५३वें दिन में उपवसथ, ७५४वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (७४४$\frac{३}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ७४४ नक्षत्र बीतकर पूर्वफल्गुनी नक्षत्र का तीसरा अंश बीतने पर एक्यावनवें पर्व की समाप्ति)।

(५२) ७६७$\frac{५२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ७६८वें दिन में उपवसथ, ७६९वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (७५८$\frac{७६}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ७५८ नक्षत्र बीतकर पूर्वभद्रपद नक्षत्र का ७६ वाँ अंश बीतने पर बावनवें पर्व की समाप्ति)।

(५३)· ७८२$\frac{२२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ७८२वें दिन में उपवसथ, ७८३वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (७७३$\frac{२५}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ७७३ नक्षत्र बीतकर हस्त नक्षत्र का २५ वाँ अंश बीतने पर तिरपनवें पर्व की समाप्ति)।

(५४) ७९६$\frac{११६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ७९७वें दिन में उपवसथ, ७९८वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (७८७$\frac{९८}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ७८७ नक्षत्र बीतकर रेवती नक्षत्र का ९८ वाँ अंश बीतने पर चौवनवें पर्व की समाप्ति)।

(५५) ८११$\frac{८६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ८१२वें दिन में उपवसथ, ८१३वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (८०२$\frac{४७}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ८०२ नक्षत्र बीतकर स्वाति नक्षत्र का ४७ वाँ अंश बीतने पर पंचपनवें पर्व की समाप्ति)।

(५६) ८२६$\frac{५६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ८२७वें दिन में उपवसथ, ८२८वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (८१६$\frac{१२०}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ८१६ नक्षत्र बीतकर अपभरणी नक्षत्र का १२० वाँ अंश बीतने पर छप्पनवें पर्व की समाप्ति)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(५७) ८४१$\frac{२६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ८४१वें दिन में उपवसथ, ८४२वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (८३१$\frac{६९}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ८३१ नक्षत्र बीतकर अनुराधा नक्षत्र का ६९ वां अंश बीतने पर सत्तावनवें पर्व की समाप्ति)।

(५८) ८५५$\frac{१२०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ८५६वें दिन में उपवसथ, ८५७वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (८४६$\frac{१८}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ८४६ नक्षत्र बीतकर मृगशीर्ष नक्षत्र का १८ वां अंश बीतने पर अट्ठावनवें पर्व की समाप्ति)।

(५९) ८७०$\frac{९०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ८७१वें दिन में उपवसथ, ८७२वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (८६०$\frac{९१}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ८६० नक्षत्र बीतकर मूलबर्हिणी नक्षत्र का ९१ वाँ अंश बीतने पर उनसठवें पर्व की समाप्ति)।

(६०) ८८५$\frac{६०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ८८६वें दिन में उपवसथ, ८८७वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (८७५$\frac{४०}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ८७५ नक्षत्र बीतकर पुनर्वसु नक्षत्र का ४० वाँ अंश बीतने पर साठवें पर्व की समाप्ति)।

(६१) ९००$\frac{३०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ९००वें दिन में उपवसथ, ९०१वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (८८९$\frac{११३}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ८८९ नक्षत्र बीतकर उत्तराषाढा नक्षत्र का ११३ वाँ अंश बीतने पर एकसठवें पर्व की समाप्ति)।

(६२) ९१५ युग के आरम्भ के दिन से ९१५वें दिन में उपवसथ, ९१६वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (९०४$\frac{६२}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ९०४ नक्षत्र बीतकर आश्लेषा नक्षत्र का ६२ वाँ अंश बीतने पर बासठवें पर्व की समाप्ति)।

(६३) ९२९$\frac{९४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ९३०वें दिन में उपवसथ, ९३१वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (९१९$\frac{११}{१२४}$ युग के आरम्भ

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ९१९ नक्षत्र बीतकर शतभिषक् नक्षत्र का ११ वाँ अंश बीतने पर तिरसठवें पर्व की समाप्ति)।

(६४) ९४४$\frac{६४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ९४५वें दिन में उपवसथ, ९४६वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (९३३$\frac{८४}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ९३३ नक्षत्र बीतकर पूर्वफल्गुनी नक्षत्र का ८४ वाँ अंश बीतने पर चौसठवें पर्व की समाप्ति)।

(६५) ९५९$\frac{३४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ९६०वें दिन में उपवसथ, ९६१वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (९४८$\frac{३३}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ९४८ नक्षत्र बीतकर उत्तरभद्रपद नक्षत्र का ३३ वाँ अंश बीतने पर पैंसठवें पर्व की समाप्ति)।

(६६) ९७४$\frac{४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ९७४वें दिन में उपवसथ, ९७५वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में दर्शेष्टि। (९६२$\frac{१०६}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ९६२ नक्षत्र बीतकर हस्त नक्षत्र का १०६ वाँ अंश बीतने पर छासठवें पर्व की समाप्ति)।

(६७) ९८८$\frac{९८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ९८९वें दिन में उपवसथ, ९९०वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (९७७$\frac{५५}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ९७७ नक्षत्र बीतकर अश्विनी नक्षत्र का ५५ वाँ अंश बीतने पर सडसठवें पर्व की समाप्ति)।

(६८) १००३$\frac{६८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १००४वें दिन में उपवसथ, १००५वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (९९२$\frac{४}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ९९२ नक्षत्र बीतकर विशाखा नक्षत्र का चौथा अंश बीतने पर अडसठवें पर्व की समाप्ति)।

(६९) १०१८$\frac{३८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १०१९वें दिन में उपवसथ, १०२०वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१००६$\frac{७७}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १००६ नक्षत्र बीतकर कृत्तिका नक्षत्र का ७७ वाँ अंश बीतने पर उनहत्तरवें पर्व की समाप्ति)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(७०) १०३३$\frac{८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १०३३वें दिन में उपवसथ, १०३४वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में दर्शेष्टि। (१०२१$\frac{२६}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १०२१ नक्षत्र बीतकर ज्येष्ठा नक्षत्र का २६ वाँ अंश बीतने पर सत्तरवें पर्व की समाप्ति)।

(७१) १०४७$\frac{१०२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १०४८वें दिन में उपवसथ, १०४९वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१०३५$\frac{९९}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १०३५ नक्षत्र बीतकर मृगशीर्ष नक्षत्र का ९९ वाँ अंश बीतने पर एकहत्तरवें पर्व की समाप्ति)।

(७२) १०६२$\frac{७२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १०६३वें दिन में उपवसथ, १०६४वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१०५०$\frac{४८}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १०५० नक्षत्र बीतकर पूर्वाषाढा नक्षत्र का ४८ वाँ अंश बीतने पर बहत्तरवें पर्व की समाप्ति)।

(७३) १०७७$\frac{४२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १०७८वें दिन में उपवसथ, १०७९वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१०६४$\frac{१२१}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १०६४ नक्षत्र बीतकर पुनर्वसु नक्षत्र का १२१ वाँ अंश बीतने पर तिरहत्तरवें पर्व की समाप्ति)।

(७४) १०९२$\frac{१२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १०९२वें दिन में उपवसथ, १०९३वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में दर्शेष्टि। (१०७९$\frac{७०}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १०७९ नक्षत्र बीतकर श्रवण नक्षत्र का ७० वाँ अंश बीतने पर चौहत्तरवें पर्व की समाप्ति)।

(७५) ११०६$\frac{१०६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ११०७वें दिन में उपवसथ, ११०८वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१०९४$\frac{१९}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १०९४ नक्षत्र बीतकर मघा नक्षत्र का १९ वाँ अंश बीतने पर पचहत्तरवें पर्व की समाप्ति)।

(७६) ११२१$\frac{७६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ११२२वें दिन में उपवसथ, ११२३वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (११०८$\frac{९२}{१२४}$ युग के

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ११०८ नक्षत्र बीतकर शतभिषक् नक्षत्र का ९२ वाँ अंश बीतने पर छिहत्तरवें पर्व की समाप्ति)।

(७७) ११३६$\frac{४६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ११३७वें दिन में उपवसथ, ११३८वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (११२३$\frac{४१}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ११२३ नक्षत्र बीतकर उत्तरफल्गुनी नक्षत्र का ४१ वाँ अंश बीतने पर सतहत्तरवें पर्व की समाप्ति)।

(७८) ११५१$\frac{१६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ११५१वें दिन में उपवसथ, ११५२वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में दर्शेष्टि। (११३७$\frac{११४}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ११३७ नक्षत्र बीतकर उत्तरभद्रपद नक्षत्र का ११४ वाँ अंश बीतने पर अठहत्तरवें पर्व की समाप्ति)।

(७९) ११६५$\frac{११०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ११६६वें दिन में उपवसथ, ११६७वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (११५२$\frac{६३}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ११५२ नक्षत्र बीतकर चित्रा नक्षत्र का ६३ वाँ अंश बीतने पर उनासीवें पर्व की समाप्ति)।

(८०) ११८०$\frac{८०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ११८१वें दिन में उपवसथ, ११८२वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (११६७$\frac{१२}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ११६७ नक्षत्र बीतकर अपभरणी नक्षत्र का १२ वाँ अंश बीतने पर असीवें पर्व की समाप्ति)।

(८१) ११९५$\frac{५०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से ११९६वें दिन में उपवसथ, ११९७वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (११८१$\frac{८५}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ११८१ नक्षत्र बीतकर विशाखा नक्षत्र का ८५ वाँ अंश बीतने पर इक्यासीवें पर्व की समाप्ति)।

(८२) १२१०$\frac{२०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १२१०वें दिन में उपवसथ, १२११वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में दर्शेष्टि। (११९६$\frac{३४}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से ११९६ नक्षत्र बीतकर रोहिणी नक्षत्र का ३४ वाँ अंश बीतने पर ब्यासीवें पर्व की समाप्ति)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(८३) १२२४$\frac{११४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १२२५वें दिन में उपवसथ, १२२६वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१२१०$\frac{१०७}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १२१० नक्षत्र बीतकर ज्येष्ठा नक्षत्र का १०७ वाँ अंश बीतने पर तिरासीवें पर्व की समाप्ति)।

(८४) १२३९$\frac{८४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १२४०वें दिन में उपवसथ, १२४१वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१२२५$\frac{५६}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १२२५ नक्षत्र बीतकर आर्द्रा नक्षत्र का ५६ वाँ अंश बीतने पर चौरासीवें पर्व की समाप्ति)।

(८५) १२५४$\frac{५४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १२५५वें दिन में उपवसथ, १२५६वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१२४०$\frac{५}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १२४० नक्षत्र बीतकर उत्तराषाढा नक्षत्र का पञ्चम अंश बीतने पर पचासीवें पर्व की समाप्ति)।

(८६) १२६९$\frac{२४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १२६९वें दिन में उपवसथ, १२७०वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में दर्शेष्टि। (१२५४$\frac{७८}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १२५४ नक्षत्र बीतकर पुष्य नक्षत्र का ७८ वाँ अंश बीतने पर छियासीवें पर्व की समाप्ति)।

(८७) १२८३$\frac{११८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १२८४वें दिन में उपवसथ, १२८५वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१२६९$\frac{२७}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १२६९ नक्षत्र बीतकर श्रविष्ठा (धनिष्ठा) नक्षत्र का २७ वाँ अंश बीतने पर सतासीवें पर्व की समाप्ति)।

(८८) १२९८$\frac{८८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १२९९वें दिन में उपवसथ, १३००वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१२८३$\frac{१००}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १२८३ नक्षत्र बीतकर मघा नक्षत्र का १०० वाँ अंश बीतने पर अठासीवें पर्व की समाप्ति)।

(८९) १३१३$\frac{५८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १३१४वें दिन में उपवसथ, १३१५वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१२९८$\frac{४९}{१२४}$ युग के

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १२९८ नक्षत्र बीतकर पूर्वभद्रपद नक्षत्र का ४९ वाँ अंश बीतने पर नवासीवें पर्व की समाप्ति)।

(९०) १३२८$\frac{२८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १३२८वें दिन में उपवसथ, १३२९वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में दर्शेष्टि। (१३१२$\frac{१२२}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १३१२ नक्षत्र बीतकर उत्तरफल्गुनी नक्षत्र का १२२ वाँ अंश बीतने पर नब्बेवें पर्व की समाप्ति)।

(९१) १३४२$\frac{१२२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १३४३वें दिन में उपवसथ, १३४४वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१३२७$\frac{७१}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १३२७ नक्षत्र बीतकर रेवती नक्षत्र का ७१ वाँ अंश बीतने पर एक्यानबेवें पर्व की समाप्ति)।

(९२) १३५७$\frac{९२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १३५८वें दिन में उपवसथ, १३५९वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१३४२$\frac{२०}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १३४२ नक्षत्र बीतकर स्वाति नक्षत्र का २० वाँ अंश बीतने पर बानबेवें पर्व की समाप्ति)।

(९३) १३७२$\frac{६२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १३७३वें दिन में उपवसथ, १३७४वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१३५६$\frac{९३}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १३५६ नक्षत्र बीतकर अपभरणी नक्षत्र का ९३ वाँ अंश बीतने पर तिरानबेवें पर्व की समाप्ति)।

(९४) १३८७$\frac{३२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १३८८वें दिन में उपवसथ, १३९९वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१३७१$\frac{४२}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १३७१ नक्षत्र बीतकर अनुराधा नक्षत्र का ४२ वाँ अंश बीतने पर चौरानबेवें पर्व की समाप्ति)।

(९५) १४०२$\frac{२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १४०२वें दिन में उपवसथ, १४०३वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१३८५$\frac{११५}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १३८५ नक्षत्र बीतकर रोहिणी नक्षत्र का ११५ वाँ अंश बीतने पर पञ्चानबेवें पर्व की समाप्ति)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(९६) १४१६$\frac{९६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १४१७वें दिन में उपवसथ, १४१८वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१४००$\frac{६४}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १४०० नक्षत्र बीतकर मूलबर्हिणी नक्षत्र का ६४ वाँ अंश बीतने पर छानबेवें पर्व की समाप्ति)।

(९७) १४३१$\frac{६६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १४३२वें दिन में उपवसथ, १४३३वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१४१५$\frac{१३}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १४१५ नक्षत्र बीतकर पुनर्वसु नक्षत्र का तेरहवाँ अंश बीतने पर सत्तानबेवें पर्व की समाप्ति)।

(९८) १४४६$\frac{३६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १४४७वें दिन में उपवसथ, १४४८वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१४२९$\frac{८६}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १४२९ नक्षत्र बीतकर उत्तराषाढा नक्षत्र का ८६ वाँ अंश बीतने पर अट्ठानबेवें पर्व की समाप्ति)।

(९९) १४६१$\frac{६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १४६१वें दिन में उपवसथ, १४६२वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१४४४$\frac{३५}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १४४४ नक्षत्र बीतकर आश्लेषा नक्षत्र का ३५ वाँ अंश बीतने पर निन्यानबेवें पर्व की समाप्ति)।

(१००) १४७५$\frac{१००}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १४७६वें दिन में उपवसथ, १४७७वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१४५८$\frac{१०८}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १४५८ नक्षत्र बीतकर श्रविष्ठा (धनिष्ठा) नक्षत्र का १०८ वाँ अंश बीतने पर सौवें पर्व की समाप्ति)।

(१०१) १४९०$\frac{७०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १४९१वें दिन में उपवसथ, १४९२वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१४७३$\frac{५७}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १४७३ नक्षत्र बीतकर पूर्वफल्गुनी नक्षत्र का ५७ वाँ अंश बीतने पर १०१वें पर्व की समाप्ति)।

Prof. Amodavardhana Kaundinhyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१०२) १५०५$\frac{४०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १५०६वें दिन में उपवसथ, १५०७वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१४८८$\frac{६}{१२४}$ युगं के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १४८८ नक्षत्र बीतकर उत्तरभद्रपद नक्षत्र का छठा अंश बीतने पर १०२वें पर्व की समाप्ति)।

(१०३) १५२०$\frac{१०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १५२०वें दिन में उपवसथ, १५२१वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१५०२$\frac{७९}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १५०२ नक्षत्र बीतकर हस्त नक्षत्र का ७९ वाँ अंश बीतने पर १०३वें पर्व की समाप्ति)।

(१०४) १५३४$\frac{१०४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १५३५वें दिन में उपवसथ, १५३६वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१५१७$\frac{२८}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १५१७ नक्षत्र बीतकर अश्विनी नक्षत्र का २८ वाँ अंश बीतने पर १०४वें पर्व की समाप्ति)।

(१०५) १५४९$\frac{७४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १५५०वें दिन में उपवसथ, १५५१वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१५३१$\frac{१०१}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १५३१ नक्षत्र बीतकर स्वाति नक्षत्र का १०१ वाँ अंश बीतने पर एक सौ पाँचवें पर्व की समाप्ति)।

(१०६) १५६४$\frac{४४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १५६५वें दिन में उपवसथ, १५६६वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१५४६$\frac{५०}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १५४६ नक्षत्र बीतकर कृत्तिका नक्षत्र का ५० वाँ अंश बीतने पर एक सौ छःवें पर्व की समाप्ति)।

(१०७) १५७९$\frac{१४}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १५७९वें दिन में उपवसथ, १५८०वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१५६०$\frac{१२३}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १५६० नक्षत्र बीतकर अनुराधा नक्षत्र का १२३ वाँ अंश बीतने पर एक सौ सातवें पर्व की समाप्ति)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१०८) १५९३$\frac{१०८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १५९४वें दिन में उपवसथ, १५९५वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१५७५$\frac{७२}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १५७५ नक्षत्र बीतकर मृगशीर्ष नक्षत्र का ७२ वाँ अंश बीतने पर एक सौ आठवें पर्व की समाप्ति)।

(१०९) १६०८$\frac{७८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १६०९वें दिन में उपवसथ, १६१०वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१५९०$\frac{२१}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १५९० नक्षत्र बीतकर पूर्वाषाढा नक्षत्र का २१ वाँ अंश बीतने पर एक सौ नौवें पर्व की समाप्ति)।

(११०) १६२३$\frac{४८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १६२४वें दिन में उपवसथ, १६२५वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१६०४$\frac{९४}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १६०४ नक्षत्र बीतकर पुनर्वसु नक्षत्र का ९४ वाँ अंश बीतने पर एक सौ दसवें पर्व की समाप्ति)।

(१११) १६३८$\frac{१८}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १६३८वें दिन में उपवसथ, १६३९वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१६१९$\frac{४३}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १६१९ नक्षत्र बीतकर श्रवण नक्षत्र का ४३ वाँ अंश बीतने पर एक सौ ग्यारहवें पर्व की समाप्ति)।

(११२) १६५२$\frac{११२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १६५३वें दिन में उपवसथ, १६५४वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१६३३$\frac{११६}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १६३३ नक्षत्र बीतकर आश्लेषा नक्षत्र का ११६ वाँ अंश बीतने पर एक सौ बारहवें पर्व की समाप्ति)।

(११३) १६६७$\frac{८२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १६६८वें दिन में उपवसथ, १६६९वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१६४८$\frac{६५}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १६४८ नक्षत्र बीतकर शतभिषक् नक्षत्र का ६५ वाँ अंश बीतने पर एक सौ तेरहवें पर्व की समाप्ति)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(११४) १६८२$\frac{५२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १६८३वें दिन में उपवसथ, १६८४वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१६६३$\frac{१४}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १६६३ नक्षत्र बीतकर उत्तरफल्गुनी नक्षत्र का चैदहवाँ अंश बीतने पर एक सौ चौदहवें पर्व की समाप्ति)।

(११५) १६९७$\frac{२२}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १६९७वें दिन में उपवसथ, १६९८वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१६७७$\frac{८७}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १६७७ नक्षत्र बीतकर उत्तरभद्रपद नक्षत्र का ८७ वाँ अंश बीतने पर एक सौ पन्द्रहवें पर्व की समाप्ति)।

(११६) १७११$\frac{११६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १७१२वें दिन में उपवसथ, १७१३वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१६९२$\frac{३६}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १६९२ नक्षत्र बीतकर चित्रा नक्षत्र का ३६ वाँ अंश बीतने पर एक सौ सोलहवें पर्व की समाप्ति)।

(११७) १७२६$\frac{८६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १७२७वें दिन में उपवसथ, १७२८वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१७०६$\frac{१०९}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १७०६ नक्षत्र बीतकर अश्विनी नक्षत्र का १०९ वाँ अंश बीतने पर एक सौ सत्रहवें पर्व की समाप्ति)।

(११८) १७४१$\frac{५६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १७४२वें दिन में उपवसथ, १७४३वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१७२१$\frac{५८}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १७२१ नक्षत्र बीतकर विशाखा नक्षत्र का ५८ वाँ अंश बीतने पर एक सौ अठारहवें पर्व की समाप्ति)।

(११९) १७५६$\frac{२६}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १७५६वें दिन में उपवसथ, १७५७वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१७३६$\frac{७}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १७३६ नक्षत्र बीतकर रोहिणी नक्षत्र का सातवाँ अंश बीतने पर एक सौ उन्नीसवें पर्व की समाप्ति)।

(१२०) १७७०$\frac{१२०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १७७१वें दिन में उपवसथ, १७७२वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१७५०$\frac{८०}{१२४}$ युग के

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १७५० नक्षत्र बीतकर ज्येष्ठा नक्षत्र का ८० वाँ अंश बीतने पर एक सौ बीसवें पर्व की समाप्ति)।

(१२१) १७८५$\frac{९०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १७८६वें दिन में उपवसथ, १७८७वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१७६५$\frac{२९}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १७६५ नक्षत्र बीतकर आर्द्रा नक्षत्र का २९ वाँ अंश बीतने पर एक सौ इक्कीसवें पर्व की समाप्ति)।

(१२२) १८००$\frac{६०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १८०१वें दिन में उपवसथ, १८०२वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१७७९$\frac{१०२}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १७७९ नक्षत्र बीतकर पूर्वाषाढा नक्षत्र का १०२ वाँ अंश बीतने पर एक सौ बाईसवें पर्व की समाप्ति)।

(१२३) १८१५$\frac{३०}{१२४}$ युग के आरम्भ के दिन से १८१५वें दिन में उपवसथ, १८१६वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १५ वें दिन में पूर्णमासेष्टि। (१७९४$\frac{५१}{१२४}$ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १७९४ नक्षत्र बीतकर पुष्य नक्षत्र का ५१ वाँ अंश बीतने पर एक सौ तेईसवें पर्व की समाप्ति)।

(१२४) १८३० युग के आरम्भ के दिन से १८३० वें दिन में उपवसथ, १८३१ वें दिन में पूर्ववर्ती इष्टिदिन से १६ वें दिन में दर्शेष्टि। (१८०९ युग के आरम्भ में स्थित धनिष्ठा नक्षत्र से १८०९ नक्षत्र बीतकर एक सौ चौबीसवें पर्व की समाप्ति)।

[**विशेष–** यहाँ पर वेदाङ्गज्योतिषोक्तगणितअनुसार १२४ पर्वों की समाप्ति १८३० सावन दिनों में, सूर्यसिद्धान्त के अनुसार मध्यम मान से १८३०.८९६४५ सावनदिनों में, आधुनिक दृक्सिद्ध गणित के अनुसार तो मध्यम मान से १८३०.८९६४८ सावनदिनों में (१८३१ वें दिन के १११.१६३५ अंश बीतने पर) होती है, वेदाङ्गज्योतिषोक्त गणित के अनुसार पक्ष का मान १४ सावनदिन और ९४ दिनांश (४५ घटिका २९$\frac{१}{३१}$ पल) होता है, आधुनिक गणित के अनुसार तो मध्यम मान से पक्ष का मान १४ सावन दिन और ९४$\frac{२६}{२९}$ दिनांश (४५ घटिका और ५५$\frac{३}{५०}$ पल) होता है, यह बात भी स्मरणीय है।]॥१२॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[पर्वराशिज्ञान का उपाय]

निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं चाऽऽप्तसंयुतम्।
षष्ट्याषष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरुच्यते ॥१३॥

युग के प्रथमादि वर्ष की एक से न्यून वर्षसङ्ख्या को बारह से गुणित करके प्राप्त फल को द्विगुणित करने पर उसमें वर्तमान वर्ष के प्राप्त (गत) पर्वों को मिला करके प्राप्त पर्वसङ्ख्या साठ से ऊपर होने पर प्रत्येक साठ में दोदो मिलाने से प्राप्त सङ्ख्या पर्वराशि (गतपर्वसङ्ख्या) कहा जाता है।

उदाहरण– पञ्चवर्षात्मक युग के तृतीय वर्ष में अष्टममास के अन्त में पर्वराशि ज्ञेय है, वहाँ वर्तमानवर्षसङ्ख्या ३, उसमें एक घटाने पर ३–१=२, बारह से गुणन करने पर २×१२=२४, उसको द्विगुणित करने पर २४×२=४८, वर्तमान वर्ष में अष्टम मास के अन्त में गत पर्व (८×२=)१६, उसको भी मिलाने पर ४८+१६=६४, उसमें एक षष्टिपर्वसमूह घुसा है, अतः एक वार दो जोडने पर ६४+२=६६। इस प्रकार तृतीय वर्ष के अष्टम मास के अन्त में (नभस्यमास की अमावास्या में) पर्वराशि ६६। [पर्वराशि का ज्ञान पर्वभांश, पर्वनक्षत्र इत्यादि के ज्ञान के लिए आवश्यक होता है]।

विशेष– इस श्लोक में शङ्करबालकृष्ण दीक्षित का, छोटेलाल बार्हस्पत्य का और सुधाकर द्विवेदी का व्याख्यान ही यथार्थ है, शामशास्त्री का व्याख्यान सर्वथा अयुक्तियुक्त है। पूर्ववर्ती व्याख्याताओं से किए गए सही व्याख्यान को भी ठीक से समझे विना असाधु कहना शामशास्त्री का सर्वथा अनुचित कार्य है। शामशास्त्री ने $१४\frac{७३}{१२४}$ को पर्वध्रुवराशि (पर्वानयनराशि अथवा पर्वराशि) कहा है और इस श्लोक में पर्वध्रुवराशि का प्रतिपादन मानकर व्याख्यान किया है। किन्तु वह व्याख्यान सर्वथा अयुक्तियुक्त दीखता है। पर्वध्रुवराशि की अवधारणा का वेदाङ्गज्योतिष में सर्वथा अभाव है॥१३॥

[मतभेद से पर्वसम्मित काल]

स्युः पादोर्ध्वं त्रिपद्यायास् त्रिर् द्व्येकेऽह्नः कृते स्थितिम्।
साम्येनेन्दोः स्तृणोऽन्ये तु पञ्चकाः पर्वसम्मिताः ॥१४॥

पञ्चदशी के चतुर्थ पाद के अंश से ऊपर रहते हुए भी दिन के दो भागों में से प्रथम भाग में अपनी स्थिति बनानेवाले प्रतिपदा के तीन पाद (प्रतिपदा के

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आद्य तीन पादों में से कोई भी पाद) पर्वतुल्य (पर्वकृत्य के लिए अर्थात् याग के लिए योग्य) होते हैं। अन्य कोई मुनि लोग तो चन्द्रमा के स्थिति के अनुकूलता से जावादि पद्य (श्लो.१८) में बताए गए नक्षत्रों के पञ्चक पर्वतुल्य (पर्वकृत्य के लिए अर्थात् याग के लिए योग्य) होते हैं, ऐसा मानते हैं।

विशेष– इस श्लोक में लगधमुनि मुख्य पक्ष के रूप में चन्द्रस्थिति-विशेषानुकूल तिथिविशेष का ही पक्षान्तेष्टि के लिए विशेष ग्राह्यता बताकर अन्य मुनिमत में नक्षत्रविशेषों के विचार से भी पर्वान्तेष्टिकाल निरूपित होने की बात बताते हैं॥१४॥

[पर्वान्त में सूर्य और चन्द्र से अथवा चन्द्र से भुक्त भांशों के ज्ञान का उपाय]

भाऽंशाः स्युरष्टकाः कार्याः पक्षद्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणश् चोनः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि॥१५॥

बारह पक्षों के समूह के भांशों के योग से प्राप्त भांश आठ-आठ के समूह में होते हैं (प्रतिपक्ष पक्षान्त में रहनेवाले पूर्ण नक्षत्रातिरिक्त ७३ भांशों के योग से प्रत्येक बारह पक्षों के अन्त में प्राप्त पूर्णनक्षत्रातिरिक्त भांश [७३×१२=८७६÷१२४= $७\frac{८}{१२४}$] ८ होते हैं, अतः प्रत्येक बारह पक्षों के समूहों के लिए आठ-आठ भांश लेना चाहिए)। ऊन पक्ष अर्थात् बारह से न्यूनसङ्ख्या के पक्षों के भांशों के ज्ञान के लिए ऊनपक्षसङ्ख्या को ग्यारह से गुणन करना चाहिए, यदि यह न्यूनसङ्ख्या का पक्ष शुक्लपक्ष है और चन्द्रमा से भुक्त भांश का ज्ञान अपेक्षित है तो उसमें नक्षत्र का पूर्ण भांशों का (१२४का) आधा (६२) भी जोडना चाहिए।

उदाहरण– धनिष्ठादि पञ्चवर्षात्मक आदियुग के चौदहवें पक्ष के अन्त में सूर्यचन्द्रभुक्तभांश का ज्ञान आवश्यक हो तो वहाँ गत पक्षद्वादशक (बारह पक्षों का समूह) १, उसका आठ से गुणन करने पर १×८=८, वहाँ ऊनपक्ष[१] दो हैं (१४–१२=२), उनका ग्यारह से गुणन करने पर २×११=२२, जोडने पर भांश ८+२२=३०, इन्हीं को चौदहवें पक्ष के अन्त में सूर्य और चन्द्र से भुक्त भांश जानना चाहिए। अर्थात् चौदहवें पक्ष के अन्त में सूर्य और चन्द्र किसी नक्षत्र के

---

१. बारह से पूर्ववर्ती तथा बारह से भाग देने पर अवशिष्ट होनेवाले पक्ष को वेदाङ्ग-ज्योतिष में ऊनपक्ष कहा गया है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३० अंशों को पार करेंगे, ऐसा इस श्लोक में वर्णित सूत्र से सरलता से जाना जा सकता है। [उस पक्ष के अन्त में नक्षत्र कौन होगा यह तो वक्ष्यमाण रीति (श्लो. १७) से जानना चाहिए। जैसे वहाँ पर्वभांश ३० हैं, अतः उनको भसमूह (२७) से भाग देने पर $\frac{३०}{२७}=१\frac{३}{२७}$ होगा, अतः जावादिक्रम[1] में तीसरे स्थान में स्थित पूर्वफल्गुनी नक्षत्र उस पर्वान्त में होगा। अतः पूर्वफल्गुनी नक्षत्र का ३० अंश व्यतीत होने पर पूर्वोक्त चौदहवें पक्ष की समाप्ति होगी ऐसा जानना चाहिए]।

आदियुग के उनतीसवें पक्ष के अन्त में चन्द्रभुक्तभांश का ज्ञान आवश्यक हो तो वहाँ गत पक्षद्वादशक २, उनका आठ से गुणन करने पर २×८=१६, वहाँ ऊनपक्ष (बारह से कम पक्ष) पाँच होने (२९-२४=५) से ५×११=५५, जोडने पर भांश १६+५५=७१, उनतीसवाँ पक्ष शुक्लपक्ष होने से भांशार्ध को जोडने पर ७१+६२=१३३, वहाँ १२४ सङ्ख्या के घटाने पर १३३-१२४=९, इन्हीं को उनतीसवें पक्ष के अन्त में चन्द्र से भुक्त भांश जानना चाहिए। अर्थात् उनतीसवें पक्ष के अन्त में चन्द्रमा को किसी नक्षत्र का ९ अंश को पार करके स्थित जानना चाहिए, ऐसा इस सूत्र से अवगत होता है। [उस पक्ष के अन्त में नक्षत्र कौन होगा यह तो वक्ष्यमाण रीति से जानना चाहिए। जैसे वहाँ पर्वभांश ९ हैं, अतः जावादिक्रम में नौवें स्थान में स्थित चित्रा नक्षत्र उस पर्वान्त में होगा। अतः चित्रा नक्षत्र का ९ अंश व्यतीत होने पर पूर्वोक्त उनतीसवें पक्ष की समाप्ति होगी, ऐसा जानना चाहिए]। इसी प्रकार इष्ट अन्य पक्ष के पर्वभांश को जानना चाहिए।

विशेष– इस श्लोक में प्रदर्शित सूत्र से लाए गए **आदियुग** के सम्पूर्ण १२४ पक्षों के पर्वभांश और वक्ष्यमाण प्रकार (श्लो.१७) से ज्ञेय पर्वनक्षत्र की सारणी अधोनिर्दिष्ट है–

(१) (११×१)+६२=७३भांश [७३-(२७×२)=१९ होने से जावादिक्रम में उन्नीसवें नक्षत्र मघा का ७३ वाँ अंश बीतने पर पहले पर्व की समाप्ति होती है]।

(२) ११×२=२२भांश [जावादिक्रम में बाईसवें नक्षत्र पूर्वभद्रपद का २२ वाँ अंश बीतने पर दूसरे पर्व की समाप्ति होती है]।

---

१. **'जौ द्रा गः खे'** इत्यादि श्लोक (वे.ज्यो., श्लो.१८) में प्रदर्शित अश्विनी, आर्द्रा, पूर्वफल्गुनी, विशाखा इत्यादि क्रम।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(३) (११×३)+६२=९५भांश [९५-(२७×३)=१४ होने से जावादिक्रम में १४ वें नक्षत्र उत्तरफल्गुनी का ९५ वाँ अंश बीतने पर तीसरे पर्व की समाप्ति होती है]।

(४) ११×४=४४भांश [४४-२७=१७ होने से जावादिक्रम में सत्रहवें नक्षत्र रेवती का ४४ वाँ अंश बीतने पर चौथे पर्व की समाप्ति होती है]।

(५) (११×५)+६२=११७भांश [११७-(२७×४)=९ होने से जावादिक्रम में नौवें नक्षत्र चित्रा का ११७ वाँ अंश बीतने पर पाँचवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(६) ११×६=६६भांश [६६-(२७×२)=१२ होने से जावादिक्रम में बारहवें नक्षत्र अपभरणी का ६६ वाँ अंश बीतने पर छठे पर्व की समाप्ति होती है]।

(७) (११×७)+६२=१३९-१२४=१५भांश [जावादिक्रम में पन्द्रहवें नक्षत्र अनुराधा का १५ वाँ अंश बीतने पर सातवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(८) ११×८=८८भांश [८८-(२७×३)=७ होने से जावादिक्रम में सातवें नक्षत्र रोहिणी का ८८ वाँ अंश बीतने पर आठवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(९) (११×९)+६२=१६१-१२४=३७भांश [३७-२७=१० होने से जावादिक्रम में दसवें नक्षत्र मूलबर्हणी का ३७ वाँ अंश बीतने पर नौवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१०) ११×१०=११०भांश [११०-(२७×४)=२ होने से जावादिक्रम में दूसरे नक्षत्र आर्द्रा का ११० वाँ अंश बीतने पर दसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(११) (११×११)+६२=१८३-१२४=५९भांश [५९-(२७×२)=५ होने से जावादिक्रम में पाँचवें नक्षत्र उत्तराषाढा का ५९ वाँ अंश बीतने पर ग्यारहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१२) ८×१=८भांश [जावादिक्रम में आठवें नक्षत्र आश्लेषा का ८ वाँ अंश बीतने पर बारहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१३) (८×१)+(११×१)+६२=८१भांश [८१-(२७×२)=२७ होने से जावादिक्रम में सत्ताईसवें नक्षत्र श्रविष्ठा (धनिष्ठा) का ८१ वाँ अंश बीतने पर तेरहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१४) (८×१)+(११×२)=३०भांश [३०-२७=३ होने से जावादिक्रम में तीसरे नक्षत्र पूर्वफल्गुनी का ३० वाँ अंश बीतने पर चौदहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१५) (८×१)+(११×३)+६२=१०३भांश [१०३-(२७×३)=२२ होने से जावादिक्रम में बाईसवें नक्षत्र पूर्वभद्रपद का १०३ वाँ अंश बीतने पर पन्द्रहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१६) (८×१)+(११×४)=५२भांश [५२-२७=२५ होने से जावादिक्रम में पचीसवें नक्षत्र हस्त का ५२ वाँ अंश बीतने पर सोलहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१७) (८×१)+(११×५)+६२=१२५-१२४=१भांश [जावादिक्रम में पहले नक्षत्र अश्वयुक् (अश्विनी) का प्रथम अंश बीतने पर सत्रहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१८) (८×१)+(११×६)=७४भांश [७४-(२७×२)=२० होने से जावादि क्रंम में बीसवें नक्षत्र स्वाति का ७४ वाँ अंश बीतने पर अठारहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१९) (८×१)+(११×७)+६२=१४७-१२४=२३भांश [जावादिक्रम में तेईसवें नक्षत्र कृत्तिका का २३ वाँ अंश बीतने पर ऊनीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(२०) (८×१)+(११×८)=९६भांश [९६-(२७×३)=१५ होने से जावादिक्रम में पन्द्रहवें नक्षत्र अनुराधा का ९६ वाँ अंश बीतने पर बीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(२१) (८×१)+(११×९)+६२=१६९-१२४=४५भांश [४५-२७=१८ होने से जावादिक्रम में अठारहवें नक्षत्र मृगशीर्ष का ४५ वाँ अंश बीतने पर इक्कीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(२२) (८×१)+(११×१०)=११८भांश [११८-(२७×४)=१० होने से जावादिक्रम में दसवें नक्षत्र मूलबर्हणी का ११८ वाँ अंश बीतने पर बाईसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(२३) (८×१)+(११×११)+६२=१९१-१२४=६७भांश [६७-(२७×२)=१३ होने से जावादिक्रम में तेरहवें नक्षत्र पुनर्वसु का ६७ वाँ अंश बीतने पर तेईसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(२४) ८×२=१६भांश [जावादिक्रम में सोलहवें नक्षत्र श्रवण का १६ वाँ अंश बीतने पर चौबीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(२५) (८×२)+(११×१)+६२=८९भांश [८९-(२७×३)=८ होने से जावादिक्रम में आठवें नक्षत्र आश्लेषा का ८९ वाँ अंश बीतने पर पचीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(२६) (८×२)+(११×२)=३८भांश [३८-२७=११ होने से जावादिक्रम में ग्यारहवें नक्षत्र शतभिषक् का ३८ वाँ अंश बीतने पर छब्बीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(२७) (८×२)+(११×३)+६२=१११भांश [१११-(२७×४)=३ होने से जावादिक्रम में तीसरे नक्षत्र पूर्वफल्गुनी का १११ वाँ अंश बीतने पर सत्ताईसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(२८) (८×२)+(११×४)=६०भांश [६०-(२×२७)=६ होने से जावादिक्रम में छठे नक्षत्र उत्तरभद्रपद का ६० वाँ अंश बीतने पर अट्ठाईसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(२९) (८×२)+(११×५)+६२=१३३-१२४=९भांश [जावादिक्रम में नौवें नक्षत्र चित्रा के नवाँ अंश बीतने पर उनतीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(३०) (८×२)+(११×६)=८२भांश [८२-(२७×३)=१ होने से जावादिक्रम में पहले नक्षत्र अश्वयुक् (अश्विनी) का ८२ वाँ अंश बीतने पर तीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(३१) (८×२)+(११×७)+६२=१५५-१२४=३१भांश [३१-२७=४ होने से जावादिक्रम में चौथे नक्षत्र विशाखा का ३१ वाँ अंश बीतने पर एकतीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(३२) (८×२)+(११×८)=१०४भांश [१०४-(२७×३)=२३ होने से जावादिक्रम में तेईसवें नक्षत्र कृत्तिका का १०४ वाँ अंश बीतने पर बत्तीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(३३) (८×२)+(११×९)+६२=१७७-१२४=५३भांश [५३-२७=२६ होने से जावादि क्रम में छब्बीसवें नक्षत्र ज्येष्ठा का ५३ वाँ अंश बीतने पर तेंतीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(३४) (८×२)+(११×१०)=१२६-१२४=२भांश [जावादिक्रम में दूसरे नक्षत्र आर्द्रा का दूसरा अंश बीतने पर चौतीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(३५) (८×२)+(११×११)+६२=१९९-१२४=७५भांश [७५-(२७×२)=२१ होने से जावादिक्रम में इक्कीसवें नक्षत्र पूर्वाषाढा का ७५ वाँ अंश बीतने पर पैंतीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(३६) ८×३=२४भांश [जावादिक्रम में चौबीसवें नक्षत्र पुष्य का २४ वाँ अंश बीतने पर छत्तीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(३७) (८×३)+(११×१)+६२=९७भांश [९७-(२७×३)=१६ होने से जावादिक्रम में सोलहवें नक्षत्र श्रवण का ९७ वाँ अंश बीतने पर सैंतीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(३८) (८×३)+(११×२)=४६भांश [४६-२७=१९ होने से जावादिक्रम में उन्नीसवें नक्षत्र मघा का ४६ वाँ अंश बीतने पर अडतीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(३९) (८×३)+(११×३)+६२=११९भांश [११९-(२७×४)=११ होने से जावादिक्रम में ग्यारहवें नक्षत्र शतभिषक् का ११९ वाँ अंश बीतने पर उनचालीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(४०) (८×३)+(११×४)=६८भांश [६८-(२७×२)=१४ होने से जावादिक्रम में चौदहवें नक्षत्र उत्तरफल्गुनी का ६८ वाँ अंश बीतने पर चालीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(४१) (८×३)+(११×५)+६२=१४१-१२४=१७भांश [जावादिक्रम में सत्रहवें नक्षत्र रेवती का १७ वाँ अंश बीतने पर एकतालीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(४२) (८×३)+(११×६)=९०भांश [९०-(२७×३)=९ होने से जावादिक्रम में नौवें नक्षत्र चित्रा का ९० वाँ अंश बीतने पर बयालीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(४३) (८×३)+(११×७)+६२=१६३-१२४=३९भांश [३९-२७=१२ होने से जावादिक्रम में बारहवें नक्षत्र अपभरणी का ३९ वाँ अंश बीतने पर तैंतालीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(४४) (८×३)+(११×८)=११२भांश [११२-(२७×४)=४ होने से जावादिक्रम में चौथे नक्षत्र विशाखा का ११२ वाँ अंश बीतने पर चौवालीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(४५) (८×३)+(११×९)+६२=१८५-१२४=६१भांश [६१-(२७×२)=७ होने से जावादिक्रम में सातवें नक्षत्र रोहिणी का ६१ वाँ अंश बीतने पर पैंतालीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(४६) (८×३)+(११×१०)=१३४-१२४=१०भांश [जावादिक्रम में दसवें नक्षत्र मूलबर्हणी का १० वाँ अंश बीतने पर छियालीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(४७) (८×३)+(११×११)+६२=२०७-१२४=८३भांश [८३-(२७×३)=२ होने से जावादिक्रम में दूसरे नक्षत्र आर्द्रा का ८३ वाँ अंश बीतने पर सैंतालीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(४८) ८×४=३२भांश [३२-२७=५ होने से जावादिक्रम में पाँचवें नक्षत्र उत्तराषाढा का ३२ वाँ अंश बीतने पर अडतालीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(४९) (८×४)+(११×१)+६२=१०५भांश [१०५-(२७×३)=२४ होने से जावादिक्रम में चौबीसवें नक्षत्र पुष्य का १०५ वाँ अंश बीतने पर उनचासवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(५०) (८×४)+(११×२)=५४भांश [५४-२७=२७ होने से जावादिक्रम में सत्ताईसवें नक्षत्र श्रविष्ठा (धनिष्ठा) का ५४ वाँ अंश बीतने पर पचासवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(५१) (८×४)+(११×३)+६२=१२७-१२४=३भांश [जावादिक्रम में तीसरे नक्षत्र पूर्वफल्गुनी का तीसरा अंश बीतने पर एक्यावनवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(५२) (८×४)+(११×४)=७६भांश [७६-(२७×२)=२२ होने से जावादिक्रम में बाईसवें नक्षत्र पूर्वभद्रपद का ७६ वाँ अंश बीतने पर बावनवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(५३) (८×४)+(११×५)+६२=१४९-१२४=२५भांश [जावादिक्रम में पचीसवें नक्षत्र हस्त का २५ वाँ अंश बीतने पर तिरपनवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(५४) (८×४)+(११×६)=९८भांश [९८-(२७×३)=१७ होने से जावादिक्रम में सत्रहवें नक्षत्र रेवती का ९८ वाँ अंश बीतने पर चौवनवें पर्व की समाप्ति होती है]।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(५५) (८×४)+(११×७)+६२=१७१-१२४=४७भांश [४७-२७=२० होने से जावादिक्रम में बीसवें नक्षत्र स्वाति का ४७ वाँ अंश बीतने पर पचपनवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(५६) (८×४)+(११×८)=१२०भांश [१२०-(२७×४)=१२ होने से जावादिक्रम में बारहवें नक्षत्र अपभरणी का १२० वाँ अंश बीतने पर छप्पनवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(५७) (८×४)+(११×९)+६२=१९३-१२४=६९भांश [६९-(२७×२)=१५ होने से जावादिक्रम में पन्द्रहवें नक्षत्र अनुराधा का ६९ वाँ अंश बीतने पर सत्तावनवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(५८) (८×४)+(११×१०)=१४२-१२४=१८भांश [जावादिक्रम में अठारहवें नक्षत्र मृगशीर्ष का १८ वाँ अंश बीतने पर अट्ठावनवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(५९) (८×४)+(११×११)+६२=२१५-१२४=९१भांश [९१-(२७×३)=१० होने से जावादिक्रम में दसवें नक्षत्र मूलबर्हणी का ९१ वाँ अंश बीतने पर उनसठवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(६०) ८×५=४०भांश [४०-२७=१३ होने से जावादिक्रम में तेरहवें नक्षत्र पुनर्वसु का ४० वाँ अंश बीतने पर साठवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(६१) (८×५)+(११×१)+६२=११३भांश [११३-(२७×४)=५ होने से जावादिक्रम में पाँचवें नक्षत्र उत्तराषाढा का ११३ वाँ अंश बीतने पर एकसठवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(६२) (८×५)+(११×२)=६२भांश [६२-(२७×२)=८ होने से जावादिक्रम में आठवें नक्षत्र आश्लेषा का ६२ वाँ अंश बीतने पर बासठवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(६३) (८×५)+(११×३)+६२=१३५-१२४=११भांश [जावादिक्रम में ग्यारहवें नक्षत्र शतभिषक् का ग्यारहवाँ अंश बीतने पर तिरसठवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(६४) (८×५)+(११×४)=८४भांश [८४-(२७×३)=३ होने से जावादिक्रम में तीसरे नक्षत्र पूर्वफल्गुनी का ८४ वाँ अंश बीतने पर चौसठवें पर्व की समाप्ति होती है]।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(६५) (८×५)+(११×५)+६२=१५७-१२४=३३भांश [३३-२७=६ होने से जावादिक्रम में छठे नक्षत्र उत्तरभद्रपद का ३३ वाँ अंश बीतने पर पैंसठवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(६६) (८×५)+(११×६)=१०६भांश [१०६-(२७×३)=२५ होने से जावादिक्रम में पचीसवें नक्षत्र हस्त नक्षत्र का १०६ वाँ अंश बीतने पर छासठवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(६७) (८×५)+(११×७)+६२=१७९-१२४=५५भांश [५५-(२७×२)=१ होने से जावादिक्रम में पहले नक्षत्र अश्वयुक् (अश्विनी) का ५५ वाँ अंश बीतने पर सतसठवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(६८) (८×५)+(११×८)=१२८-१२४=४भांश [जावादिक्रम में चौथे नक्षत्र विशाखा का चौथा अंश बीतने पर अडसठवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(६९) (८×५)+(११×९)+६२=२०१-१२४=७७भांश [७७-(२७×२)=२३ होने से जावादिक्रम में तेईसवें नक्षत्र कृत्तिका का ७७ वाँ अंश बीतने पर उनहत्तरवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(७०) (८×५)+(११×१०)=१५०-१२४=२६भांश [जावादिक्रम में छब्बीसवें नक्षत्र ज्येष्ठा का २६ वाँ अंश बीतने पर सत्तरवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(७१) (८×५)+(११×११)+६२=२२३-१२४=९९भांश [९९-(२७×३)=१८ होने से जावादिक्रम में अठारहवें नक्षत्र मृगशीर्ष का ९९ वाँ अंश बीतने पर एकहत्तरवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(७२) ८×६=४८भांश [४८-२७=२१ होने से जावादिक्रम में इक्कीसवें नक्षत्र पूर्वाषाढा का ४८ वाँ अंश बीतने पर बहत्तरवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(७३) (८×६)+(११×१)+६२=१२१भांश [१२१-(२७×४)=१३ होने से जावादिक्रम में तेरहवें नक्षत्र पुनर्वसु का १२१ वाँ अंश बीतने पर तिरहत्तरवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(७४) (८×६)+(११×२)=७०भांश [७०-(२७×२)=१६ होने से जावादिक्रम में सोलहवें नक्षत्र श्रवण का ७० वाँ अंश बीतने पर चौहत्तरवें पर्व की समाप्ति होती है]।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(७५) (८×६)+(११×३)+६२=१४३-१२४=१९भांश [जावादिक्रम में उन्नीसवें नक्षत्र मघा का १९ वाँ अंश बीतने पर पचहत्तरवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(७६) (८×६)+(११×४)=९२भांश [९२-(२७×३)=११ होने से जावादिक्रम में ग्यारहवें नक्षत्र शतभिषक् का ९२ वाँ अंश बीतने पर छिहत्तरवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(७७) (८×६)+(११×५)+६२=१६५-१२४=४१भांश [४१-२७=१४ होने से जावादिक्रम में चौदहवें नक्षत्र उत्तरफल्गुनी का ४१ वाँ अंश बीतने पर सतहत्तरवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(७८) (८×६)+(११×६)=११४भांश [११४-(२७×४)=६ होने से जावादिक्रम में छठे नक्षत्र उत्तरभद्रपद का ११४ वाँ अंश बीतने पर अठहत्तरवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(७९) (८×६)+(११×७)+६२=१८७-१२४=६३भांश [६३-(२७×२)=९ होने से जावादिक्रम में नौवें नक्षत्र चित्रा का ६३ वाँ अंश बीतने पर उनासीवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(८०) (८×६)+(११×८)=१३६-१२४=१२भांश [जावादिक्रम में बारहवें नक्षत्र अपभरणी का बारहवाँ अंश बीतने पर असीवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(८१) (८×६)+(११×९)+६२=२०९-१२४=८५भांश [८५-(२७×३)=४ होने से जावादिक्रम में चौथे नक्षत्र विशाखा का ८५ वाँ अंश बीतने पर इक्यासीवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(८२) (८×६)+(११×१०)=१५८-१२४=३४भांश [३४-२७=७ होने से जावादिक्रम में सातवें नक्षत्र रोहिणी का ३४ वाँ अंश बीतने पर बयासीवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(८३) (८×६)+(११×११)+६२=२३१-१२४=१०७भांश [१०७-(२७×३)=२६ होने से जावादिक्रम में छब्बीसवें नक्षत्र ज्येष्ठा का १०७ वाँ अंश बीतने पर तिरासीवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(८४) ८×७=५६भांश [५६-(२७×२)=२ होने से जावादिक्रम में दूसरे नक्षत्र आर्द्रा का ५६ वाँ अंश बीतने पर चौरासीवें पर्व की समाप्ति होती है]।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(८५) (८×७)+(११×१)+६२=१२९-१२४=५भांश [जावादिक्रम में पाँचवें नक्षत्र उत्तराषाढा का पाँचवाँ अंश बीतने पर पचासीवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(८६) (८×७)+(११×२)=७८भांश [७८-(२७×२)=२४ होने से जावादिक्रम में चौबीसवें नक्षत्र पुष्य का ७८ वाँ अंश बीतने पर छियासीवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(८७) (८×७)+(११×३)+६२=१५१-१२४=२७भांश [जावादिक्रम में सत्ताईसवें नक्षत्र श्रविष्ठा (धनिष्ठा) का २७ वाँ अंश बीतने पर सतासीवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(८८) (८×७)+(११×४)=१००भांश [१००-(२७×३)=१९ होने से जावादिक्रम में उन्नीसवें नक्षत्र मघा का १०० वाँ अंश बीतने पर अठासीवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(८९) (८×७)+(११×५)+६२=१७३-१२४=४९भांश [४९-२७=२२ होने से जावादिक्रम में बाईसवें नक्षत्र पूर्वभद्रपद का ४९ वाँ अंश बीतने पर नवासीवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(९०) (८×७)+(११×६)=१२२भांश [१२२-(२७×४)=१४ होने से जावादिक्रम में चौदहवें नक्षत्र उत्तरफल्गुनी का १२२ वाँ अंश बीतने पर नब्बेवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(९१) (८×७)+(११×७)+६२=१९५-१२४=७१भांश [७१-(२७×२)=१७ होने से जावादिक्रम में सत्रहवें नक्षत्र रेवती का ७१ वाँ अंश बीतने पर एक्यानबेवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(९२) (८×७)+(११×८)=१४४-१२४=२०भांश [जावादिक्रम में बीसवें नक्षत्र स्वाति का २० वाँ अंश बीतने पर बानबेवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(९३) (८×७)+(११×९)+६२=२१७-१२४=९३भांश [९३-(२७×३)=१२ होने से जावादिक्रम में बारहवें नक्षत्र अपभरणी का ९३ वाँ अंश बीतने पर तिरानबेवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(९४) (८×७)+(११×१०)=१६६-१२४=४२भांश [४२-२७=१५ होने से जावादिक्रम में पन्द्रहवें नक्षत्र अनुराधा का ४२ वाँ अंश बीतने पर चौरानबेवें पर्व की समाप्ति होती है]।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(९५) (८×७)+(११×११)+६२=२३९-१२४=११५भांश [११५-(२७×४)=७ होने से जावादिक्रम में सातवें नक्षत्र रोहिणी का ११५ वाँ अंश बीतने पर पञ्चानबेवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(९६) ८×८=६४भांश [६४-(२७×२)=१० होने से जावादिक्रम में दसवें नक्षत्र मूलबर्हणी का ६४ वाँ अंश बीतने पर छानबेवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(९७) (८×८)+(११×१)+६२=१३७-१२४=१३भांश [जावादिक्रम में तेरहवें नक्षत्र पुनर्वसु का तेरहवाँ अंश बीतने पर सत्तानबेवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(९८) (८×८)+(११×२)=८६भांश [८६-(२७×३)=५ होने से जावादिक्रम में पाँचवें नक्षत्र उत्तराषाढा का ८६ वाँ अंश बीतने पर अठानबेवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(९९) (८×८)+(११×३)+६२=१५९-१२४=३५भांश [३५-२७=८ होने से जावादिक्रम में आठवें नक्षत्र आश्लेषा का ३५ वाँ अंश बीतने पर निन्यानबेवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१००) (८×८)+(११×४)=१०८भांश [१०८-(२७×३)=२७ होने से जावादिक्रम में सत्ताईसवें नक्षत्र श्रविष्ठा (धनिष्ठा) का १०८ वाँ अंश बीतने पर सौवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१०१) (८×८)+(११×५)+६२=१८१-१२४=५७भांश [५७-(२७×२)=३ होने से जावादिक्रम में तीसरे नक्षत्र पूर्वफल्गुनी का ५७ वाँ अंश बीतने पर १०१वें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१०२) (८×८)+(११×६)=१३०-१२४=६भांश [जावादिक्रम में छठे नक्षत्र उत्तर-भद्रपद का छठा अंश बीतने पर १०२वें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१०३) (८×८)+(११×७)+६२=२०३-१२४=७९भांश [७९-(२७×२)=२५ होने से जावादिक्रम में पचीसवें नक्षत्र हस्त का ७९ वाँ अंश बीतने पर १०३वें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१०४) (८×८)+(११×८)=१५२-१२४=२८भांश [२८-२७=१ होने से जावादिक्रम में पहले नक्षत्र अश्वयुक् (अश्विनी) का २८ वाँ अंश बीतने पर एक सौ चारवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१०५) (८×८)+(११×९)+६२=२२५-१२४=१०१भांश [१०१-(२७×३)=२० होने से जावादिक्रम में बीसवें नक्षत्र स्वाति का १०१ वाँ अंश बीतने पर एक सौ पाँचवें पर्व की समाप्ति होती है]।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१०६) (८×८)+(११×१०)=१७४-१२४=५०भांश [५०-२७=२३ होने से जावादिक्रम में तेईसवें नक्षत्र कृत्तिका का ५० वाँ अंश बीतने पर एक सौ छ:वें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१०७) (८×८)+(११×११)+६२=२४७-१२४=१२३भांश [१२३-(२७×४)=१५ होने से जावादिक्रम में पन्द्रहवें नक्षत्र अनुराधा का १२३ वाँ अंश बीतने पर एक सौ सातवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१०८) ८×९=७२भांश [७२-(२७×२)=१८ होने से जावादिक्रम में अठारहवें नक्षत्र मृगशीर्ष का ७२ वाँ अंश बीतने पर एक सौ आठवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१०९) (८×९)+(११×१)+६२=१४५-१२४=२१भांश [जावादिक्रम में इक्कीसवें नक्षत्र पूर्वाषाढा का २१ वाँ अंश बीतने पर एक सौ नौवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(११०) (८×९)+(११×२)=९४भांश [९४-(२७×३)=१३ होने से जावादिक्रम में तेरहवें नक्षत्र पुनर्वसु का ९४ वाँ अंश बीतने पर एक सौ दसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१११) (८×९)+(११×३)+६२=१६७-१२४=४३भांश [४३-२७=१६ होने से जावादिक्रम में सोलहवें नक्षत्र श्रवण का ४३ वाँ अंश बीतने पर एक सौ ग्यारहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(११२) (८×९)+(११×४)=११६भांश [११६-(२७×४)=८ होने से जावादिक्रम में आठवें नक्षत्र आश्लेषा का ११६ वाँ अंश बीतने पर एक सौ बारहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(११३) (८×९)+(११×५)+६२=१८९-१२४=६५भांश [६५-(२७×२)=११ होने से जावादिक्रम में ग्यारहवें नक्षत्र शतभिषक् का ६५ वाँ अंश बीतने पर एक सौ तेरहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(११४) (८×९)+(११×६)=१३८-१२४=१४भांश [जावादिक्रम में चौदहवें नक्षत्र उत्तरफल्गुनी का चौदहवाँ अंश बीतने पर एक सौ चौदहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(११५) (८×९)+(११×७)+६२=२११-१२४=८७भांश [८७-(२७×३)=६ होने से जावादिक्रम में छठे नक्षत्र उत्तरभद्रपद का ८७ वाँ अंश बीतने पर एक सौ पन्द्रहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(११६) (८×९)+(११×८)=१६०-१२४=३६ भांश [३६-२७=९ होने से जावादिक्रम में नौवें नक्षत्र चित्रा का ३६ वाँ अंश बीतने पर एक सौ सोलहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(११७) (८×९)+(११×९)+६२=२३३-१२४=१०९ भांश [१०९-(२७×४)=१ होने से जावादिक्रम में पहले नक्षत्र अश्वयुक् (अश्विनी) का १०९ वाँ अंश बीतने पर एक सौ सत्रहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(११८) (८×९)+(११×१०)=१८२-१२४=५८ भांश [५८-(२७×२)=४ होने से जावादिक्रम में चौथे नक्षत्र विशाखा का ५८ वाँ अंश बीतने पर एक सौ अठारहवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(११९) (८×९)+(११×११)+६२=२५५-(१२४×२)=७ भांश [जावादिक्रम में सातवें नक्षत्र रोहिणी का सातवाँ अंश बीतने पर एक सौ उन्नीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१२०) (८×१०)=८० भांश [८०-(२७×२)=२६ होने से जावादिक्रम में छब्बीसवें नक्षत्र ज्येष्ठा का ८० वाँ अंश बीतने पर एक सौ बीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१२१) (८×१०)+(११×१)+६२=१५३-१२४=२९ भांश [२९-२७=२ होने से जावादिक्रम में दूसरे नक्षत्र आर्द्रा का २९ वाँ अंश बीतने पर एक सौ इक्कीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१२२) (८×१०)+(११×२)=१०२ भांश [१०२-(२७×३)=२१ होने से जावादिक्रम में इक्कीसवें नक्षत्र पूर्वाषाढा का १०२ वाँ अंश बीतने पर एक सौ बाईसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१२३) (८×१०)+(११×३)+६२=१७५-१२४=५१ भांश [५१-२७=२४ होने से जावादिक्रम में चौबीसवें नक्षत्र पुष्य का ५१ वाँ अंश बीतने पर एक सौ तेईसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

(१२४) (८×१०)+(११×४)=१२४ भांश [१२४-(२७×४)=१६ होने से जावादिक्रम में सोलहवें नक्षत्र श्रवण का १२४ वाँ अंश बीतने पर एक सौ चौबीसवें पर्व की समाप्ति होती है]।

{यहाँ आधुनिकनक्षत्रगणित के अनुसार विचार करने पर श्रविष्ठा के (धनिष्ठा के) और शुक्लप्रतिपदा के आदि में प्रारब्ध पञ्चवर्षात्मक युग के एक

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सौ चौबीस पर्वों की समाप्ति मध्यम मान से युगादिश्रविष्ठा से १८०९ नक्षत्र बीतने पर १८१० वें श्रविष्ठा (धनिष्ठा) नक्षत्र के ४३ वें अंश में होती है, यह बात भी स्मरणीय है।}

विशेष– इस श्लोक की भी व्याख्या शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने नहीं की है। अतः तत्पूर्ववर्ती आधुनिक अन्य अध्येताओं से भी यह श्लोक अव्याख्यात ही अवगत होता है। सुधाकर द्विवेदी का व्याख्यान अयथार्थ है। पूर्वार्ध का बार्हस्पत्य का व्याख्यान समीचीन है, यह बात बालगङ्गाधरतिलक ने बताई है। अतः उत्तरार्ध का तो बार्हस्पत्यव्याख्यान भी अयथार्थ ही अवगत होता है। किन्तु सुधाकर ने पूर्वार्ध के बार्हस्पत्यव्याख्यान का भी अनुचित रूप से खण्डन करने का वृथा प्रयास किया है और उसी का सुधाकरशिष्य मुरलीधर झा ने भी समर्थन करने की चेष्टा की है। सुधाकर ने सम्पूर्ण श्लोक के यथार्थ अर्थ को न समझकर विशेषतः 'ऊन' शब्द के अर्थ को न समझकर अनेक स्थलों में अनावश्यक और पुनरुक्तिकर पाठभेदों की कल्पना करके श्लोकपाठ को **'भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः। एकादशगुणाश् चेन्दोः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि'** इस प्रकार का बनाकर व्याख्या की है। पुनरुक्तिदोष से भी दूषित सुधाकरकल्पित इस पाठ की आलोचना बालगङ्गाधर तिलक ने भी की है। बार्हस्पत्य से भी श्लोक के उत्तरार्ध में आए हुए 'ऊन' शब्द का अर्थ उद्घाटित नहीं हो सका था, यह बात भी तिलक ने कही है। उत्तरार्ध का तिलक का व्याख्यान समीचीन है। किन्तु तिलक ने ऊनशब्द को पक्षद्वादशक के बाद आए हुए बारह से निःशेष भाग न जानेवाली सङ्ख्या के पक्षों का बोधक माना है। हमने तो प्रथम पक्षद्वादशकपूर्ति के पूर्ववर्ती पक्षों का भी ऊनशब्द से ग्रहण होता है, इस बात को मानकर सम्पूर्ण श्लोक का यथार्थ और पूर्ण व्याख्यान किया है। इस श्लोक का शामशास्त्री और तदनुयायी सत्यप्रकाश का व्याख्यान भी तिलक के व्याख्यान का अनुगामी ही है॥१५॥

[पर्वभांशों की स्थिति में अन्य विशेष]

नवकैरुद्गतोऽंशः स्यादूनः सप्तगुणो भवेत्।
आवापस् त्वयुजेऽर्धं स्यात् पौलस्त्येऽस्तङ्गतेऽपरम्॥१६॥

जिस पर्वान्त में भांश नौ से उद्गत (नौ से निश्शेष रूप में विभाज्य) होता है उस भांश का नक्षत्र भी नौ से निश्शेष रूप में विभाज्य होता है, अर्थात वहाँ

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जावादि श्लोक में ९,१८,२७ इन स्थानों में स्थित नक्षत्र होता है; पहले तीन पक्ष-द्वादशक के आगे के उनचालीसवाँ उनचासवाँ इत्यादि पर्वान्तों में स्थित भांश सात गुने (सात के गुणनफलरूप में स्थित अथवा सात से निश्शेष रूप में विभाज्य) होते हैं। (ऊपर प्रदर्शित पर्वभांशसारणी में ३९, ४९, ५९, ६९, ७९, ८९, ९९, १०९, ११९ पर्वान्तों के भांशों को देखें।) विषम पक्ष में आधा नक्षत्र प्रक्षेप्य होता है (आधा नक्षत्र बढता है) और चन्द्र अस्त होने पर (सूर्यसमीपस्थ होकर चन्द्र अदृश्य होने पर) अर्थात् अमावास्यान्त पक्ष में दूसरा आधा नक्षत्र प्रक्षेप्य होता है (दूसरा आधा नक्षत्र बढता है)॥१६॥

[भांशमूलक पर्वनक्षत्रज्ञानोपाय इत्यादि]

जावाद्यंशैः समं विद्यात् पूर्वाऽर्धे पर्वसूत्तराः।
भाऽदानं स्याच् चतुर्दश्यां द्विभागेभ्योऽधिको यदि॥१७॥

पर्वकालों में स्थित जावादि क्रमबद्ध नक्षत्रों को पर्वभांशतुल्य जाने। (यदि कोई पर्व किसी नक्षत्र का प्रथम अंश से परिच्छिन्न होता है तो उस नक्षत्र को जावादिक्रम में प्रथम स्थान में, कोई पर्व किसी नक्षत्र का द्वितीय अंश से परिच्छिन्न होता है तो उस नक्षत्र को द्वितीय स्थान में स्थित जाने)। पर्व की समाप्तिकाल सावनदिवस के पूर्वार्ध में रहने पर उस सावन दिन में उत्तरार्ध की तिथियों को ही ग्राह्य जाने। यदि पर्वदिनों में चतुर्दशी में प्रारब्ध नक्षत्रों का काल सावन दिन की कलाओं के आधे से अधिक हो तो, उस नक्षत्र का चतुर्दशी में अदान होगा, अर्थात् उस नक्षत्र का पर्वदिन के नक्षत्र का रूप में ही गणना होगी और चतुर्दशी के पूर्वार्ध में स्थित तथा त्रयोदशी में प्रारब्ध नक्षत्र का ही चतुर्दशी के नक्षत्र का रूप में गणना होगी।

विशेष– शङ्करबालकृष्ण दीक्षित ने इस श्लोक की व्याख्या नहीं की। 'जावाद्यंशैः समं विद्यात्' इस अंश का बार्हस्पत्य और सुधाकर का व्याख्यान ठीक लगता है। अन्य अंश का तो उनका व्याख्यान यथार्थ नहीं दीखता है। बाल-गङ्गाधर तिलक ने इस पद्य के विषय में विचार नहीं किया है। इस श्लोक का शामशास्त्री का व्याख्यान भी अयथार्थ ही है। हमने तो सम्पूर्ण श्लोक का वस्तुस्थित्यनुकूल व्याख्यान किया है॥१७॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[जावादिनक्षत्रव्यवस्था]

१जौ २द्रा ३गः ४खे ५श्वे ६ही ७रो ८षाश्
९चिन् १०मू ११षक् १२ण्यः १३सू १४मा १५धा १६णः।
१७रे १८मृ(म्रे) १९घाः २०स्वा २१पो २२जः २३कृ २४ष्यो
२५ह २६ज्ये २७ष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गैः ॥१८॥

१. जौ =अश्वयुजौ (अश्विनी), २. द्रा=आर्द्रा, ३. गः=भगः=पूर्वफल्गुनी, ४. खे= विशाखे (विशाखा), ५.श्वे=विश्वे देवाः=उत्तराषाढा, हिः=अहिर्बुध्न्य= उत्तरभाद्रपद, ७. रो=रोहिणी, ८. षाः=आश्लेषा, ९. चित्=चित्त्रा, १०. मू=मूल, ११. षक्=शतभिषक्=शतभिषा, १२. ण्यः=अपभरण्यः=भरणी, १३. सू=पुनर्वसू, १४. मा=अर्यमा=उत्तरफल्गुनी, १५. धाः=अनुराधा, १६. णः=श्रवण, १७. रे=रेवती, १८. मृ(म्रे)=मृगशीर्ष, १९. घाः=मघा, २०. स्वा=स्वाति, २१. पः= आपः=पूर्वाषाढा, २२. जः=अज एकपात्=पूर्वभद्रपद, २३. कृ=कृत्तिका, २४. ष्यः=पुष्य, २५. ह=हस्त, २६. ज्ये=ज्येष्ठा, २७. ष्ठाः=धनिष्ठा; ये सम्बद्ध नक्षत्र का अथवा नक्षत्रदेवता के नाम के एक-एक अक्षर के लिङ्ग से बताए गए [पर्वान्तविशेष के] नक्षत्र हैं।

विशेष– इस श्लोक में नक्षत्रनामग्रहण विशिष्ट शैली में किया गया है। सभी नक्षत्रों के नाम का ग्रहण एक ही अक्षर से कहीं आद्याक्षर से, कहीं मध्याक्षर से और कहीं अन्त्याक्षर से किया गया है। कहीं साक्षात् नक्षत्रनाम का और कहीं नक्षत्रदेवतानाम का आद्यादि अक्षर से उल्लेख किया गया है। सामवेदप्रातिशाख्य-रूप[1] ऋक्तन्त्र में भी कुछ ऐसी ही शैली पाई जाती है। वहाँ पदों के प्राय आद्या-क्षर छोडकर उल्लेख किया गया है। जैसा कि– वर्ग कहने के लिए 'र्ग'[2], दीर्घम् कहने के लिए 'र्घम्'[3], परादि कहने के लिए 'रादि'[4], स्वरम् कहने के लिए 'रम्'[5],

---

१. प्रातिशाख्य वेद के षडङ्गों में पहले शिक्षारूप अङ्ग के ग्रन्थ हैं। कुछ लोग प्रातिशाख्यों को व्याकरण भी मानते हैं। किन्तु प्रातिशाख्य मूलतः वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, सन्तान (सन्धि) इन शिक्षाशास्त्रीय विषयों का (द्र. तैत्तिरीयारण्यक) ही विवेचन करते हैं।

२. **स्पर्शे गस्य।**– ऋक्तन्त्र २।२।३ (पूर्णसूत्रसङ्ख्या १३)।

३. **घम् (र्घम्?)।** – ऋक्तन्त्र २।५।१० (पूर्णसूत्रसङ्ख्या ५०)।

४. **रादि रमन्यत।** – ऋक्तन्त्र २।३।६ (पूर्णसूत्रसङ्ख्या २६)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गतिः कहने के लिए 'तिः'[1] इत्यादि। ऐसी ही कोई शैली वेदाङ्गव्याकरण पाणिनीयाष्टाध्यायी में भी देखी जाती है। यद्यपि वहाँ किसी पद के एक अक्षर को न लेकर एकाक्षरवाली पृथक् ही सञ्ज्ञा व्यवहृत की गई हैं, तथापि वहाँ भी एकाक्षरत्व समान ही है। यथा **"शेषो घ्यसखि"** (अष्टा. १।४।७), **"दाधा घ्वदाप्"** (अष्टा. १।१।२०), **"अचोऽन्त्यादि टि"** (अष्टा. १।१।६४) इत्यादिसूत्रोक्त **घि-घु-टि-** प्रभृति सञ्ज्ञाओं में एकाक्षरकता विशेष रूप में दृष्टिगोचर होती है। यह शैली वेदाङ्गशास्त्रकार प्राचीन मुनियों से सङ्क्षेपादि के लिए आश्रित अवगत होती है। वेदाङ्गज्योतिष में तो प्रथमादि अक्षरविशेष के ग्रहण से विशेष सङ्केत भी किए जाने की बात सोमाकरभाष्य में उल्लिखित है, वह विशेष मननीय है॥१७॥

[पर्वभादानकला के ज्ञान का उपाय]

कार्या भाऽंशाऽष्टकस्थाने कला एकान्नविंशतिः।
ऊनस्थाने तु सप्ततिमुद्वपेद् युक्तिसम्भवे॥१९॥

भांशाष्टक के स्थान पर अर्थात् पक्षद्वादशक (बारह पक्षों के समुदाय) के अन्त में उन्नीस सावनदिनकला करनी चाहिए। अर्थात् पक्षद्वादशक के अन्त में जिस सावन दिन में बारहवें पर्व के नक्षत्र का आरम्भ होता है उस दिन के १९ कलाओं के बीत जाने पर उस पर्वनक्षत्र का प्रवेश होता है। ये ही कलाएँ पर्वभादानकला कही जाती हैं। दो पक्षद्वादशकों के अन्त में १९×२=३८, तीन पक्षद्वादशकों के अन्त में १९×३=५७, चार पक्षद्वादशकों के अन्त में १९×४=७६ इत्यादि रूप से पर्वभादानकलाएँ होंगी, ऐसा जानना चाहिए।

इस श्लोक के उत्तरार्ध का "बारह पक्षों के समुदाय के रूप में अवर्तमान ऊनपक्षों के स्थान में ७३ भांश लेना चाहिए, ऐसे भांशों के योग से पूर्ण नक्षत्र बनने पर पूर्ण नक्षत्र से अतिरिक्त भांशों को अलग करके लेना चाहिए" ऐसा अर्थ कोई बताते हैं। बालगङ्गाधर तिलक ने भी इस श्लोक का ऋग्वेदियों के पाठ को युक्ततर मानकर कुछ उसी प्रकार का अर्थ बताया है।

वस्तुतः उत्तरार्ध का अर्थ– 'ऊनपक्षों के स्थान में तो प्रतिपक्ष १०५ कलाओं के अनुपात से कलाओं को जोडकर आवश्यकतानुसार कलासप्तकों का (प्रहले ऊनपक्ष में १ या ० कलासप्तक, दूसरे ऊनपक्ष में १, तीसरे ऊनपक्ष में १

---

१. **तिश्च त्रिकला वा।** –ऋक्तन्त्र २।३।९ (पूर्णसूत्रसङ्ख्या २९)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या २, चौथे ऊनपक्ष में २, पाँचवें और छठे ऊनपक्ष में २ या ३, सातवें ऊनपक्ष में ३, आठवें ऊनपक्ष में ३ या ४, नवें ऊनपक्ष में ४, दसवें और ग्यारहवें ऊनपक्ष में ४ या ५ कलासप्तकों का) उद्वाप करके पर्वभादानकला निकालना चाहिए' ऐसा मानना चाहिए। [प्रस्तुत पद्य के **'सप्ततीरुद्वपेदूनसम्मिताः'** इस आर्च पाठ से भी उनपक्ष की सङ्ख्या के अनुसार कलासप्तक का उद्वाप का ही प्रतिपादन अवगत होता होता है।]

विशेष– जहाँ उद्वपनीय (निकाले जानेवाले) कलासप्तक की सङ्ख्या में विकल्प है, वहाँ पर्वभांशानुसार उद्वपनीयकलासप्तकसङ्ख्या व्यवस्थाप्य होती है। इसमें यह नियम है कि जिस ऊनपक्ष के पर्वनक्षत्र का प्रवेश की कलाएँ जाननी होंगी उस पक्ष के पर्वभांश ५८ से न्यून हों तो वैकल्पिक कलासप्तकसङ्ख्या में से न्यून सङ्ख्या के कलासप्तक का उद्वाप करना होता है। यदि पर्वभांश की सङ्ख्या ६५ से अधिक हो तो वैकल्पिक कलासप्तकसङ्ख्या में से अधिक सङ्ख्या के कलासप्तक उद्वपनीय होते हैं। यदि पर्वभांश की सङ्ख्या ५८ से ६५ तक की हो तो उस पर्वभांश की सङ्ख्या में गत पर्व की सङ्ख्या को जोडकर गत पक्षद्वादशक की सङ्ख्या को घटाना चाहिए। यदि वह सङ्ख्या सम्पूर्ण भांश की सङ्ख्या से आधे अर्थात् ६२ से कम हो तो वैकल्पिक कलासप्तकसङ्ख्या में से न्यून सङ्ख्या के कलासप्तक का उद्वाप करना होता है, यदि वह सङ्ख्या ६२ से अधिक हो तो वैकल्पिक कलासप्तकसङ्ख्या में से अधिकसङ्ख्यावाले कलासप्तक का उद्वाप करना होता है। इस प्रकार इष्ट पर्व की पर्वभादानकला ज्ञात की जा सकती हैं। इस नियम को नीचे सारणीद्वारा भी दिखाया जाता है–

कलासप्तकोद्वापसारणी

ऊनपक्षसंख्या	उद्वपनीय-कला-सप्तकसंख्या	विशेष
१	१ वा ०	१–५८भांश में ०, ६६–१२४ भांश में १
२	१	
३	१ वा २	१-५८भांश में १, ६६-१२४ भांश में २
४	२	
५	२ वा ३	१–५८भांश में २, ६६–१२४ भांश में ३

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६	२ वा ३	१-५८भांश में २, ६६-१२४ भांश में ३
७	३	
८	३ वा ४	१-५८भांश में ३, ६६-१२४ भांश में ४
९	४	
१०	४ वा ५	१-५८भांश में ४, ६६-१२४ भांश में ५
११	४ वा ५	१-५८भांश में ४, ६६-१२४ भांश में ५

विशेष– ५९ और ६५ के बीच के पर्वभांश होने पर व्यवस्था–

⇨ भांशसङ्ख्या+गतपर्वसङ्ख्या–गतपक्षद्वादशकसङ्ख्या=<६२, वैकल्पिक-कलासप्तकों में से न्यूनसङ्ख्यावाले कलासप्तक उद्वपनीय होते हैं।

⇨ भांशसङ्ख्या+गतपर्वसङ्ख्या–गतपक्षद्वादशकसङ्ख्या=>६२, वैकल्पिक-कलासप्तकों में से अधिकसङ्ख्यावाले कलासप्तक उद्वपनीय होते हैं।

एक नक्षत्र में ६१० कलाएँ होती हैं, किन्तु एक सावन दिन में ६०३ कलाएँ ही होती हैं, अतः पन्द्रह सावन दिन की १५×७=१०५ कलाएँ भी व्यतीत पन्द्रह नक्षत्रों में ही प्रविष्ट होती हैं। अतः सोलहवें सावन दिन के १०५ कलाओं के व्यतीत होजाने पर अगले पर्वनक्षत्र का प्रवेश होता है। कहीं पर केवल १४ सावन दिन बीतने पर ही अगले पर्वनक्षत्र का प्रवेश होने की स्थिति होती है, उसी समय प्राप्त कलाओं में से ७ कलाओं का उद्वाप करने का विधान किया गया है, ऐसा जानना चाहिए। अन्य पक्षों में जितने सावन दिन कम हुए उतने ही कलासप्तकों का उद्वाप करके पर्वनक्षत्रप्रवेश-कलाओं का निर्देश करना चाहिए, यह आशय है। [पर्वभादानकलाओं का उपयोग तिथिभादानकला के ज्ञान में भी होगा।]

उदाहरण– पन्द्रहवें पक्ष की पर्वभादानकलाएँ ज्ञेय हों तो पक्षद्वादशक के पर्वभादानकलाएँ १९, तीन ऊनपक्षों की कलाएँ १०५×३=३१५, जोडने पर १९+३१५=३३४, यहाँ ऊनपक्षसङ्ख्या ३ होने से इन कलाओं में से एक या दो कलासप्तकों का उद्वाप करना होगा। इसके निर्णय के लिए पर्वभांश देखना होगा। पन्द्रहवें पक्ष के पर्वभांश ८+(११×३)+६२ =८+३३+६२=१०३ होते हैं और यह सङ्ख्या ६५ से अधिक होने से दो कलासप्तकों का उद्वाप करना होगा, यह बात अवगत हुई। अतः ३३४ से दो कलासप्तकों का उद्वाप करने पर पर्वभादानकलाएँ ३३४–१४=३२० होती हैं। अतः पन्द्रहवें पर्व का जो नक्षत्र है वह नक्षत्र सावन दिन के ३२० कलाओं के बीतने पर प्रविष्ट होगा, ऐसा जानना

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चाहिए। [इष्ट पर्व के नक्षत्र को तो *"भांशाः स्युरष्टकाः कार्याः"* (श्लो.१५) इस श्लोक में बताए गए सूत्र के अनुसार पर्वभांश निकाल कर *"जावाद्यंशैः समं विद्यात्"* (श्लो.१७) इत्यादि और *"जौ द्रा गः खे"* (श्लो.१८) इत्यादि श्लोक की सहायता से जानना चाहिए। जैसे उक्त पर्व का भांश ८+(११×३)+६२=१०३, अतः १०३–२७=७६, ७६–२७=४९, ४९–२७=२२ होने से जावादि श्लोक में बाईसवें स्थान में स्थित पूर्वभद्रपद नक्षत्र उस पर्व का नक्षत्र होगा। उसी पूर्वभद्रपद नक्षत्र का प्रारम्भ सावनदिन के ३२० कला बीतने पर होगा, ऐसा इस श्लोक में बताई गई पद्धति से जाना जा सकता है।]

अट्ठाईसवें पक्ष की पर्वभादानकलाएँ ज्ञेय हों तो दो पक्षद्वादशकों की पर्वभादानकलाएँ १९×२=३८, चार ऊनपक्षों की कलाएँ १०५×४=४२०, जोडने पर ३८+४२०=४५८, कलासप्तकोद्वापसारणी के अनुसार इससे दो कलासप्तकों का उद्वाप करने पर पर्वभादानकलाएँ ४५८–१४=४४४। अतः पन्द्रहवें पर्व का जो नक्षत्र है वह नक्षत्र सावन दिन के ४४४ कलाओं के बीतने पर प्रविष्ट होगा, ऐसा जानना चाहिए। [इष्ट पर्व के नक्षत्र को तो पूर्वोक्त रीति से जानना चाहिए। जैसे उक्त पर्व का भांश (८×२)+(११×४)=१६+४४=६०, अतः ६०–(२७×२)=६ होने से जावादि श्लोक में छठे स्थान में स्थित उत्तरभद्रपद नक्षत्र उस पर्व का नक्षत्र होगा। उसी उत्तरभद्रपद नक्षत्र का प्रारम्भ सावनदिन के ४४४ कलाओं के बीतने पर होगा, ऐसा जानना चाहिए।]

विशेष– इस श्लोक के पूर्वार्ध का बार्हस्पत्य का व्याख्यान समीचीन अवगत होता है, परन्तु उत्तरार्ध का तो सुधाकर द्विवेदी, बालगङ्गाधर तिलक, शामशास्त्री, सत्यप्रकाश इत्यादियों में से किसी का भी व्याख्यान समुचित प्रतीत नहीं होता है। तिलक का उत्तरार्ध को *"त्र्यंशी (त्रिंशी) भशेषो दिवसांशभागः"* इत्यादि श्लोक (श्लो. २७) से जोडकर व्याख्यान करने का प्रयत्न करना और भी चिन्त्य दिखाई देता है। और उतना करने पर भी पर्वनक्षत्र का प्रवेश की दिनकलाओं में ४ कला तक की अशुद्धि विद्यमान रहने की बात स्वयं तिलकद्वारा ही स्वीकृत होने से[1] उनकी व्याख्या और गणितकौशल अस्थान में ही प्रयुक्त दिखाई देते हैं, इस बात को वेदाङ्गज्योतिष की शैली से परिचित, संस्कृतभाषाभिज्ञ और गणितविज्ञ जो कोई भी सरलता से समझ सकता है॥१९॥

---

१. द्र.– **Vedic Chronology and Vedanga Jyotisha,** B.G. Tilak, Poona City, 1925, p.71.

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[तिथिनक्षत्र के आदेश की व्यवस्था]

तिथिमेकादशाभ्यस्तां पर्वभांशसमन्विताम्।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत्॥२०॥

इष्ट तिथि को ग्यारह से गुणा करके उसमें गतपर्व के भांश को जोडकर योगफल नक्षत्रसङ्ख्या (२७) से अधिक होने पर उसको नक्षत्रसङ्ख्या (२७) से विभक्त करके शेष अङ्क से अङ्कित जावादि क्रम के नक्षत्र को उस तिथिका नक्षत्र बताए, उक्त योगफल नक्षत्रसङ्ख्या (२७) से न्यून होने पर तो उसी योग-फलरूप अङ्क से अङ्कित जावादि क्रम के नक्षत्र को उस तिथि का नक्षत्र बताए।

उदाहरण– श्रविष्ठादिक पञ्चवर्षात्मक आदियुग के द्वितीय पक्ष में द्वितीया में नक्षत्र ज्ञेय है तो वहाँ तिथि २, ग्यारह से गुणा करने पर २×११=२२, वहाँ पर्वभांश ११+६२=७३, योग करने पर २२+७३=९५, उस सङ्ख्या का नक्षत्र-समूह से अधिक होने से २७ से विभाग करने पर $\frac{९५}{२७}=३\frac{१४}{२७}$, अतः शेष १४, अतः जावादिश्लोक में चौदहवें स्थान में स्थित नक्षत्र उत्तरफल्गुनी नक्षत्र उस द्वितीया तिथि में जाने। अन्य उदाहरण हमारी संस्कृतव्याख्या से युक्त वेदाङ्गज्योतिष के संस्करण (२००५ क्रै.) में देखें।

विशेष– नक्षत्र के प्रवेश का काल लाने की रीति तो वक्ष्यमाण **"याः पर्व-भादानकलाः"** इत्यादि श्लोक (श्लो.२१) में प्रतिपादित है॥२०॥

[तिथिभादानिका कला]

याः पर्वभादानकलास् तासु सप्तगुणा तिथिः।
युक्ता ताश् च विजानीयात् तिथिभादानिकाः कलाः॥२१॥

जो पूर्वोक्त पर्वभादानकलाएँ (पर्व के नक्षत्र को लेनेवाली कलाएँ) होती हैं (श्लो. १९), उनमें इष्ट दिन (तिथि) में व्यतीत तिथियों को सात से गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल योजित किया जाना चाहिए, उस योगफल को ही उस तिथि (सावन दिन) में उस तिथि (सावन दिन) के नक्षत्र का प्रवेश के समय की दिनकला जाने।

उदाहरण– धनिष्ठादि पञ्चवर्षात्ममक आदियुग के तेरहवें पक्ष में पञ्चमी में नक्षत्रप्रवेश की सावनदिनकला ज्ञेय हो तो अतीतपर्वभादानकला १९

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(श्लो.१९), गत तिथियाँ सप्तगुणित करने पर ४×७=२८, पर्वभादानकलाओं के जोडने पर १९+२८=४७, उनको ही पञ्चमी तिथि के नक्षत्रप्रवेश की कला जाने। उस पञ्चमी में नक्षत्र तो पूर्वप्रतिपादित नियम (श्लो.२०) से गततिथि ४×११=४४ + पर्वभांश ८=५२, भसमूह से भाग लेने पर $\frac{५२}{२७}$=१$\frac{२५}{२७}$, अतः जावादिक्रम में पच्चीसवाँ नक्षत्र हस्त होगा, अतः उक्त पञ्चमी तिथि में ४७ सावनदिनकलाओं के बीत जाने पर हस्त नक्षत्र का प्रवेश होगा, ऐसा जानना चाहिए। अन्य उदाहरण हमारे संस्कृतव्याख्यान से युक्त वेदाङ्गज्योतिष के संस्करण (२००५ क्रै.) में देखें।

विशेष– इस श्लोक की शङ्करबालकृष्णदीक्षित ने व्याख्या की है। तदनुसार ही बार्हस्पत्य ने भी व्याख्या की है यह बात बालगङ्गाधरतिलक ने कही है। सुधाकर ने इस श्लोक में परिष्कार करने के लिए अनावश्यक प्रयास किया है, यह बात भी उन्हों ने कही है। *"त्र्यंशी(त्रिंशी) भशेषः"* इत्यादि श्लोक का (श्लो.२७) बालगङ्गाधरतिलककृत अर्थ लिए विना इस श्लोक का उक्त अर्थ न आ सकने की बात भी बालगङ्गाधरतिलक ने कही है। किन्तु हमारे व्याख्यान के अनुसार इस श्लोक में *"कार्या भांशाष्टकस्थाने"*(श्लो.१९) इस श्लोक में कही गई पर्वभादानकलाएँ अपेक्षित होने से और वहाँ उक्त सताईसवें श्लोक की अपेक्षा के विना ही सभी पर्वों की भादानकलाओं का प्रतिपादन होने से और *"त्रिंशी भशेषः"* (श्लो.२७) इत्यादि श्लोक का पर्वभादानकला से सम्बन्ध न होने से भी बालगङ्गाधरतिलक का कथन असङ्गत दीखाई देता है॥२१॥

[तिथिसमाप्ति का काल]

अतीतपर्वभागेभ्यः शोधयेद् द्विगुणां तिथिम्।
तेषु मण्डलभागेषु तिथिनिष्ठां गतो रविः ॥२२॥

अभी व्यतीत पर्व के दिन में जो भोगभाग (अंश) होते हैं उसमें द्विगुणित इष्टतिथिसङ्ख्या को घटाए। जो शेष होता है, सूर्यभ्रमणचक्ररूप सावनदिन के उस भाग में स्थित सूर्य उस इष्ट तिथि के अन्त में प्राप्त हुआ होता है। अर्थात् सावनदिन के उस अंश में सम्बद्ध तिथि समाप्त होती है। जैसे– आदियुग की द्वितीय पञ्चदशी की समाप्ति का दिनांश जानना हो तो अतीत पर्व की समाप्तिदिन के ९४ वें अंश में हुई है, इष्ट तिथि पञ्चदशी (१५) है, अतः ९४–(१५×२)=९४–३०=६४, अतः इष्ट तिथि की समाप्ति तीसवें सावन दिन के ६४ दिनभाग व्यतीत होने पर होगी।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष– इस श्लोक में वर्णित प्रकार के पर्व के समाप्तिकाल को लेकर ही किस पक्ष में चतुर्दशी को टूटाना चाहिए, इस बात की व्यवस्था **"द्यु हेयं पर्व चेत् पादे"** इत्यादि श्लोक में (श्लो.१२) प्रतिपादित की गई है॥२२॥

[विषुवान् तिथि]

विषुवन्तं द्विरभ्यस्तं रूपोनं षड्गुणीकृतम्।
पक्षा यदर्धं पक्षाणां तिथिः स विषुवान् स्मृतः ॥२३॥

पञ्चवर्षात्मक युग के इष्ट विषुवान् की सङ्ख्या को दो से गुणा करके उससे एक घटाकर प्राप्त फल को छ से गुणा करने पर इष्ट विषुवत् तक व्यतीत पक्षों की सङ्ख्या आती है, उस सङ्ख्या की आधी सङ्ख्यावाली जो तिथि होती है वही तिथि उस इष्ट विषुवद्दिन की तिथि होती है। यदि पर्वसङ्ख्या का आधा तिथियों की सङ्ख्या (१५) से अधिक है तो उसको १५ से भाग करके लब्धि को पक्षसङ्ख्या में जोडे, शेष को तिथि जाने।

उदाहरण– तपःशुक्लप्रतिपदा में उदगयन के आरम्भ में प्रवृत्त पञ्चवर्षात्मक युग के प्रथम विषुवद्दिन का तिथि ज्ञेय हो तो विषुवान् १, उसको दो से गुणन करने पर १×२=२, उस से एक घटाने पर २-१=१, प्राप्त फल को छः से गुणा करने पर १×६=६, उस सङ्ख्या को आधा करने पर ६÷२=३, अतः छः पक्षों के व्यतीत होने पर शुक्लपक्षतृतीया को विषुवान् तिथि जाने।

विशेष– विषुवत् अथवा विषुव कहने से जिस दिन में दिन और रात बराबर होते हैं वह दिन समझा जाता है। ऐसे दिन एक वर्ष में दो होते हैं। ये वसन्तविषुवत् और शरद्विषुवत् कहे जाते हैं। ये दिन क्रमशः मार्च २१ तारीख में (आजकल प्रायः निरयण सौर मीनमास के सातवें दिन में) और सेप्टेम्बर २२ तारीख में (आजकल प्रायः निरयण सौर कन्यामास के सातवें दिन में) पडते हैं। छन्दोगपरिशिष्ट से और कुमारिलभट्ट से भी उल्लिखित अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ नारदीयशिक्षा में **"शरद्विषुवतोऽतीतादुषस्युत्थानमिष्यते। यावद् वासन्तिकी रात्रिर् मध्यमा पर्युपस्थिता"** इस श्लोक में (२।८।२) भी शरद्विषुवत् शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है॥२३॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[नाडिकाप्रमाण]

पलानि पञ्चाशदपां धृतानि
तदाढकं द्रोणमतः प्रमेयम्
त्रिभिर् विहीनं कुडवैस्तु कार्यं
तन् नाडिकायास् तु भवेत् प्रमाणम् ॥२४॥

पानी का ५० पल में तौला हुआ राशि एक आढक कहा जाता है। इस से द्रोण का परिमाण मापा जाना चाहिए। उस द्रोण को तीन कुडव से न्यून करना चाहिए। अवशिष्ट जल नाडिका को मापनेवाला परिमाण होगा।

विशेष– यहाँ लगधमुनि का कुडव लोकप्रसिद्ध कुडव से भिन्न विशिष्ट पारिभाषिक कुडव है। इसी लिये यहाँ विशेष रूप से आढक का (और द्रोण का) परिमाणविशेष बताया गया है, अन्यथा लोकप्रसिद्ध द्रोण को ही लेकर नाडिका को मापनेवाले जल का परिमाण बताया जा सकता था। इस पद्य में लगधमुनिप्रोक्त जलपरिमाणविशेष का नाडिका के मापन में प्रयोग से ही उत्तरायण में दिन की वृद्धि और रात के क्षय का तथा दक्षिणायन में रात की वृद्धि और दिन के क्षय का परिमाण बतानेवाले **"घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः"** इत्यादि पद्य में (श्लो.८) प्रतिपादित बात ठीक बैठती है। इस विषय का विशेष स्पष्टीकरण हमारे संस्कृतव्याख्यान से युक्त वेदाङ्ज्योतिष के संस्करण (२००५ क्रै.) में है॥२४॥

[इष्टतिथि में सूर्यनक्षत्र के ज्ञान का उपाय]

एकादशभिरभ्यस्य पर्वाणि नवभिस् तिथिम्।
युगलब्धं सपर्व स्याद् वर्तमानाऽर्कभं क्रमात् ॥२५॥

श्रविष्ठा (धनिष्ठा) नक्षत्र का आदि में माघशुक्लप्रतिपदा में प्रवृत्त पञ्चवर्षात्मक आदियुग के गत पर्वों को ११ से गुणा करके इष्ट तिथि में व्यतीत तिथियों की संख्या को ९ से गुणा करके दोनों गुणनफलों के जोड में युगपर्वों की सङ्ख्या (१२४) से भाग देना चाहिए और भागफल में गत पर्वों की सङ्ख्या जोडी जानी चाहिए। अब यह योगफल श्रविष्ठा से (धनिष्ठा से) क्रमशः गिने हुए नक्षत्रों का बोधक होगा और यही नक्षत्र सूर्य का नक्षत्र होगा।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उदाहरण– धनिष्ठादि माघशुक्लप्रतिपदा में प्रवृत्त आदियुग के चतुर्थ पक्ष की द्वादशी में सूर्य का नक्षत्र ज्ञेय हो तो गत पर्व ३, ग्यारह से गुणन करने पर ३×११=३३, गत तिथि ११, उसका नौ से गुणन करने पर ११×९=९९, गुणनफल के योग करने पर ३३+९९=१३२, उसका युगपर्वसंख्या से भाग देने पर १३२÷१२४=१$\frac{८}{१२४}$, वहाँ गतपर्वसङ्ख्या जोडने पर ३+१$\frac{८}{१२४}$= ४$\frac{८}{१२४}$, अतः धनिष्ठा से पाँचवें रेवती नक्षत्र को सूर्य के वर्तमान नक्षत्र जाने। उपर्युक्त गणित से चतुर्थ पक्ष की द्वादशी के आरम्भ में सूर्यद्वारा धनिष्ठा से चार नक्षत्रों को पार करके रेवती के १२४ भागों में से ८वें भाग को भी पार किया गया है, यह बात जानी जाती है॥२५॥

[सूर्य का नक्षत्रविशेष में प्रवेश के काल के ज्ञान का उपाय]

सूर्यर्क्षभागान् नवभिर् विभज्य
शेषं द्विरभ्यस्य दिनोपभुक्तिः।
तिथेर् युता भुक्तिदिनेषु कालो-
ऽयोगे दिनैकादशकेन तद् भम्॥२६॥

सूर्य से भोगे जा रहे नक्षत्र का अंशों को ९ का भाग दे और लब्धि को तिथि के रूप में लेकर शेष को तिथीकृत करके २ से गुणा करे, यह गुणनफल उक्त तिथीकृत अंशों से भोगे गए अंशो से अतिरिक्त दिनभुक्तांश होता है, इसको उक्त लब्धि से सूचित तिथियों से भोगे गए अंशों से अतिरिक्तदिनभुक्तांशों में युक्त करे और इस योगफल को सूर्यभुक्त नक्षत्रांश से सम्बद्ध तिथिकाल से घटाने पर जो फल होता है उसको सूर्य के सम्बद्ध नक्षत्र में प्रवेश से बीते हुए सावनदिनमित काल जाने। सूर्यप्रविष्ट नक्षत्र तो पूर्वोक्त दिनविशेष में सूर्य का नक्षत्रविशेष में प्रवेश को दिखानेवाले करणसूत्ररूप तथा एकादश-शब्द से आरब्ध श्लोक (श्लो.२५) से जाने।

उदाहरण– श्रविष्ठादि में माघशुक्लप्रतिपदा के आरम्भ में प्रवृत्त पञ्च-वर्षात्मक आदियुग के चतुर्थ पक्ष के प्रतिपदा के अन्त में सूर्यभुक्त उत्तरभद्रपद नक्षत्र का भाग ४२ हैं। इन भागों को नौ से भाग देने पर (४२÷९= ४$\frac{६}{९}$)। तिथीकृत नवमभागरूप अंशों को दो से गुणन करने पर ($\frac{६}{९}$×२= $\frac{१२}{९}$= १$\frac{३}{९}$= १$\frac{१}{३}$)। यह

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सङ्ख्या ($१\frac{१}{३}$) छः नवमांशों से प्राप्य तिथिभुक्तांशातिरिक्त-दिनभोग्यांशरूप दिनोपभुक्ति की बोधिका है। इस सङ्ख्या को ($१\frac{१}{३}$) लब्ध तिथियों का तिथिभुक्तांशातिरिक्त-दिनभोग्यांशरूप की (दिनोपभुक्ति की) भुक्ति-दिन-सङ्ख्या में (४×२=८) जोडे ($१\frac{१}{३}+८=९\frac{१}{३}$)। इस के बाद तिथीकृत उक्त सङ्ख्या का ($\frac{९\frac{१}{३}}{१२४}$) सूर्यभुक्त नक्षत्रभाग को नौ से भाग देने पर प्राप्त तिथिबोधक सङ्ख्या से घटाने पर [$४\frac{६}{९} - \frac{९\frac{१}{३}}{१२४} = \frac{४२}{९} - (\frac{२८}{३} \div १२४) = \frac{१४}{३} - (\frac{२८}{३} \div \frac{१२४}{१}) = \frac{१४}{३} - (\frac{२८}{३} \times \frac{१}{१२४}) = \frac{१४}{३} - (\frac{७}{३} \times \frac{१}{३१}) = \frac{१४}{३} - \frac{७}{९३} = \frac{१४}{३} \times \frac{३१}{३१} - \frac{७}{९३} = \frac{४३४}{९३} - \frac{७}{९३} = \frac{४३४-७}{९३} = \frac{४२७}{९३} = ४\frac{५५}{९३}$] फल को सूर्य का उस नक्षत्र में प्रवेश से व्यतीत सावनदिनमित काल जानना चाहिए। इस प्रकार उक्त प्रतिपदा के अन्त में सूर्य का उत्तरभद्रपद नक्षत्र में प्रवेश से $४\frac{५५}{९३}$ सावनदिनतुल्य काल व्यतीत हुआ, ऐसा जानना चाहिए। सूर्य का वर्तमान नक्षत्र तो पूर्वश्लोकोक्त रीति से ज्ञात उत्तरभद्रपद नक्षत्र ही है, ऐसा जाने।

विशेष– यह पद्य ऋग्वेदियों की परम्परा के वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ में नहीं है। शङ्करबालकृष्ण दीक्षित ने इस पद्य की व्याख्या नहीं की। इस श्लोक की व्याख्या की बार्हस्पत्य की रीति में सुधाकर द्विवेदी ने दोष दिखाया है। सुधाकर ने इस पद्य की अपनी रीति से व्याख्या की है। बार्हस्पत्य और सुधाकर दोनों का निष्कर्ष समान होने की बात बालगङ्गाधर तिलक ने कही है। तिलक ने भी इस पद्य की स्वोत्प्रेक्षित व्याख्यानरीति प्रदर्शित की है। किन्तु उनकी रीति में प्रथम पाद से जो फल आता है, सम्पूर्ण श्लोक से भी वही फल आता है। अतः उनकी वह रीति निष्फलप्राय दीखती है। हमने तो बालगङ्गाधर तिलक की रीति को भी विचार में रखकर सुधाकरप्रस्तुत रीति में परिष्कार करके इस पद्य का व्याख्यान किया है। इस पद्य की शामशास्त्री की व्याख्या और उसी का सत्यप्रकाश डी. एस्सी. से किया गया अनुकरण दोनों ही जैन ग्रन्थों से अनावश्यक और अनुचित रूप से प्रभावित होने से असङ्गत दिखाई देते हैं। उन लोगों से बताए गए योग का श्रौत-स्मार्त यज्ञों के प्रतिपादक श्रुति-श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्रादि वाङ्मय में कोई अपेक्षा नहीं है॥२६॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[रविदिवसभोग्य नक्षत्रांशमान इत्यादि]

त्रिंशी भशेषो दिवसांशभागश्
चतुर्दशस्याऽप्युपनीय भिन्नम्।
भार्धाऽधिके चाऽपि गते परोऽंशो
द्वावुक्तमेकं नवकै रवेर् द्यु ॥२७॥

तीसवें भाग से सहित सूर्यनक्षत्रांश का एक भाग ($१\frac{१}{३०}$) एक रविदिन में सूर्यभोग्य नक्षत्रांशसमूह का भाग होता है। वह भाग सावनदिन के भिन्नाङ्कसहित चौदह अंशों के समूह का भी ($१४\frac{१}{१३५}$) अनुरूप होता है। भुक्त रविनक्षत्रभागों में व्यतीत रविदिन के सङ्ख्या के ज्ञान के लिए सूर्य से आधे से अधिक नक्षत्र का भोग किए जाने पर गणित में लाघव करने के लिए भुक्त से अगले अंश का ग्रहण करना चाहिए। रविनक्षत्रभागरूप त्रिंशी अंश ($१\frac{१}{३०}$) और पूर्वोक्त सावनदिनभाग ($१४\frac{१}{१३५}$) दो ही एक (तुल्य) ही बताए गए हैं और प्रत्येक को नौ से गुणन करने पर रविदिवस होता है। वहाँ नक्षत्रांश का नौ से गुणन करने पर नक्षत्रांशमान में रविदिवस आता है ($१\frac{१}{३०}\times९=\frac{३१}{३०}\times९=\frac{३१}{१०}\times३=\frac{९३}{१०}=९\frac{३}{१०}$) और सावनदिनांशों का नौ से गुणन करने पर सावनदिनांशमान में रविदिवस आता है ($१४\frac{१}{१३५}\times९=\frac{१८९१}{१३५}\times९=\frac{१८९१}{१५}=१२६\frac{१}{१५}$), यह बात जाननी चाहिए।

विशेष– इस पद्य की व्याख्या शङ्करबालकृष्णदीक्षित ने नहीं की। अतः तत्पूर्ववर्ती अन्य आधुनिक अध्येताओं से भी यह पद्य अव्याख्यात अवगत होता है। बार्हस्पत्य और सुधाकर की व्याख्या में अरुचि दिखाकर बालगङ्गाधर तिलक ने ऋग्वेदियों की परम्परा से आए हुए पाठ में कुछ संशोधन करके **"कार्या भांशाष्टकस्थाने"** इत्यादि श्लोक (श्लो. १९) के उत्तरार्ध से जोडकर अपनी रीति से इस पद्य की व्याख्या की है। किन्तु उस श्लोक के उत्तरार्ध का बालगङ्गाधर तिलक का व्याख्यान और उससे जोडकर पर्वभादानकला निकालने के विधि के रूप में उनसे किया गया इस पद्य का व्याख्यान भी सर्वथा समुचित प्रतीत नहीं होता है। तिलक के व्याख्यान के अनुसार उतना करने पर भी पर्वनक्षत्र का प्रवेश की दिनकलाओं में ४ कला तक की अशुद्धि विद्यमान रहने की बात स्वयं तिलकद्वारा ही स्वीकार किये जाने से उनकी व्याख्या अयुक्त ही सिद्ध होती है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शामशास्त्री का और तदनुयायी सत्यप्रकाश डी. एस्सी. का व्याख्यान भी अयथार्थ ही दिखाई देता है। हम लोगों ने प्राचीन हस्तलेखादि में प्राप्त 'त्रिंशी' इत्यादि युक्तियुक्त पाठों को लेकर अर्थ किया है।

सावनदिनांशों में रविदिवसमान गर्गवचन में (सोमाकरभाष्य, श्लो.११) स्पष्ट रूप में प्रतिपादित हैं[1]। वह गर्गवचन म्याक्समूलर की ऋग्वेद-चतुर्थखण्ड-भूमिका में भी उद्धृत है, किन्तु संस्कृतभाषाज्ञान की न्यूनता से म्याक्समूलर ने उसका गलत अर्थ किया है॥२७॥

[युग के अवयव दिनादि की सङ्ख्या]

त्रिशत्यह्नां सषट्षष्टिरब्दः षट् चर्तवोऽयने।
मासा द्वादश सौराः स्युरेतत् पञ्चगुणं युगम्॥२८॥

छैसठ से युक्त तीन सौ (३६६) दिन, छः ऋतु, दो अयन एक सौर वर्ष है, इस में बारह सौर मास होंगे, पाँच गुणा यह समुदाय युग कहा जाता है।

विशेष– शुद्ध सौर वर्ष, अयन, ऋतु और मास का श्रौतस्मार्त धर्मकृत्यों में उपयोग नहीं होता है। चान्द्र वर्ष, अयन, ऋतु और मास का नियमन तो स्थूल आसन्न सौर वर्ष, अयन, ऋतु और मास के मान से भी किया जा सकता है। सौर और चान्द्र मानों के बीच के सम्बन्ध का दिक्प्रदर्शनात्मक गणित को सरल बनाने के लिए सौर वर्ष में ३६६ दिन स्वीकार करने पर भी अनुसरणीय चान्द्र मान में उसका कोई दुष्प्रभाव नहीं पडता है। सौर अयन का ज्ञान तो दिनवृद्धि-रात्रिह्रास और रात्रिवृद्धि-दिनह्रास के निरीक्षण से अथवा शङ्कुच्छाया के निरीक्षण से ही आसानी से किया जा सकता है। केवल सौर अयन से ही चान्द्र-वर्ष अयन-ऋतु-मास-अधिमासों का नियमन किया जा सकता है। इन्ही कारणों से सौर मानों की सूक्ष्मता के साधन में वेदाङ्गज्योतिषकार का अनादर अवगत होता

---

१. सौर्यं तु सूर्यसम्भूतं परिसर्पति भास्करे।
यावता ह्युत्तरां काष्ठां गत्वा गच्छति दक्षिणाम्॥
कालेन सोऽब्दस् तस्यार्धमयनं तु त्रयोर्त्तवः।
ऋतोरर्धो भवेन् मासस् त्रिंशद्भागो दिनोऽर्कजः॥
तस्यार्धमर्कजः पक्षस् तस्मात् पञ्चदशं दिनम्।
शतं लवानां षड्विंशं लवाः पञ्चस् (लवपञ्चदशस्) (१२६$\frac{१}{१५}$) तथा॥५-७॥
—गर्गवचन, सोमाकरभाष्य, वेदाङ्गज्योतिष, श्लो.११।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। इस प्रकार की वस्तुस्थिति को न समझकर लगधप्रतिपादित सौरवर्षगणना को स्वीकार करने पर १०० वर्षों में ७५ दिन का अन्तर होता है, ऐसा कहकर लगधमुनि के ग्रन्थ में दोष के आरोप का प्रयास करना अनुचित है। चान्द्र मास का भी प्रत्यक्ष अवलोकन से ही निर्धारण करने की वैदिकपरम्परा ब्राह्मणग्रन्थों से और श्रौतसूत्रों से भी विदित होती है। अतः चान्द्रमान की कुछ स्थूलता से भी वेदाङ्गज्योतिषपद्धति के अनुसरणीय कालगणना में कोई दुष्प्रभाव नहीं पडता है। अतः उसमें भी दोषारोपण का प्रयास अनुचित ही है। प्रकृत को, देश के अन्तर और काल के अन्तर इत्यादि को विचार करके ग्रन्थकर्ता के आशय को ठीक प्रकार से समझकर ही उसके वचन का अर्थ करना चाहिए, यह आर्षग्रन्थों के अर्थों को समझने का सिद्धान्त चरकसंहिता (१।२६।३७) में स्पष्टतया प्रतिपादित ही है॥२८॥

[एक युग में श्रविष्ठादि के उदय की सङ्ख्याएँ]

उदया वासवस्य स्युर् दिनराशिः सपञ्चकः।
ऋषेर् द्विषष्ट्या हीनः स्याद् विंशत्या सैकया स्तृणाम्॥२९॥

एक युग में श्रविष्ठा के (धनिष्ठा के) उदय ५ से सहित युगदिनसङ्ख्या (१८३०+५ =१८३५) में होंगे। एक युग में चन्द्रमा के उदय युगदिनसंख्या में बासठ कम सङ्ख्या (१८३०-६२=१७६८) में होंगे। एक युग में चान्द्र नक्षत्रों का उदय युगदिनसंख्या में इक्कीस कम सङ्ख्या (१८३०-२१=१८०९) में होंगे॥२९॥

[युग में सूर्यनक्षत्र, चान्द्र अयन और पर्वों की सङ्ख्या तथा कलाकाष्ठा]

पञ्चत्रिंशं शतं पौष्णमेकोनमयनान्यृषेः।
पर्वणां स्याच् चतुष्पादी काष्ठानां चैव ताः कलाः॥३०॥

एक युग में सूर्यचार के नक्षत्र एक सौ पैंतीस (१३५) होते हैं, एक युग में चन्द्रमा के अयन एक से कम एकसौ पैंतीस अर्थात् एक सौ चौतीस होते हैं, एक युग में पर्व चार पादों के समुदाय (३१+३१+३१+३१=१२४) की सङ्ख्या में होते हैं (पाद शब्दसे ३१ सङ्ख्या लेने की बात **"पादस् त्रिंशत् तु सैकिका"** कहकर [श्लो.१२] बताया गया ही है), काष्ठाओं की चतुष्पादीमित सङ्ख्या (१२४) की कलाएँ होती हैं (१२४ काष्ठा=१ कला)॥३०॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[युग में सावनमास की, चान्द्रमास की और नाक्षत्रमास की सङ्ख्या तथा सावनादिमास के दिनों की सङ्ख्या]

सावनेन्दुस्तृमासानां षष्टिः सैकद्विसप्तिका।
द्युत्रिंशत् सावनः साऽर्धः सौरः स्तृणां स पर्ययः ॥३१॥

एक युग में सावन मास के, इन्दुमास (चान्द्रमास) के, और नक्षत्रमास के क्रमशः एक से सहित साठ (एकसठ), दो से सहित साठ (बासठ), और सात से सहित साठ (सतसठ) होते हैं। अर्थात् एक पञ्चवर्षात्मक युग में सावनमासों की सङ्ख्या एकसठ, चान्द्रमासों की सङ्ख्या बासठ और नाक्षत्रमासों की सङ्ख्या सतसठ होती है। दिनों का तीस (तीस दिन) एक सावन मास होता है, आधा दिन से युक्त वही सावन मास (अर्थात् $३०\frac{१}{२}$ दिन) एक सौर मास होता है, नक्षत्रचक्र का चन्द्रकृत एक परिभ्रमण ($१८३०÷६७= २७\frac{२१}{६७}$ दिन) नक्षत्रों का एक मास होता है।

विशेष– शङ्करबालकृष्ण दीक्षित ने इस श्लोक का ठीक अर्थ लिखा है। परन्तु बार्हस्पत्य, सुधाकर, शामशास्त्री इत्यादि अनुसन्धाताओं ने **'सावनस्याऽब्दः सौरः स्तृणां विपर्ययः'** अथवा **'सावनस्याऽब्दः सौरः स्तृणां स पर्ययः'** ऐसा अशुद्ध पाठ स्वीकार कर उसका अयथार्थ अर्थ कैसे लिखा इसका कारण अवगत नहीं होता॥३१॥

[नक्षत्र की देवताएँ]

अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिर् बृहस्पतिः।
सर्पाश् च पितरश् चैव भगश् चैवाऽर्यमाऽपि च ॥३२॥

सविता त्वष्टाऽथ वायुश् चेन्द्राऽग्नी मित्र एव च।
इन्द्रो निरृतिरापो वै विश्वेदेवास् तथैव च ॥३३॥

विष्णुर् वसवो वरुणोऽज एकपात् तथैव च।
अहिर्बुध्न्यस् तथा पूषा अश्विनौ यम एव च ॥३४॥

[कृत्तिका का] अग्नि, [रोहिणी का]) प्रजापति (ब्रह्मा), [मृगशीर्ष का] सोम (चन्द्र), [आर्द्रा का] रुद्र, [पुनर्वसु का] अदिति, [तिष्य का] बृहस्पति,

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[आश्लेषा का] सर्प, [मघा का] पितर, [पूर्वफल्गुनी का] भग (सूर्यविशेष), [उत्तरफल्गुनी का] अर्यमा (धाता), [हस्त का] सविता (सूर्य), [चित्रा का] त्वष्टा, [स्वाति का] वायु, [विशाखा का] इन्द्राग्नी, [अनुराधा का] मित्र (सूर्य-विशेष), [ज्येष्ठा का] इन्द्र, [मूल का] निरऋति, [पूर्वाषाढा का] आपः (जल), [उत्तराषाढा का] विश्वेदेव, [श्रवण का] विष्णु, [धनिष्ठा का] वसु, [शतभिषक् का] वरुण, [पूर्वभद्रपद का] अज एकपात् (सूर्यविशेष), [उत्तरभद्रपद का] अहिर्बुध्न्य, [रेवती का] पूषा, [अश्विनी का] अश्विनीकुमार, [(अप-)भरणी का] यम [ये नक्षत्रों की देवताएँ हैं]॥३२-३४॥

[यजमान का यज्ञकर्मार्थ नक्षत्रज नाम नक्षत्रदेवता से रखने का विधि]

नक्षत्रदेवता ह्येता एताभिर् यज्ञकर्मणि।
यजमानस्य शास्त्रज्ञैर् नाम नक्षत्रजं स्मृतम्॥३५॥

ये ही नक्षत्रों की देवताएँ हैं, [अपने-अपने जन्म के नक्षत्र से सम्बद्ध] इन नक्षत्र-देवताओं से यज्ञ कर्म के लिए यजमान का नक्षत्रज नाम की कर्तव्यता वेदशास्त्रज्ञ मुनियों ने समझी (बताई) है।

विशेष– यहाँ पर वैदिक नक्षत्रनामकरणविधान को वर्णित किया गया है। यह विधान वैदिक नक्षत्रदेवताओं से सम्बद्ध है। नामकरणसंस्कार में नक्षत्रनाम के निर्णय के विषय में वर्तमान काल में प्रचलित 'अवकहडचक्र' प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में सर्वथा अनुपलब्ध है। वेदाङ्गज्योतिष का नक्षत्रनामकरणविधान इस चक्र के विधान से बिलकूल भिन्न है। वेदाङ्गज्योतिष के नक्षत्रनामकरणविधान का प्रभाव चरकसंहिता में दिखाई देता है (शारीरस्थान ८।५० [८।४५])। इसका स्पष्टीकरण चक्रपाणि ने और गङ्गाधर ने वेदाङ्गज्योतिषानुकूल रूप में किया है। सुश्रुतसंहिता में भी ऐसी बात है (शारीर.१०।२४)। इसका स्पष्टीकरण डल्हण ने भी लगधप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ में प्रतिपादित व्यवस्था के अनुसार ही किया है। अष्टाङ्गसङ्ग्रह के उत्तरस्थान के प्रथम अध्याय में (श्लो.७८) भी वेदाङ्ग-ज्योतिष की ही अनुकूल बात पाई जाती है। विक्रमसंवत् १७५६ में रचित संस्कारभास्कर ग्रन्थ में भी कात्यायनसूत्रानुसारी लोगों में वेदाङ्गज्योतिष के अनुकूल नक्षत्रनाम रखने की परम्परा जीवित रहने की बात पाई जाती है (मुम्बई, १९६९ वै., पृ.१२३-१२४)। धर्मसिन्धु में भी इस विषय का उल्लेख है। वैदिक

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नक्षत्रनामकरण की पद्धति के महत्त्व के और अनुसरणीयता के सम्बन्ध में इसी ग्रन्थ के पन्द्रहवें ज्वलन्त प्रश्न के प्रकरण को (पृ. १२२–१२५) और हमारी संस्कृतव्याख्या से युक्त वेदाङ्गज्योतिष के संस्करण (२००५ क्रै.) में संस्कृत-भूमिका के अडतीसवें प्रकरण (पृ.२०३–२१६) को देखें॥३५॥

[नक्षत्रविशेषों की उग्र और क्रूर सञ्ज्ञा]

उग्राण्यार्द्रा च चित्रा च विशाखा श्रवणोऽश्वयुक्।
क्रूराणि तु मघाः स्वातिर् ज्येष्ठा मूलं यमस्य यत्॥३६॥

आर्द्रा, चित्रा, विशाखा, श्रवण और अश्विनी उग्र नक्षत्र हैं। मघा, स्वाति, ज्येष्ठा, मूल और यम का जो नक्षत्र है वह नक्षत्र (भरणी) क्रूर नक्षत्र हैं [शेष कृत्तिकादि नक्षत्र पुण्य नक्षत्र हैं]।

विशेष– मुहूर्तचिन्तामणि में तो पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वभद्रपद, भरणी और मघा ही उग्र और क्रूर भी बताए गए हैं[1]। इस से श्रुति-सूत्राऽनुकूल लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष की व्यवस्था में और मुसलमानों के शासनकाल में (१६५७ वैक्रमाब्द में) बने हुए अर्वाचीन ग्रन्थ मुहूर्तचिन्तामणि की व्यवस्था में बडा ही अन्तर दिखाई देता है। पीयूषधारा में उद्धृत कथित वसिष्ठादिवचन भी वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ के अनुकूल न होने से चिन्त्य ही हैं॥३६॥

[वैदिक अधिकमास की व्यवस्था]

द्व्यूनं द्विषष्टिभागेन दिनं सौराच् च पार्वणम्।
यत्कृतावुपजायेते मध्येऽन्ते चाऽधिमासकौ॥३७॥

सौर दिन से पार्वण दिन (तिथि) बासठ भागों में से दो भागों से न्यून होता है, जिस कारण से पाँच वर्षों के युग के (आदियुग के) मध्य में (उदगयन के अन्त में शुचिमास में [वैदिक आषाढ में]) और (उस युग के) अन्त में (दक्षिणायन के अन्त में सहस्यमास में [वैदिक पौष में]) दो अधिमास उत्पन्न होते हैं।

---

१. पूर्वात्रयं याम्य-मघे उग्रं क्रूरं कुजस् तथा।
तस्मिन् घाताग्निशाठ्यादि विषशस्त्रादि सिध्यति॥—मुहूर्तचिन्तामणि२।४।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष– यह लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष की कालगणना पद्धति के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त को बतानेवाला श्लोक है। राशियों के आधार में नहीं, दृक्सिद्ध सौर अयनों के आधार में अधिकमास मानकर सौर अयनों में और चान्द्र अयनों में तथा सौर वर्षों में और चान्द्र वर्षों में तालमेल बनाए रखने की यह अनादि वैदिक पद्धति अर्वाचीन-निरयण-राशिपद्धति से अप्रभावित है और विशेष ध्यानयोग्य है।

इस अधिकमासव्यवस्था में सभी पञ्चवर्षात्मक युग के सभी युगार्धों में अधिकमास नियमित रूप से नहीं योजित किया जाता है, यथावश्यक औचित्यानुसार ही अधिकमास योजित किया जाता है। किन्तु जब-जब अधिकमास योजित किया जाता है तब-तब अयन के अन्त में ही शुचिमास में (वैदिक आषाढ में) अथवा सहस्यमास में (वैदिक पौष में) द्वितीयशुचिमास के (द्वितीयाषाढ के) रूप में अथवा द्वितीयसहस्यमास के (द्वितीयपौष के) रूप में ही अधिकमास योजित किया जाता है, अयन के मध्य में अन्य मासों में नहीं। इस प्रकार की व्यवस्था में जब दृक्सिद्ध सौर अयन के आरम्भ के दिन में कृष्णपक्ष की दशमी वा उसके पीछे की तिथि होती है उसी अवस्था में उसकृष्णपक्ष से युक्त अमावास्यान्त मास अधिकमास (मलमास) माना जाता है[1]॥३७॥

[नाडिका की और मुहूर्त की परिभाषा, दिनगत मुहूर्तसङ्ख्या और कलासङ्ख्या]

कला दश सविंशाः स्यान् नाडिका, ते मुहूर्तकः।
द्यु त्रिंशत्, तत् कलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्॥३८॥

अपने बीसवें भाग से युक्त दश कलाएँ एक नाडिका होती है ($१०\frac{१}{२०}$ कलाएँ=१नाडिका)। दो नाडिकाएँ एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्त एक दिन (अहोरात्र) होता है। कला के विचार से तो तीन से अधिक छ सौ (६०३) कलाएँ वह (द्यु=एक अहोरात्र) होता है।

विशेष– लगधमुनिप्रोक्त कालमान का प्रभाव पुराणादि ग्रन्थों में भी दिखाई देता है। प्रस्तुत श्लोक में प्रतिपादित कालमान के अनुकूल वचन ब्रह्माण्ड-पुराण, वायुपुराण, महाभारत-शान्तिपर्व, सुश्रुतसंहिता इत्यादि ग्रन्थों में भी पाए

---

१. वैदिक अधिकमास के विषय में विस्तृत विवेचन इसी ग्रन्थ के ९५–१०२ पृष्ठों में किया गया है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाते हैं। उनमें से कुछ वचन हमारे संस्कृत-व्याख्यान से युक्त वेदाङ्गज्योतिष के संस्करण (२००५क्रै.) में उद्धृत किए गए हैं (पृ.४१३–४१४)॥३८॥

[चन्द्र के और सूर्य के नक्षत्रयोग का काल तथा काष्ठा की परिभाषा]

ससप्तकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
नवमानि च पञ्चाऽह्नः काष्ठा पञ्चाऽक्षरा भवेत्॥३९॥

चन्द्रमा एक सावन दिनभर और दिन की ६०३ कलाओं में से ७ कला तक एक नक्षत्र का भोग करता है और सूर्य तेरह दिन और दिन के समान ९ भागों में से ५ भाग तक एक नक्षत्र का भोग करता है। एक काष्ठा पाँच लघु अक्षरों को द्रुतवृत्ति में उच्चारण करने में जितना समय लगता है उतने समय की होगी।

मूलोक्त चन्द्र का और सूर्य का नक्षत्रभोगकाल की उपपत्ति इस प्रकार है– एक युग में चन्द्र ६७×२७=१८०९ नक्षत्र का भोग करता है (श्लो.२९)। युग में १८३० सावन दिन होते हैं (श्लो.२८)। अतः $\frac{१८३०}{१८०९}$=१$\frac{२१}{१८०९}$=१$\frac{७}{६०३}$ होने से चन्द्रमा एक अहोरात्र और अहोरात्र के ६०३ कलाओं में से ७ कला तक एक नक्षत्र का भोग करता है, यह बात सिद्ध होती है। इसी प्रकार सूर्य १८३० सावनदिनात्मक युग में २७×५=१३५ नक्षत्र का भोग करता है (श्लो.३०)। अतः $\frac{१८३०}{१३५}$=१३$\frac{५}{९}$ होने से सूर्य तेरह अहोरात्र और अहोरात्र के नौ समान भागों में से पाँच भाग तक एक नक्षत्र का भोग करता है, यह बात सिद्ध होती है।

विशेष– "अहोरात्रं कलाश् चैव सप्त सोमः समश्नुते" कहकर वायुपुराण में (१।५०।१७६) भी चन्द्रमा का एक नक्षत्र में रहने का काल एक अहोरात्र (६०३ कला) और ७ कला (६०३+७=६१०कला) बताया गया है। ऐसे ही वचन ब्रह्माण्डपुराण इत्यादि में भी मिलते हैं॥३९॥

[दिनमान के ज्ञान का उपाय]

यदुत्तरस्याऽयनतो गतं स्याच्
छेषं तथा दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं
सद्वादशं स्याद् दिवसप्रमाणम्॥४०॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्तरायण में अयनारम्भ दिन से इष्ट दिन तक उत्तरायण के जितने दिन बीते हैं उनको द्विगुणित करके उस गुणनफल को ६१ का भाग देकर लब्धि में १२ जोड देने से इष्ट दिन का मुहूर्तात्मक दिवसप्रमाण (दिनमान) प्राप्त होगा। दक्षिणायन में इष्ट दिन से दक्षिणायनसमाप्ति तक जितने दिन अवशिष्ट हैं उनको द्विगुणित करके उस गुणनफल को ६१ का भाग देकर लब्धि में १२ जोड देने से इष्ट दिन का मुहूर्तात्मक दिनमान होगा।

उदाहरण— उदगयनारम्भदिन से पाँचवे दिन के दिवसमान ज्ञेय हो तो $१२+\frac{५\times२}{६१}=१२\frac{१०}{६१}$ होने से उस दिन का दिनमान $१२\frac{१०}{६१}$ मुहूर्त जाने। यदि दक्षिणायन में दक्षिणायनसमाप्ति के लिए १५ दिन अवशिष्ट होने पर दिवस का प्रमाण (दिनमान) ज्ञेय हो तो $१२+\frac{१५\times२}{६१}=१२\frac{३०}{६१}$ होने से उस दिवस का प्रमाण $१२\frac{३०}{६१}$ मुहूर्त जाने॥४०॥

[ऋतुशेष के ज्ञान का उपाय]

यदर्धं दिनभागानां सदा पर्वणिपर्वणि।
ऋतुशेषं तु तद् विद्यात् संख्याय सह पर्वणाम्॥४१॥

प्रत्येक पक्ष में चान्द्र पक्ष से (अर्धमास से) सौर अर्धमास में जो दिनभागों का आधा अतिरिक्त (ज्यादा) होता है उसको इष्ट दिनतक पञ्चवर्षात्मक युग के गत पर्वों की संख्या के साथ गणित करके (आधे दिनभागों को गत पर्वसङ्ख्या से गुणा करके) सौर ऋतु का शेष जाने। सौरार्धमासमें $१८३०\div१२०=१५\frac{३०}{१२०}=१५\frac{३१}{१२४}$ दिन और चान्द्रपक्ष में $१८३०\div१२४=१४\frac{९४}{१२४}$ दिन होते हैं; अतः $१५\frac{३१}{१२४}-१४\frac{९४}{१२४}=\frac{६१}{१२४}$ होने से चान्द्रपक्ष से सौर अर्धमास $\frac{६१}{१२४}$ दिन से बडा होता है। अथवा एक रविदिन में $१२६\frac{१}{१५}$ सावनदिनांश होते हैं (श्लो.२७)। एक तिथि में १२२ सावनदिनांश होते हैं। अतः सौर दिन और तिथि का अन्तर $१२६\frac{१}{१५}-१२२=४\frac{१}{१५}$ सावनदिनांश होता है, अतः सौर अर्धमास और चान्द्र पक्ष में $४\frac{१}{१५}\times१५=६१$ सावनदिनांश अर्थात् $\frac{६१}{१२४}$ दिन बराबर का अन्तर होने की बात स्पष्ट होती है। यह सावनदिनांश के आधे का अत्यन्त आसन्न होने से प्रतिपक्ष आधे दिन बराबर का ऋतुशेष लेने को कहा गया है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उदाहरण– आदियुग में युगारम्भ से बारह पर्व व्यतीत होने पर ऋतुशेष ज्ञेय हो तो $\frac{१}{२}$×१२=६ होने से उक्त युगारम्भ से बारह पर्व के बीतने के बाद (चान्द्र तीन ऋतु व्यतीत होने के बाद) सौर तृतीय ऋतु के ६ सावन दिन शेष जाने। प्रतिपर्व $\frac{६१}{१२४}$ सावनदिन बराबर का ऋतुशेष लेने पर तो $\frac{६१}{१२४}$×१२=$\frac{७३२}{१२४}$=५$\frac{११२}{१२४}$ होगा, अतः उक्त युगारम्भ से बारह पर्व (चान्द्र तीन ऋतु) व्यतीत होने के बाद सौर तृतीय ऋतु के ५$\frac{११२}{१२४}$ सावन दिन शेष होते हैं।

विशेष– शुद्ध सौर वर्ष, अयन, ऋतु और मास का श्रौतस्मार्त धर्मकृत्यों में मूलतः उपयोग न होने से; चान्द्र वर्ष, अयन, ऋतु और मास का नियमन तो स्थूल आसन्न सौर वर्ष, अयन, ऋतु और मास के मान से भी किया जा सकने से; सौर और चान्द्र मानों के बीच के सम्बन्ध के दिक्प्रदर्शनात्मक गणित को सरल बनाने के लिए सामान्यतया सौर वर्ष में ३६६ सावनदिन, सौर अयन में १८३ सावनदिन, सौर ऋतु में ६१ सावनदिन, सौर मास में ३०$\frac{१}{२}$ सावनदिन, सौरार्धमास में १५$\frac{३१}{१२४}$ सावनदिन और सौर दिन (रविदिन) में १२६$\frac{१}{१५}$ सावनदिनांश स्वीकार करने पर भी अनुसरणीय चान्द्र मान में उसका कोई दुष्प्रभाव न पडने से; सौर अयन का ज्ञान तो दिनवृद्धि-रात्रिह्रास और रात्रिवृद्धि-दिनह्रास के अथवा शङ्कुच्छाया के निरीक्षण से ही आसानी से किया जा सकने से तथा केवल सौर अयन से भी चान्द्र-वर्ष-अयन-ऋतु-मास-अधिमासों का नियमन सम्भव होने से सौर मान की सूक्ष्मता के साधन में वेदाङ्गज्योतिषकार का अनादर अवगत होता है। अत एव यहाँ पर इसी ग्रन्थ में स्वीकृत उपर्युल्लिखित सौर अर्धमास के मान को लेकर गणित करने पर भी आधे दिन से कम के ही अन्तर आने पर (सौरार्धमासदिन १५$\frac{३१}{१२४}$ – चान्द्रपक्षदिन १४$\frac{९४}{१२४}$=अन्तरदिन $\frac{६१}{१२४}$) भी सामान्यतया आधे दिन का अन्तर मान कर उल्लेख किया गया है। इस श्लोक में प्रतिपादित रीति से सौर ऋतु और चान्द्र ऋतु के आसन्न अन्तर को ज्ञात करके वास्तविक अन्तर को मध्याह्नशङ्कुच्छायादि से विचार करते रहने की आवश्यकता भी प्रकारान्तर से सूचित होती है। इस प्रकार की वस्तुस्थिति को समझने से लगधमुनिप्रतिपादित विविध मानों में अदोष समझा जा सकता है॥४१॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[प्रस्तुत ग्रन्थ का कालज्ञानोपायसमुद्देशपरत्व और अन्य कल्पनाधारत्व]

इत्युपायसमुद्देशो भूयोऽप्येनं प्रकल्पयेत्।
ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं विभजेज् ज्ञातराशिना ॥४२॥

उक्त रूप में एक पञ्चवर्षात्मक निदर्शनार्थ आदियुग की कालगणना की रीति को दिखाकर अन्य युगों की भी कालगणना करने के उपाय का वस्तुगत उपदेश किया गया है। इस उपाय को वस्तुस्थिति के अनुकूल रूप में अन्य रीति से भी कल्पित करे। अवगत राशि से गुणित ज्ञेय मूल राशि को ज्ञानसाधन ज्ञात राशि से विभक्त करे। (त्रैराशिक से अज्ञात राशि जाने।)

विशेष– इस श्लोक से लगधमुनिद्वारा 'इस ग्रन्थ में प्रतिपादित सभी विषय कालगणना के उपाय के दिक्प्रदर्शन के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं, इस दिक्प्रदर्शन को अवलम्बन करके तत्तद् देश में और तत्तत् काल में श्रौतस्मार्तधर्मकृत्यार्थक कालगणना की रीति को वेदाङ्गज्योतिषतात्पर्यविद् द्विजवरों को प्रकल्पित करना चाहिए' यह बात स्पष्टतया ही कही गई है। हम लोगों ने भी तत्तत् स्थलों में इस वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ का दिक्प्रदर्शनार्थत्व प्रतिपादित किया ही है॥४२॥

[वेदाङ्गज्योतिष के प्रतिपाद्य विषयों के और प्रवक्ता के निर्देश से ग्रन्थ का उपसंहार]

इत्येतन् मासवर्षाणां मुहूर्तोदयपर्वणाम्।
दिनर्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत् ॥४३॥

उक्त प्रकार का यह चान्द्र वर्षों का, मुहूर्त का, धनिष्ठादि के उदयों का, पर्वों का, दिनों का, ऋतुओं का, अयनों का और मासों का व्याख्यान लगधमुनि ने बोला।

विशेष– इस श्लोक में सोमाकर का भाष्य नहीं मिलता है। इसी लिए कुछ लोग इस पद्य को मूल वेदाङ्गज्योतिष में न होने की आशङ्का करते हैं। किन्तु यह आशङ्का सोमाकरभाष्य का सूक्ष्मता से अध्ययन न करने से आई है। सोमाकर ने "एवमुपसंहृत्य विज्ञानफलमाह" कहकर इस पद्य का भी सङ्केत तो दिया ही है॥४३॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[ग्रन्थार्थज्ञान का फल]

सोमसूर्यस्तृचरितं विद्वान् वेदविदश्नुते।
सोमसूर्यस्तृचरितं लोकं लोके च सन्ततिम्,
लोकं लोके च सन्ततिमिति॥४४॥

॥ इति यजुर्वेदिनां परम्परयाऽऽगतं परिष्कृतं वेदाङ्गज्योतिषं समाप्तम्॥

चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रों के चार को (गति को) जाननेवाला वेदज्ञ द्विजाति सोमचरित लोक को, सूर्यचरित लोक को तथा नक्षत्रचरित लोक को प्राप्त करता है और इस लोक में सन्तति भी प्राप्त करता है। [द्विरुक्ति ग्रन्थ की समाप्ति की सूचिका है।]

विशेष– महाभारत के शान्तिपर्व में नाक्षत्रब्राह्मण (फलादेशपरायण ज्योतिषी ब्राह्मण) का निकृष्टत्व प्रतिपादित है[1], महाभारत के अनुशासनपर्व में भी ऐसा ही उल्लेख है[2], काश्यपधर्मसूत्र में नक्षत्रसूचक ब्राह्मण का अश्राद्धीय-ब्राह्मणत्व बताया गया है[3], मनुस्मृति में भी नक्षत्र से जीविका करनेवाले ब्राह्मण की हव्यकव्य में वर्जनीय ब्राह्मणों में गणना की गई है[4], विष्णुधर्मसूत्र में नक्षत्रजीवी ब्राह्मण का पित्र्य कर्म में विवर्जनीयत्व प्रतिपादित है[5], शङ्खलिखित के हेमाद्रिद्वारा उद्धृत (चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड, श्राद्धकल्प, पृ.४९२) वचन में नक्षत्रादेश की वृत्तिवाले ब्राह्मण को स्पष्ट रूप में अपाङ्क्तेय कहा गया

---

१. आह्वायका देवलका नाक्षत्रा ग्रामयाजकाः।
एते ब्राह्मणचाण्डला महापथिकपञ्चमाः॥–महाभारत शान्तिपर्व ७६।६।

२. चिकित्सकः काण्डपृष्ठः पुराध्यक्षः पुरोहितः।
सांवत्सरो वृथाध्यायी सर्वे ते शूद्रसम्मिताः॥– महाभारत अनुशासनपर्व १३५।११।

३. विश्रम्भघाती व्यङ्गो हि तथा नक्षत्रसूचकः।
वर्जनीया द्विजा ह्येते श्राद्धकर्मणि नित्यशः॥– काश्यपधर्मसूत्र, पृ. २७९।

४. हस्ति-गो-ऽश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर् यश् च जीवति।
पक्षिणां पोषको यश् च युद्धाचार्यस् तथैव च॥–मनुस्मृति ३।१६२।

५. हीनाधिकाङ्गान् विवर्जयेत्, विकर्मस्थांश् च, बैडालव्रतिकान्, वृथालिङ्गिनः, नक्षत्र-जीविनः, देवलकांश् च॥–विष्णुधर्मसूत्र ८२।३–८।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है[1]। विष्णुपुराण में (२।६।१८) नक्षत्रसूचक ब्राह्मण को अधोमुख नरक में जानेवाला बताया गया है। वायुपुराण में भी ऐसी ही बात बताई गई है (२।३९।१६१)। भविष्यपुराण में (१।२१०।४८) फलादेशवृत्ति करनेवाले मगब्राह्मण को सूर्यव्रतों में भी भोजन कराने के लिए अयोग्य बताया गया है। अतः चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रों के चार को (गति को) जाननेवाले से (ज्योतिषी से) सोमचरित लोक को, सूर्यचरित लोक को तथा नक्षत्रचरित लोक को प्राप्त किए जाने की बात कैसे सङ्गत होती है, यह प्रश्न उठ सकता है। इस विषय में वराहमिहिर प्रभृति मग ब्राह्मण (शक-कुषाणादि आक्रामकों के साथ में भारतवर्ष से बाहर से आए हुए शाकद्वीपीय ब्राह्मण) **"अविदित्वैव यच् छास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते। स पङ्क्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः"** (बृहत्संहिता २।१६) इत्यादि कहकर फलादेशपरक दैवज्ञ ब्राह्मण को अनिन्द्य बताने का प्रयास करते हैं। भाष्यकार सोमाकर ने तो श्रुति-स्मृतिविहित यागादिकालापेक्षित तिथि-नक्षत्र-पक्ष-मासर्त्वयनादिरूप काल को जाननेवाले का यह फल प्रतिपादित है, आदेशिक (फलादेश करनेवाले) दैवज्ञों का नहीं, ऐसा कहा है। यह बात युक्तियुक्त भी है; क्योंकि मूल में वेदविद् सोम-सूर्य-स्तृचरितज्ञ की ही लोकप्राप्ति और सन्ततिप्राप्ति का प्रतिपादन है। वेद के अध्ययन को छोडकर अन्य शास्त्र के अध्ययन करनेवाले का तो **"योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति साऽन्वयः"** ऐसे रूप में मनुस्मृति में (२।१६८) निन्दित होने से, वेदाध्ययनरहित होकर अन्य शास्त्र के अध्ययन का **"तस्माद् वेदादृते नाऽन्यदध्येतव्यं द्विजन्मना। वेदबाह्यं तु यत्किञ्चिन् नाऽध्येतव्यं कदाचन"** ऐसा कहकर बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति में (१२।२१) निषेध किए जाने से, **"न वेदमनधीत्याऽन्यां विद्यामधीयीताऽन्यत्र वेदाङ्गस्मृतिभ्यः"** इस शङ्खलिखितवचन से वेदाध्ययन के विना भी वेदाङ्गस्मृति के अध्ययन में विरोधाभाव होने की कुल्लूकभट्ट की बात (मनुस्मृतिव्याख्या २।१६८) तो अनुपपन्न ही है। शङ्खलिखितवचन में वेदाध्ययन से पूर्व वेदोपकारक-वेदाङ्ग-स्मृति का अध्ययन करके वेदाध्ययन करने का अध्ययनक्रमविशेष ही अनुमत है, वेद को सर्वथा छोडकर अन्य शास्त्र का अध्ययन अनुमत नहीं। पाणिनीयव्याकरण-भाष्यकार मुनि पतञ्जलि ने भी महाभाष्य के प्रथम आह्निक में **"पुराकल्प एतदा-**

---

१. **नक्षत्रादेशवृत्तिर् ब्रह्मपुरुषो मद्यपो ब्रह्मविक्रयी कितवः कूटकारको मानुषपशु-विक्रयिणश् चाऽपाङ्क्तेयाः ॥**

—शङ्खलिखितवचन, चतुर्वर्गचिन्तामणि परिशेषखण्ड श्राद्धकल्प पृ.४९२।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सीत् संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणा व्याकरणं स्माऽधीयते, तेभ्यः स्थानकरणनादाऽनुप्रदानज्ञेभ्यो वैदिकाः शब्दा उपदिश्यन्ते" कहकर वेदाध्ययनोपकारक वेदाङ्ग का ही वेद से पूर्व अध्ययन प्राचीनतर शिष्टों का सम्मत होने की बात प्रदर्शित की है। **"वेदत्यागैकबुद्ध्या यो ब्रह्मचारी महाजडः। शास्त्राभ्यासं (प्रकुरुते) सोऽयं मानुषगर्दभः"** कहकर वेदनिरपेक्ष-शास्त्राभ्यास का तो लौगाक्षिस्मृति ने (पृ.४०४) विशेष रूप से निन्दा की है। कात्यायन ने भी तृतीय परिशिष्ट प्रतिज्ञासूत्र में **"मन्त्रपादपदसन्धिविधिज्ञो धातुनामवचनप्रकृतिज्ञः। ईदृशो भवति यज्ञविधिज्ञः पक्षमासतिथिचन्द्रगतिज्ञः"** कहकर मन्त्रादिविद् और यज्ञापेक्षित ज्योतिष का अध्ययन करनेवाले ब्राह्मण की ही प्रशंसनीयता सूचित की है। अतः वेदविद् ज्योतिषज्ञ की यहाँ की गई प्रशंसा सुसङ्गत ही है॥४४॥

इतने में श्रीयुत गुरु के मुख से उच्चरित होने पर अपने से उच्चरित करके किए गए अध्ययन से अपनी शाखा के वेदमन्त्रसंहिता, ब्राह्मणग्रन्थ, कल्पसूत्र इत्यादि ग्रन्थों की समाप्ति करनेवाले तथा वेदों के और वेदाङ्ग-स्मृति-पुराणादि शास्त्रों के अवलोकन में लगे रहनेवाले, काव्यप्रकाश की हैमवती नाम की संस्कृतविवृति, वेदभाषानिघण्टु, कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा, पाणिनीयशिक्षा की वेदाङ्गशिक्षाविमर्श नाम की संस्कृत तथा नारायणी नाम की हिन्दी व्याख्या, नारदीयशिक्षा की शिक्षाविवेचनी नाम की संस्कृतव्याख्या, ब्रह्ममीमांसासूत्र-कौण्डिन्न्यायनवृत्ति इत्यादि ग्रन्थ के कर्ता, गण्डकीप्रदेश के मध्य में स्थित त्रितुङ्गाचल जनपद के चुँदितामाकोट-तेर्सेपानि ग्राम में निवास करनेवाले पूर्वपुरुषों से और नेपाली भाषा के आदिकवि भानुभक्त आचार्य से विशेष रूप से विख्यापित श्रीकृष्ण आचार्य के वंश में उत्पन्न तथा माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायी वार्तावृत्तिगृहस्थ शिवराज आचार्य नाम के शुद्धकुलीन उपाध्याय ब्राह्मण से की गई **वेदाङ्गज्योतिष की**

हिन्दी व्याख्या

पूर्ण हुई॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट (१)

वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थश्लोकानुक्रमणिका

अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रः	३२	पञ्चत्रिंशं शतं पौष्णम्	३०
अतीतपर्वभागेभ्यः शोधयेत्	२२	पञ्चसंवत्सरमयम्	१
इत्युपायसमुद्देशः	४२	पलानि पञ्चाशदपां धृतानि	२४
इत्येतन् मासवर्षाणाम्	४३	प्रथमं सप्तमं चाऽऽहुः	९
उग्राण्यार्द्रा च चित्रा च	३६	प्रपद्येते श्रविष्ठादौ	७
उदया वासवस्य स्युर् दिनराशिः	२९	भांशाः स्युरष्टकाः कार्याः	१५
एकादशभिरभ्यस्य पर्वाणि	२५	माघशुक्लप्रपन्नस्य	५
एकान्तरेऽह्नि मासे च	११	यथा शिखा मयूराणाम्	४
कला दश सविंशाः स्यात्	३८	यदर्धं दिनभागानाम्	४१
कार्या भांशाष्टकस्थाने	१९	यदुत्तरस्याऽयनतो गतं स्यात्	४०
घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः	८	याः पर्वभादानकलाः	२१
जावाद्यंशैः समं विद्यात्	१७	वसुस् त्वष्टा भवोऽजश् च	१०
जौ द्रा गः खे श्वे ही रो षाश्	१८	विषुवन्तं द्विरभ्यस्तम्	२३
ज्योतिषामयनं पुण्यम्	२	विष्णुर् वसवो वरुणः	३४
तिथिमेकादशाभ्यस्ताम्	२०	वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः	३
त्रिंशी भशेषो दिवसांशभागः	२७	सविता त्वष्टाऽथ वायुः	३३
त्रिशत्यह्नां सषट्षष्टिरब्दः	२८	ससप्तकं भयुक् सोमः	३९
द्यु हेयं पर्व चेत् पादे	१२	सावनेन्दुस्तृमासानाम्	३१
द्व्यूनं द्विषष्टिभागेन दिनम्	३७	सूर्यर्क्षभागान् नवभिर् विभज्य	२६
नक्षत्रदेवता ह्येताः	३५	सोमसूर्यस्तृचरितम्	४४
नवकैरुद्गतोऽंशः स्यात्	१६	स्युः पादोर्ध्वं त्रिपद्यायाः	१४
निरेकं द्वादशाभ्यस्तम्	१३	स्वराक्रमेते सोमार्कौ	६

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kaṭhmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट (२)

नक्षत्रदेवताः

कृत्तिकाः—**अग्निः**
रोहिणी—**प्रजापतिः**
मृगशीर्षम्—**सोमः**
आर्द्रा—**रुद्रः**
पुनर्वसू— **अदितिः**
पुष्यः (तिष्यः)—**बृहस्पतिः**
आश्लेषाः—**सर्पाः**
मघाः—**पितरः**
पूर्वफल्गुन्यौ—**भगः**
उत्तरफल्गुन्यौ—**अर्यमा**
हस्तः—**सविता**
चित्रा—**त्वष्टा**
स्वातिः—**वायुः**
विशाखे—**इन्द्राग्नी**
अनुराधाः—**मित्रः**
ज्येष्ठा—**इन्द्रः**
मूलबर्हणी (मूलम्)—**निरृतिः**
पूर्वाषाढाः—**आपः**
उत्तराषाढाः—**विश्वेदेवाः**
श्रवणः (श्रोणा)—**विष्णुः**
धनिष्ठाः—**वसवः**
शतभिषक्—**वरुणः**
पूर्वभद्रपदे—**अज एकपात्**
उत्तरभद्रपदे—**अहिर्बुध्न्यः**
रेवती—**पूषा**
अश्वयुजौ—**अश्विनौ**
अपभरण्यः (भरण्यः)—**यमः**

"नक्षत्रदेवता ह्येता एताभिर् यज्ञकर्मणि।
यजमानस्य शास्त्रज्ञैर् नाम नक्षत्रजं स्मृतम्॥"

उग्राणि नक्षत्राणि

आर्द्रा, चित्रा, विशाखा, श्रवणः, अश्वयुक् (अश्विनी)।

क्रूराणि नक्षत्राणि

मघाः, स्वातिः, ज्येष्ठा, मूलम्, अपभरण्यः (भरणी)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट (३)

वैदिककालज्ञान

(क) वैदिक कालज्ञान की आवश्यकता

लगधमुनि के द्वारा वेदअनुसार वेदाङ्गज्योतिष में बताए गए वैदिक संवत्सर, अयन, ऋतु, मास, अधिकमास इत्यादि अवैदिक सूर्यसिद्धान्तादिमूलक प्रचलित पञ्चाङ्गों में लिखे गए संवत्सर, अयन, ऋतु, मास इत्यादि से भिन्न हैं। वैदिक संवत्सर-परिवत्सरादि के साथ ठीक-ठीक मिलकर चलनेवाले प्रभव-विभव इत्यादि षष्टिसंवत्सर **चान्द्र** हैं, किन्तु प्रचलित पञ्चाङ्गों के प्रभव-विभवादि षष्टिसंवत्सर **बार्हस्पत्य** हैं। वेदाङ्गज्योतिष के अनुसार दक्षिणायन लग चुकने पर भी प्रचलित पञ्चाङ्गों में उत्तरायण ही माना गया होता है, उत्तरायण लग चुकने पर भी दक्षिणायन ही माना गया होता है; ग्रीष्मऋतु लग चुकने पर भी वसन्त ऋतु ही माना गया होता है। वैदिक चान्द्र मास अमान्त हैं, किन्तु भारत के उत्तरभाग में प्रचलित अवैदिक पञ्चाङ्ग में लिखे गए चान्द्र मास पूर्णिमान्त हैं। श्रौत-स्मार्त धर्मकर्म के लिए अमान्त मास ही ग्राह्य होते हैं, पूर्णिमान्त चान्द्र मास तो शासकादि के लौकिक व्यवहार के लिए हैं। अतः वैदिक चान्द्रमास में और भारत के उत्तरभाग में प्रचलित पञ्चाङ्गों के चान्द्र मास में बहूत फर्क पड जाता है। प्रायः शुक्लपक्ष में दो मास का और कृष्णपक्ष में एक मास का फर्क पड जाता है। तपोमास का (वैदिक ऋतुबद्ध माघमास का) शुक्लपक्ष लग चुकने पर भी प्रचलित इन पञ्चाङ्गों में कभी मार्गशीर्षशुक्लपक्ष और कभी पौषशुक्लपक्ष लिखा रहता है। इस प्रकार मास में (महीनें में) बहूत ही फर्क पड जाता है। वैदिक अधिकमास प्रचलित पञ्चाङ्गों के अधिकमास से अत्यन्त ही पृथक् हैं। वैदिक अधिकमास (मलमास) सौर उत्तरायण के अन्त में शुचिमास में (आर्तव आषाढ में) अथवा सौर दक्षिणायन के अन्त में सहस्यमास में (आर्तव पौष में) ही पडते हैं। अन्य महीने में नहीं पडते हैं। यह बात **"उपजायेते मध्येऽन्ते चाऽधिमासकौ"** इस वेदाङ्गज्योतिषवचन में (श्लो.३७) स्पष्ट है। यह बात नेपाल के लिच्छविकाल से लेकर एक हजार वर्ष तक के इतिहास से भी समर्थित है। वैदिक अधिकमास वेदाङ्गज्योतिष के **"घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ"** (श्लो.८) इत्यादि वचन से भी सिद्ध होनेवाले दृक्सिद्ध यथार्थ सौर अयन के आधार में निश्चित होता है। वेदवेदाङ्ग में अनुल्लिखित और वैक्रमाब्द के प्रथम-द्वितीय शतक में प्रविष्ट विदेशी शकशासकों के साथ में आए हुए इरानी मगब्राह्मणों से लाए गए और शासक के बल और व्यवहार से भारतवर्ष में प्रचारित मेष, वृष इत्यादि राशि के आधार में सिद्धान्तशिरोमणि इत्यादि अर्वाचीन ग्रन्थों में पाई जानेवाली

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'शुक्लपक्षप्रतिपदा से कृष्णपक्षअमावास्या तक का सौरसङ्क्रान्तिविहीन चान्द्रमास अधिकमास (मलमास) होता है' ऐसा बतानेवाली विदेशिमूल के विचार के आधार में बनाई गई **"असङ्क्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्यात्"** इत्यादि अर्वाचीन परिभाषा वैदिक-सनातन-वर्णाश्रमधर्म में मान्य नहीं होती है। वैदिक धर्म में अनादि अनपभ्रष्ट परम्परा से आगत विषय ही मान्य होता है, अर्वाचीन काल में उद्भावित विषय मान्य नहीं होता है। वैदिक कालगणना में क्षयमास तो कभी भी नहीं होता है।

माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लजुर्वेद-शाखाध्यायि ब्राह्मण तथा उनके शिष्ययजमानों का विवाह-व्रतबन्धादि कृत्य यथासम्भव पारस्करगृह्यसूत्र के विधानअनुसार ही होना आवश्यक होते हैं। पारस्करगृह्यसूत्र में **"उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे कुमार्याः पाणिं गृह्णीयात्"** (१।४।५) इस वचन से विवाह का वेदाङ्गज्योतिषादि वैदिक ग्रन्थअनुसार के उदगयन में (उत्तरायण में) ही होना आवश्यक होने पर भी दक्षिणायन में निरयण वृश्चिकमास में और वेदाङ्गज्योतिषादि वैदिक ग्रन्थअनुसार दक्षिणायन लगचुकने पर भी निरयण मिथुनमास में (आषाढ में) भी विवाहलग्न देनेवाले, शुक्लपक्ष में ही विवाह होने का निर्देश होने पर भी कृष्णपक्ष में भी विवाहलग्न देनेवाले तथा पारस्करगृह्यसूत्र में **"अथैनां सूर्यमुदीक्षयति तच् चक्षुरिति"** (१।८।७) ऐसा विधान होने से विवाहकर्म के मध्य में ही वधू को सूर्यदर्शन कराना आवश्यक होने से दिन में ही विवाह होना आवश्यक होने पर भी रात में भी विवाहलग्न देनेवाले पञ्चाङ्ग **माध्यन्दिनीयवाजसनेयिशुक्लयजुर्वेदाध्यायी पारस्करगृह्यसूत्रानुसारी लोगों के श्रौतस्मार्तकर्म के लिए काल के निरूपण के लिए और उन कृत्यों के सङ्कल्प में काल के उल्लेख के लिए** भी सर्वथा अनुसरणीय नहीं होते हैं। अतः केवल वैसे पञ्चाङ्गों के आधार पर श्रौत-स्मार्तकर्म के लिए संवत्सर-अयन-ऋतु-मास-अधिकमासादि काल का निर्णय नहीं करना चाहिए। वेदाङ्गज्योतिष में बताए गए मूल वैदिक कालगणनासिद्धान्त को ठीक से समझकर प्रचलित दृक्सिद्धपञ्चाङ्ग की सहायता भी लेकर श्रौत-स्मार्तकर्म के लिए संवत्सर-अयन-ऋतु-मास-अधिमासादि का निर्णय किया जा सकता है। वैदिक धर्म के और मोक्ष के विषय में उपनयनपूर्वक वैध रूप में अध्ययन किए जानेवाले वेद-वेदाङ्गग्रन्थ ही मूल रूप में प्रमाण माने जाते हैं। अतः लगधमुनिप्रोक्त **"पञ्चसंवत्सरमयम्"** इत्यादि वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ के प्रतिकूल निर्णय भी देनेवाले सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि, महूर्तचिन्तामणि, मुहूर्तमार्तण्ड, मुहूर्तगणपति, खण्डखाद्यक, भास्वती इत्यादि ग्रन्थ श्रौत-स्मार्त-धर्मकर्म के लिए की जानेवाली संवत्सर-अयन-ऋतु-मास-अधिकमास-पक्ष-तिथियों की गणना में सर्वथा प्रमाण नहीं होते हैं। इस विषय में स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब से वाराणसीस्थ चौखम्बाविद्याभवन से प्रकाशित करवाए गए (२००५ क्रै.) **वेदाङ्गज्योतिष के कौण्डिन्न्यायनव्याख्यान** की

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूमिका में विस्तृत रूप में स्पष्टीकरण किया गया है। वेद-वेदाङ्ग शास्त्र में और उनमें प्रतिपादित धर्म में आस्था रखनेवाले विज्ञजनों को इस विषय में ठीक से ध्यान देना और कुछ भी विमति अथवा शङ्का हो तो खुले रूप में लिखित शास्त्रार्थ भी करना आवश्यक हो गया है। अतः वेदाङ्गज्योतिष में बताए गए मूल वैदिक कालगणनासिद्धान्त का सार नीचे सङ्क्षेप में स्पष्ट और सरल रूप में बताया जाता है। योग-वार-राशियों का तो मूल वैदिकवाङ्मय में उल्लेखं न होने से और भरतनाट्यशास्त्र तक में भी (द्र.– मूलमात्रसंस्करण २।३४, २।३८, २।४९, २।५१, ३।१५, ३।१६, ३।८१; अभिनवभारतीयुक्त संस्करण २।३२, २।३६, २।४२–४४, ३।१६, ३।१८, ३।८१) उनका उल्लेख न होने से उनका अर्वाचीन काल में उद्भावन होने की बात स्पष्ट होने से श्रौत-स्मार्त कर्म के सङ्कल्प में उनका उल्लेख आवश्यक नहीं दीखता है।

वैदिक धार्मिक कृत्य का अमुक (फलाँ) अयन में, अमुक ऋतु में, अमुक महीने में, अमुक पक्ष में, अमुक तिथि में, अमुक नक्षत्र में, अमुक समय में अनुष्ठान करना चाहिए इस प्रकार के विविध विधान वेदादिशास्त्र में प्राप्त होते हैं। अतः वैदिक अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि इत्यादि का ज्ञान आवश्यक होता है। वैदिक अयन, ऋतु, मास इत्यादि प्रचलित अवैदिक सूर्यसिद्धान्तादिमूलक पञ्चाङ्गों में लिखित अयन, ऋतु, मास इत्यादि से कुछ पृथक् हैं, वैदिक अयनादि मुख्यतया चान्द्र हैं । अतः वैदिक कर्म के सङ्कल्पादि में प्रचलित पञ्चाङ्ग के आधार में अयन, ऋतु इत्यादि का उल्लेख करना उचित नहीं है। नामकंरण, अन्नप्राशन, उपनयन (व्रतबन्ध), विवाह, और्ध्वदेहिककर्म, श्राद्ध, श्रौतस्मार्तकर्म इत्यादि धर्मकृत्य मुख्य वैदिक धर्मकृत्य हैं। अतः उनका समयनिर्धारण करने में और सङ्कल्प करने में लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिषानुसार निश्चित काल को लेना चाहिए।

(ख) वैदिककालज्ञान

लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष की संस्कृत में विस्तृत भूमिका तथा कौण्डिन्न्यायनव्याख्यान नामक व्याख्या और हिन्दी में भी संक्षिप्त भूमिका तथा व्याख्या चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित (२००५ क्रै.) है। उक्त वेदाङ्गज्योतिष ग्रन्थ विचारशील आस्तिक जनों की सुविधा के लिए संक्षिप्त हिन्दी व्याख्या के साथ में इसी ग्रन्थ में भी दिया गया है। उसी के मुख्य आधार में सङ्क्षिप्त वैदिक कालज्ञान सरल रूप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। अब वैदिक कालज्ञान के संस्कृत श्लोक तथा उनके अर्थ और स्पष्टीकरण प्रस्तुत किए जाते हैं–

तिथिश् च करणम् भञ् च योगोऽथो वासराधिपः।
दिनरूपस्य कालस्य पञ्चाऽङ्गानीति लौकिकाः ॥१॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिथि, करण, नक्षत्र, विष्कम्भादि योग और वार ये पाँच दिनरूप काल के अङ्ग हैं ऐसा लोग मानते हैं। [उनमें सावनदिन से अभिन्न तिथि का और नक्षत्र का ही उल्लेख वेद में प्राप्त होता है। करण, योग और वार आथर्वण ज्योतिष में प्राप्त होते हैं। उनमें योग का उल्लेख स्पष्ट नहीं है। हरिवंश-चरकसंहिता–सुश्रुतसंहिता–भरतनाट्यशास्त्र–आश्वलायनगृह्यसूत्रपरिशिष्टों में भी योग का उल्लेख नहीं है। वार का उल्लेख महाभारत में और मनुस्मृति-याज्ञवल्क्यस्मृतियों में भी नहीं पाया जाता है। वार की धारणा अरबदेशों से भारतवर्ष में घुसा हुआ माना जाता है। मूल वैदिक धर्मकृत्य में वार का महत्त्व नहीं है। अतः पत्रे को पञ्चाङ्ग कहने की बात भी मूल वैदिक परम्परा की नहीं है। पत्रे को **तिथिपत्र** कहना वैदिक परम्परा का अनुकूल है]॥१॥

सूर्योदयात् प्रभृति यो यावत् सूर्योदयम् परम्।
कालस् तत् सावनदिनं वैदिकैः परिकीर्तितम्॥२॥

एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का काल वैदिकों से सावन-दिन कहा गया है। [सोमयाग के सोमसवन के लिए गणना किए जानेवाला एक दिन होने से इसको सावन-दिन कहा गया है। मूल वैदिक परम्परा में १ सावनदिन कहना और १ तिथि कहना सामान्यतया एक ही बात होती है]॥२॥

अहोरात्रविभागेषु अहश् चाऽऽद्यं प्रकीर्तितम्।
अहान्यस्तमयाऽन्तानि उदयाऽन्ता च शर्वरी॥३॥

रात-दिन के विभाग में दिन पहला बताया गया है। (रात दूसरा बताया गया है)। सूर्यास्त होने पर दिन समाप्त होता है। सूर्योदय होने पर रात समाप्त होती है (द्र.– महाभारत, आश्वमेधिकपर्व ४४।१८) [लोकव्यवहार में कलाई के रोवों को दिखाई देने के लिए पर्याप्त उजियाला होने पर दिन का प्रारम्भ माना जाता है। रात के १२ बजे से दिनाङ्क (डेट) का परिवर्तन और वार का परिवर्तन होने की बात वैदिक धार्मिक कृत्य में मान्य नहीं होती है]॥३॥

प्रातःकालः सङ्गवश् च मध्याह्नश् चाऽपराह्णकः।
सायाह्नश् चेति भागाः स्युस् तुल्यमाना दिनस्य च॥४॥

प्रातःकाल, सङ्गव, मध्याह्न, अपराह्ण, सायाह्न ये पाँच भाग दिन के सूर्योदय से सूर्यास्तपर्यन्त के काल के बराबर रूप में लगाए गए पाँच भाग हैं [दिन के ये पाँच विभाग वेद से ही प्रसिद्ध हैं]॥४॥

पूर्वाह्णश् चाऽथ मध्याह्नोऽपराह्ण इति वा त्रयः।
समानमाना भागाः स्युर् दिने ह्यन्वर्थनामकाः॥५॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्वाह्ण, मध्याह्न और अपराह्ण ये दिन के बराबर रूप में लगाए गए सार्थक नामवाले तीन भाग हैं॥५॥

त्रिंशन्मुहूर्तोऽहोरात्रः पक्षस् ते दश पञ्च च।
पक्षौ पूर्वाऽपरौ शुक्लकृष्णौ मासस् तु तावुभौ॥६॥

तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र होता है। अर्थात् एक रात-दिन में (एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय पर्यन्त) तीस मुहूर्त होते हैं। [मुहूर्तरूप काल वेद से ही प्रसिद्ध है]। १५ अहोरात्रों का एक पक्ष होता है। [यह प्रायिक बात है, एक वर्ष के २४ पक्षों में से प्रायः ६ पक्ष १४ अहोरात्रों के होते हैं।] पूर्वपक्ष शुक्लपक्ष है, अपरपक्ष कृष्णपक्ष है। उन दोनों पक्षों का एक (चान्द्र) मास होता है। [वेद से अमरकोश तक दिखाई देनेवाली इस बात से वैदिक परम्परा में मास मुख्य रूप में चान्द्र ही लिए जाने की बात भी अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है]॥६॥

चन्द्रस्याऽदर्शनाच् चैव यावदन्यददर्शनम्।
मासश् चन्द्रमितस् तस्य पक्षौ द्वौ शुक्लकृष्णकौ॥७॥
शुक्ले पक्षे तथा कृष्णे पक्षयोरुभयोरपि।
दिनानि प्रथमाऽऽद्यानि तिथयस् ताः प्रकीर्तिताः॥८॥

चन्द्रमा का एक अदर्शन से (एक अमावास्या के बीतने से) दूसरे अदर्शन तक (दूसरी अमावास्या तक) एक चान्द्रमास कहा जाता है। उसके शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष होते हैं। शुक्लपक्ष में और कृष्णपक्ष में दोनों पक्षों में प्रथम-द्वितीय-तृतीयादि जो दिन होते हैं वे तिथि कहे गए हैं। [वैदिक परम्परा में शुक्लपक्ष में सदा ही १५ दिन ही होते हैं, कृष्णपक्ष में कभीकभी चतुर्दशी टूटने से १४ दिन मात्र होते हैं। शुक्लपक्ष के प्रतिपदादि तिथियों को और कृष्णपक्ष के प्रतिपदादि तिथियों को भी प्रचलित पत्रे में १,२,३ इत्यादि रूप में लिखने का प्रचलन है। पूर्णिमाको १५ लिखकर जनाया जाता है। अमावास्या को ३० लिखकर जनाए जाने का प्रचलन है। प्रचलित पत्रे में तिथि के घटी पल भी लिखे गए होते हैं। किन्तु वैदिक धर्म में तो तिथियाँ एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक अखण्ड रूप में ही मानी जाती हैं। तिथियों में घटी पल का विचार नहीं होता है। कृष्णपक्ष की समाप्ति के घटी पल ही विचार में लिए जाते हैं]॥७–८॥

प्रतिपच् च द्वितीया च तृतीया च चतुर्थ्यपि।
पञ्चमी चैव षष्ठी च सप्तमी चाऽष्टमी ततः॥९॥
नवमी दशमी चैकादशी च द्वादशी तथा।
त्रयोदशी चाऽथ चतुर्दश्यथो पौर्णमास्यमे॥१०॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिथियों में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा ये शुक्लपक्ष की तिथियाँ हैं; प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, ... अमावास्या ये कृष्णपक्ष की तिथियाँ हैं।॥९-१०॥

उभयोः पक्षयोरन्तौ पञ्चदश्यौ प्रकीर्तिते।
उक्तं तत् पर्व प्रतिपत्पञ्चदश्योर् यदन्तरम्॥११॥

दोनों पक्षों की अन्तिम तिथि को पञ्चदशी भी कहा गया है. पञ्चदशी का और प्रतिपदा का अन्तरालको पर्व कहा गया है॥११॥

नामानुसारं च शुभाऽशुभाः प्रतिपदादयः।
नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च तिथयः क्रमात्॥१२॥

नामानुसार शुभ और अशुभ होनेवाली प्रतिपदादि तिथियाँ क्रमशः नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा कही जाती हैं, (नन्दा=१,६,११; भद्रा=२,७,१२; जया=३,८,१३; रिक्ता=४,९,१४; पूर्णा=५,१०,१५/३०)। [ये सञ्ज्ञाएँ प्राचीन मूल वैदिक ग्रन्थों में तो नहीं पाई जाती हैं।]॥१२॥

करणानि कौस्तुभं च बवं बालव-कौलवे।
तैतिलं च गराजिर् वा-णिजं विष्टिर् बवादिकम्॥१३॥

क्रमाच् शुक्लप्रतिपदस् तिथ्यर्धेषु भवन्ति हि।
कृष्णाऽन्ते शकुनिश् चतुष्-पदं च नागमेव च॥१४॥

तिथि के आधे को करण कहा जाता है। करण शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से क्रमशः तिथि के आधे-आधे में कौस्तुभ (किंस्तुघ्न), बव, बालव, कौलव, तैतिल, गराजि (गर), वाणिज (वणिक्), विष्टि, बव, बालव ... इत्यादि रूप से आते हैं। कृष्णपक्ष के अन्त में तीन तिथ्यर्धों में क्रमशः शकुनि, चतुष्पद और नाग करण होते हैं। [इन करणों का आथर्वणज्योतिष में उल्लेख है। हरिवंश में, चरकसंहिता में, सुश्रुतसंहिता में और भरतनाट्यशास्त्र में तथा आश्वलायनगृह्यसूत्रपरिशिष्ट में भी करण का उल्लेख है। करण तिथि का ही आधा भाग होने से तिथि से ही गतार्थ होने से धर्मकृत्य के सङ्कल्प में इनका उल्लेख न भी किया जा सकता है। तथापि हेमाद्रि ने महासङ्कल्प में करण का उल्लेख होने की बात की है। अतः यहाँ भी इनका उल्लेख किया गया है। सरलता से करण का ज्ञान करने के लिए करणचक्र नीचे दिया जा रहा है।]॥१३-१४॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिथयः	शुक्लपक्षे		कृष्णपक्षे		तिथयः
	पूर्वार्धे	उत्तरार्धे	पूर्वार्धे	उत्तरार्धे	
१	कौस्तुभम्	बवम्	बालवम्	कौलवम्	१
२	बालवम्	कौलवम्	तैतिलम्	गराजिः	२
३	तैतिलम्	गराजिः	वाणिजम्	विष्टिः	३
४	वाणिजम्	विष्टिः	बवम्	बालवम्	४
५	बवम्	बालवम्	कौलवम्	तैतिलम्	५
६	कौलवम्	तैतिलम्	गराजिः	वाणिजम्	६
७	गराजिः	वाणिजम्	विष्टिः	बवम्	७
८	विष्टिः	बवम्	बालवम्	कौलवम्	८
९	बालवम्	कौलवम्	तैतिलम्	गराजिः	९
१०	तैतिलम्	गराजिः	वाणिजम्	विष्टिः	१०
११	वाणिजम्	विष्टिः	बवम्	बालवम्	११
१२	बवम्	बालवम्	कौलवम्	तैतिलम्	१२
१३	कौलवम्	तैतिलम्	गराजिः	वाणिजम्	१३
१४	गराजिः	वाणिजम्	विष्टिः	शकुनिः	१४
१५	विष्टिः	बवम्	चतुष्पदम्	नागम्	३०

नक्षत्राणि कृत्तिकाश् च रोहिणी मृगशीर्षकम्।
आर्द्रा पुनर्वसू पुष्यस् ततोऽश्लेषा मघास् तथा ॥१५॥
पूर्वफल्गुन्यौ च फल्गुन्यौ तथैवोत्तरे अपि।
हस्तश् चित्रा च स्वातिश् च विशाखे चाऽनुराधिकाः ॥१६॥
ज्येष्ठा मूलञ् च पूर्वाश् चाऽषाढास् ता उत्तरा अपि।
श्रवणश् च श्रविष्ठाश् च ततश् शतभिषक् परः ॥१७॥
पूर्वभद्रपदे चैवोत्तरभद्रपदे अपि।
रेवत्यश्वयुजौ चाऽपभरण्यश् चाऽप्यनुक्रमात् ॥१८॥

सत्ताईस नक्षत्र क्रमशः (१) कृत्तिका, (२) रोहिणी, (३) मृगशीर्ष, (४) आर्द्रा, (५) पुनर्वसु, (६) पुष्य (तिष्य), (७) अश्लेषा, (८) मघा, (९) पूर्वफल्गुनी, (१०) उत्तरफल्गुनी, (११) हस्त, (१२) चित्रा, (१३) स्वाति, (१४) विशाखा, (१५) अनुराधा, (१६) ज्येष्ठा, (१७) मूल, (१८) पूर्वाषाढा, (१९) उत्तराषाढा, (२०) श्रवण, (२१) धनिष्ठा, (२२) शतभिषक् (शतभिषा), (२३) पूर्वभद्रपद, (२४) उत्तरभद्रपद, (२५) रेवती, (२६) अश्वयुक् (अश्विनी) और (२७) अपभरणी (भरणी) ये हैं।

[आजकल लोक में अश्विनी, भरणी, कृत्तिका इत्यादि गणना का प्रचलन है, किन्तु वेदों में, वेदाङ्गज्योतिष में, याज्ञवल्क्यस्मृति में और कतिपय पुराणों में भी

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृत्तिकादि नक्षत्रगणना देखी जाती है, अतः यहाँ कृत्तिकादि गणना दी गई है। सङ्कल्प में नक्षत्र का वचन और विभक्ति मिलाने के लिए 'कृत्तिकासु नक्षत्रे', 'रोहिण्यां नक्षत्रे' इत्यादि कहना चाहिए। अतः सङ्कल्प में नक्षत्रों का कृत्तिकासु, रोहिण्याम्, मृगशीर्षे, आर्द्रायाम्, पुनर्वस्वोः, पुष्ये (तिष्ये), अश्लेषासु, मघासु, पूर्वफल्गुन्योः, उत्तरफल्गुन्योः, हस्ते, चित्रायाम्, स्वातौ (स्वात्याम्), विशाखयोः, अनुराधासु, ज्येष्ठायाम्, मूले (मूलबर्हण्याम्), पूर्वाषाढासु, उत्तराषाढासु, श्रवणे, श्रविष्ठासु (धनिष्ठासु), शतभिषजि, पूर्वभद्रपदयोः, उत्तरभद्रपदयोः, रेवत्याम्, अश्वयुजोः, अपभरणीषु (भरणीषु) ऐसे रूपों का प्रयोग करना चाहिए। वैदिक मूल परम्परा ठीक से न समझनेवाले कुछ पण्डित दूसरी रीति दिखाते हैं। वैसा प्रयोग उचित नहीं है।]॥१५–१८॥

यत्राऽहोरात्रके यस्य नक्षत्रस्य तु सन्निधौ।
भवेच् चन्द्रस् तस्य तद् धि नक्षत्रमिति कथ्यते॥१९॥

जिस अहोरात्र में जिस नक्षत्र के समीप में चन्द्रमा की स्थिति होती है, उस नक्षत्र को उस अहोरात्र का नक्षत्र कहा जाता है। [कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, ज्येष्ठा इत्यादि कतिपय नक्षत्र को आकाश में स्पष्ट रूप में आसानी से देखा जा सकता है।]॥१९॥

चन्द्रचारेषु चन्द्रस्य कृत्तिकास्वम्बया सह।
यदा योगो भचक्रस्य तदाऽऽरम्भो हि वैदिकः॥२०॥

चन्द्रमा के भ्रमण में चन्द्रमा का कृत्तिका की ताराओं में से पहली अम्बा नाम की तारा के साथ जिस समय में योग होता है, उसी समय में वहीं से वैदिकों के मत में नक्षत्रचक्र का प्रारम्भ होता है॥२०॥

तत्तद्भानामन्यदीयमते प्रारम्भतः परम्।
पञ्चमांशत्रये प्रायोऽतीते ह्यादिस् तु वैदिकः॥२१॥

अन्य ज्योतिषियों के मत में उस-उस नक्षत्र का प्रारम्भ जिस समय में होता है उस समय से उस नक्षत्र के भोगकाल के पाँच भागों में से लगभग तीन भाग बीतने पर वैदिकों के मत में उस नक्षत्र का प्रारम्भ माना जाता है॥२१॥

"अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिर् बृहस्पतिः।
सर्पाश् च पितरश् चैव भगश् चैवाऽर्यमाऽपि च॥२२॥

सविता त्वष्टाऽथ वायुश् चेन्द्राग्नी मित्र एव च।
इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वे देवास् तथैव च॥२३॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विष्णुर् वसवो वरुणोऽजएकपात् तथैव च।
अहिर्बुध्न्यस् तथा पूषा अश्विनौ यम एव च ॥२४॥

नक्षत्रदेवता ह्येता एताभिर् यज्ञकर्मणि।
यजमानस्य शास्त्रज्ञैर् नाम नक्षत्रजं स्मृतम् ॥२५॥"

कृत्तिकादि नक्षत्रों के देवता क्रमशः (१) अग्नि, (२) प्रजापति, (३) सोम, (४) रुद्र, (५) अदिति, (६) बृहस्पति, (७) सर्प, (८) पितर, (९) भग, (१०) अर्यमा, (११) सविता, (१२) त्वष्टा, (१३) वायु, (१४) इन्द्राग्नि, (१५) मित्र, (१६) इन्द्र, (१७) निर्ऋति, (१८) अप्, (१९) विश्वेदेव, (२०) विष्णु, (२१) वसु, (२२) वरुण, (२३) अज एकपात्, (२४) अहिर्बुध्न्य, (२५) पूषा, (२६) अश्विनीकुमार और (२७) यम ये हैं। यज्ञकर्म के लिए यजमान का नक्षत्रनाम इन्हीं देवतानामों से रखना चाहिए ऐसा शास्त्रज्ञों ने कहा है। [वैदिक परम्परा में नक्षत्रअनुसार के नाम 'चूचेचोला अश्विनी' इत्यादिअनुसार नहीं रखा जाता है। नक्षत्र के देवता के अनुसार रखा जाता है; जैसे– कृत्तिका नक्षत्र में जन्मे हुए जातक का नाम 'अ-इ-उ-ए कृत्तिका' इस कथनअनुसार न रखकर कृत्तिका के देवता अग्नि होने से अग्निगुप्त, अग्निजुष्ट, अग्नित्रात, अग्निदत्त, अग्निदिष्ट, अग्निपात, अग्निरात, अग्निलात, अग्नि-दयिता, अग्निरक्षिता, अग्निपालिता इत्यादि रूप में रखा जाता है। श्रौत-स्मार्तयज्ञकर्म के लिए नक्षत्रनाम उक्त प्रकार से रखने के बाद फलितज्योतिष में विशेष आग्रह होनेवालों का चूचेचोला इत्यादिअनुसार राशि का अतिरिक्त नाम भी रखते रहना भी हो सकता है।] ॥२२–२५॥

सूर्यचन्द्रस्थितिवशाद् योगा विष्कम्भकादयः।
भवन्ति तेषां नाम्नैव विज्ञेयञ् च शुभाऽशुभम् ॥२६॥

१ २ ३ ४ ५
विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनस् तथा।
६ ७ ८ ९ १०
अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलश् च गण्डकः ॥२७॥
११ १२ १३ १४ १५
वृद्धिर् ध्रुवश् च व्याघातो हर्षणो वज्र एव च।
१६ १७ १८ १९ २०
सिद्धिस् तथा व्यतीपातो वरीयान् परिघश् शिवः ॥२८॥
२१ २२ २३ २४ २५ २६ २७
सिद्धिस् साध्यश् शुभश् शुक्लो ब्रह्मा ऐन्द्रश् च वैधृतिः।
इति योगास् तु सङ्कल्पे कीर्तनीया जनैस् स्मृताः ॥२९॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्य की और चन्द्रमा की स्थिति के अनुसार विष्कम्भादि योग होते हैं, उनका शुभत्व और अशुभत्व नामअनुसार जानना चाहिए। लोगों द्वारा विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्धि, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्मा, ऐन्द्र और वैधृति ये २७ योग सङ्कल्प में उल्लेखनीय माने गए हैं। [इन योगों का मूल वैदिक परम्परा में विशेष उल्लेख नहीं देखा जाता है। शाकद्वीप-(इरान-अफगानिस्तान) से आए हुए मगब्राह्मण के कुल के आर्यभट के अनुयायी लल्ल के रत्नकोष-नामक ग्रन्थ के आधार में बनाए गए माने गए श्रीपतिकृत रत्नमालानामक वैक्रमाब्द के ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में बने हुए मुहूर्तग्रन्थ में विष्कम्भादि योग का उल्लेख प्राप्त होने की बात इतिहासलेखकों ने लिखा है। अतः वैदिककर्म के सङ्कल्प में विष्कम्भादियोग का उल्लेख अत्यावश्यक नहीं दीखता है]॥२६–२९॥

आदित्यश् चाऽथ सोमश् च मङ्गलश् च बुधोऽपि च।
बृहस्पतिश् शुक्र-शनी स्युः क्रमाद् वासराधिपाः ॥३०॥

इतवार (आदित्यवार, रविवार), सोमवार (चन्द्रवार), मङ्गलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार (गुरुवार), शुक्रवार, शनिवार (शनैश्चरवार) ये सात वार हैं। [ये लोकव्यवहार में आजकल अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, किन्तु वैदिक परम्परा के मूल ग्रन्थों में इन वारों का उल्लेख नहीं है। अत एव इनका भी वैदिक धार्मिक कृत्य के सङ्कल्प में उल्लेख अत्यावश्यक नहीं है]॥३०॥

तपस्-तपस्यौ च मधु-माधवौ शुक्रकः शुचिः।
नभो-नभस्यौ चेषोर्जौ सहाश् चैव सहस्यकः ॥३१॥

तपः (तपाः), तपस्य, मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभः (नभाः), नभस्य, इष, ऊर्ज, सहः (सहाः), सहस्य ये बारह मासों के नाम हैं। [ये वैदिकों के वेदमन्त्र-संहिताओं में भी उल्लिखित महीनों के मुख्य नाम हैं। इनका उल्लेख पुराण-अमरकोष पर्यन्त में भी पाया जाता है। इनको माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख इत्यादि भी कहने की परम्परा है। तथापि लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष की परिनिष्ठित परिभाषा के - अनुसार जिस काल का अवधि तपोमास कहा जाता है, उसी काल के अवधि को माघ कहा जाता है ऐसा माना जा सकता है। प्रचलित पत्रे में माघ कहे गए मास को वैदिकों का तपोमास (अथवा वैदिक आर्तव माघमास) नहीं समझना चाहिए। **लगधमुनि की व्याख्या के अनुसार सूर्य का उत्तरायणारम्भ का दिन (अर्थात् पत्रे में**

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिखे गए सब से अल्प दिनमानवाले दिनों के बीच का दिन) जिस शुक्लप्रतिपदा से अमावास्या पर्यन्त के चान्द्रमास के प्रारम्भ के २४ दिनों के अन्दर पडता है, वह चान्द्रमास वैदिक तपोमास अथवा वैदिक आर्तव माघमास होता है[1]। पच्चीसवें-छब्बीसवें इत्यादि दिनों में वह दिन पडे तो वैसा चान्द्रमास वैदिक अधिकमास (मलमास) होता है[2] और उस अधिकमास के बाद आनेवाली शुक्लप्रतिपदा में प्रारम्भ होनेवाला चान्द्रमास वैदिक तपोमास वा वैदिक आर्तव माघमास होता है।]॥३१॥

सूर्यगत्यनुगौ चान्द्रौ वैदिकद्विजसम्मतौ।
द्वौद्वौ तपःप्रभृतिकौ मासावृतुरिहोदितः॥३२॥
शिशिरश् च वसन्तश् च ग्रीष्मो वर्षास् तथा शरत्।
हेमन्तश् चेति ऋतवः क्रमान् मासद्वयात्मकाः॥३३॥

वैदिक ब्राह्मणों के सम्मत तपोमास तपस्यमास इत्यादि सूर्यगतिविशेष के अनुगामी दो-दो चान्द्रमासों को वैदिकधर्मकृत्य में एक ऋतु कहा गया है। [दो चान्द्र मासों का एक ऋतु होने की बात वेदमन्त्रसंहिता से अमरकोश तक भी दीखनेवाली वैदिक परम्परा से भी अवगत होने से अवैदिक सूर्यसिद्धान्त के अथवा तेरहवीं शताब्दी में रचित सिद्धान्तशिरोमणि के अथवा किसी प्रक्षिप्त पुराणवचन के कथन में लगकर वैदिकों के लिए ऋतुओं को दो सौर मासों से बननेवाला मानकर धर्मकृत्य करना और सङ्कल्प में उल्लेख करना भी उचित नहीं होता है।]

शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त ये दो-दो चान्द्र मासों के ऋतु क्रमशः आते हैं। [कालगणना का आधारभूत प्रकृतिसिद्ध वैदिक आर्तव (ऋतु-सम्बद्ध) वर्ष का प्रारम्भ उक्त प्रकार की तपश्शुक्लप्रतिपदा में (वैदिक आर्तव माघ-शुक्लप्रतिपदा में) शिशिर ऋतु के आदि में होता है।]॥३२–३३॥

उत्तरायणमत्रोक्तमृतुभिश् शिशिरादिभिः।
त्रिभिर् वर्षादिभिः प्रोक्तमृतुभिर् दक्षिणायनम्॥३४॥

वैदिक धर्मकृत्य में शिशिरादि तीन सौरचान्द्र ऋतुओं से (शिशिर-वसन्त-ग्रीष्म इनसे) निष्पन्न अयन उदगयन अथवा उत्तरायण कहा गया है, वर्षादि तीन ऋतुओं से (वर्षा-शरद्-हेमन्त इनसे) निष्पन्न अयन दक्षिणायन कहा गया है। [इस प्रकार वैदिक धर्मकृत्य में अयन भी सौरचान्द्र ही होता है। जिस चान्द्र मास में सूर्य का उदगयन लगता है उसी चान्द्र मास के आरम्भ की शुक्लप्रतिपदा में धर्मकृत्य के

१. तपोमास के विषय में अधिक बात इसी ग्रन्थ के ३७,१४०,१५९ पृष्ठों में देखें।

२. वैदिक अधिकमास के विषय में इसी ग्रन्थ के ९५–१०२ पृष्ठों में देखें।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिए उदगयन (उत्तरायण) भी लगने की और जिस चान्द्र मास में सूर्य का दक्षिणायन लगता है, उसी चान्द्र महीने के प्रारम्भ की शुक्लप्रतिपदा में दक्षिणायन भी लगने की बात मानी जाती है। यह ब्रात गत रात्रि में आधी रात के बाद अथवा आगामी रात्रि में आधी रात से पूर्व सूर्यसङ्क्रमण होने पर भी इस सूर्योदय से ही सौर मेषमास-वृषमासादि मास के दिनों की गणना का प्रारम्भ जैसे किया जाता है वैसी ही है]॥३४॥

आर्यावर्ते तु मध्याह्नेऽहस्सु दीर्घतमा यदा।
शङ्कोश् छाया ततस् सूर्यः प्राप्नुयादुत्तरायणम्॥३५॥

आर्यावर्त में दिनों में मध्याह्न में शङ्कु की (समतल भूमि में सीधा खडे किए गए खूँटे की) छाया सबसे लम्बी जिस समय में होती है, उसी समय से सूर्य उदगयन में (उत्तरायण में) जाना प्रारम्भ करते हैं॥३५॥

आर्यावर्ते हि मध्याह्नेऽहस्सु ह्रस्वतमा यदा।
शङ्कोश् छाया ततः सूर्यः प्राप्नुयाद् दक्षिणायनम्॥३६॥

आर्यावर्त में दिनों में मध्याह्न में शङ्कु की (समतल भूमि में सीधे खडे किए गए खूँटे की) छाया सब से छोटी जिस समय में होती है, उसी समय से सूर्य दक्षिणायन में जाते हैं॥३६॥

आर्यावर्ते ह्रस्वतमाद् दिनात् सौरोत्तरायणम्।
दिनाद् दीर्घतमात् सौर-दक्षिणायनमिष्यते॥३७॥

आर्यावर्त में सब से छोटे दिन से सूर्य का उत्तरायण और सब से लम्बे दिन से सूर्य का दक्षिणायन माना जाता है॥३७॥

सूर्यस्योदङ्मुखीभावात् षट्-सप्तादिदिनोत्तरा।
याऽमावास्या तत्र पूर्णे मासे वर्षं प्रवर्तते॥३८॥

सूर्य उत्तर की ओर आवर्तित होने के दिन से न्यून से न्यून में भी छः-सात दिन पीछे की जो अमावास्या होती है, उस अमावास्या में पूर्ण होनेवाले चान्द्र मास में वैदिक सौरचान्द्र नववर्ष लगता है॥३८॥

तस्य मासस्य या शुक्लप्रतिपत् तत एव च।
इज्यार्थं वर्षमयनमृतुर् मासश् च गण्यते॥३९॥

उस चान्द्र मास की जो शुक्लपक्ष की प्रतिपदा होती है, उसी दिन से वैदिक धार्मिक कृत्य के लिए (नया) वर्ष, (नया) अयन, (नया) ऋतु और (नया) मास भी गिने जाते हैं॥३९॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तत्राऽयनं चोत्तरं स्यादृतुश् च शिशिरो भवेत्।
मन्त्रोक्तश् च तपा मासो माघो ब्राह्मणकीर्तितः ॥४०॥

वहाँ अयन उत्तरायण होता है, ऋतु शिशिर होता है, मास वेदमन्त्र में श्रुत तपोमास होता है, यही तपोमास ब्राह्मणग्रन्थ में कहा गया माघमास है॥४०॥

तपोमासो वेदमन्त्रे श्रुतो लगधभाषितः।
यस् तत्राऽनादिसङ्केतस् तपश्शब्दस्य चोचितः ॥४१॥

वेदमन्त्र में श्रुत और लगधमुनि से परिभाषित किया गया जो तपोमासरूप काल है, उसी में तपःशब्द का अनादि सङ्केत मानना उचित है॥४१॥

तपोमासाऽभिन्न एव माघो वैदिकसम्मतः।
न त्वन्यो राशिमादायाऽर्वाचीनैः परिभाषितः ॥४२॥

उक्त प्रकार का जो तपोमास होता है, उससे अभेद होनेवाला माघमास ही वैदिकों का सम्मत होता है; वेद में, वेदाङ्गों में, मनुस्मृति-याज्ञवल्क्यस्मृति-महाभारत इत्यादि में भी अनुपलब्ध मेष, वृष इत्यादि राशि को लेकर अर्वाचीन जनों से परिभाषित आधुनिक प्रचलन में विद्यमान पत्रे में उल्लिखित माघादि मास वैदिकों का सम्मत नहीं होता है॥४२॥

एवं माघस् तपोऽभिन्नो यदा भवति निश्चितः।
तदा तपस्याद्यभिन्नाः फाल्गुनाद्याश् च निश्चिताः ॥४३॥

इस प्रकार जब माघमास लगधमुनिद्वारा परिभाषित तपोमास से अभिन्न होने की बात निश्चित होती है, तब फाल्गुनादि मास भी वेदमन्त्रोक्त तपस्यादि मास से अभिन्न होने की बात भी निश्चित होती है॥४३॥

मासास् ते ऋतुबद्धा हि वेदमन्त्रेषु कीर्तिताः।
पाणिन्युक्तनिरुक्तिस् तु रूपज्ञानप्रयोजना ॥४४॥

वेदमन्त्रों में उल्लिखित तपस्-तपस्यादि वे मास ऋतुबद्ध ही हैं। पाणिनि से प्रोक्त **'साऽस्मिन् पौर्णमासीति'** (अष्टाध्यायी ४।२।२१) यह निर्वचन तो शब्दरूपज्ञान के प्रयोजन के लिए है॥४४॥

तस्मान् नक्षत्रबद्धत्वं मासानां वैदिकैरिह।
नैवाऽऽस्थेयं यतो वर्षं चाऽऽतवं वैदिकोचितम् ॥४५॥

अतः वैदिक धार्मिक कृत्य में तपस्-तपस्यादि मासों का नक्षत्रबद्धत्व वैदिकों को नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वैदिकों के लिए उचित सौरचान्द्र वर्ष भी आर्तव है नक्षत्रबद्ध नहीं॥४५॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सौरेऽयने सप्त दर्शाः सपञ्चषदिनेऽपि च।
यदा दर्शे सप्तमे तु पूर्णो मासस् तदाऽधिकः ॥४६॥

अन्त में अतिरिक्त पाँच-छः दिनों से युक्त एक सौर अयन में जब ७ अमावास्याएँ पडती हैं, उस समय उस अयन की सातवीं अमावास्या में पूर्ण होनेवाला चान्द्रमास वैदिक अधिकमास (मलमास) होता है॥४६॥

कृष्णपक्षे तु नवमीमप्यतिक्रम्य भास्करः।
यत्राऽयनान्तरं गच्छेद् मासोऽमान्तो हि सोऽधिकः ॥४७॥

कृष्णपक्ष में नवमी को भी लाँघकर दशमी-एकादशी इत्यादि में सूर्य दूसरे अयन में जाते हैं तो वह अमान्त चान्द्रमास अधिकमास (मलमास) होता है॥४७॥

वैदिकानां तु वर्षादि सौरचान्द्रं प्रकीर्तितम्।
अयनं विषुवं सूर्यान् मासं चन्द्रात् प्रतर्कयेत् ॥४८॥

वैदिकों का वर्ष, अयन, ऋतु इत्यादि सौरचान्द्र (अधिकमासव्यवस्थाद्वारा सूर्यगति से नियन्त्रित और मुख्य रूप में चान्द्र) माने गए हैं। सौर अयन और विषुव को सूर्य से और महीने को चन्द्रमा से विचार करे॥४८॥

द्वाभ्यां हि अयनाभ्यां स्याद् वर्षं सवँवत्सरादिकम्।
सवँवत्सरस् तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः ॥४९॥

ततश् चेदावत्सरश् च तुर्य इद्वत्सरः श्रुतः।
वत्सरः पञ्चमोऽब्दः स्यात् पञ्चाऽब्दस्य युगस्य च ॥५०॥

दो अयनों से संवत्सरादि १ वर्ष होता है। वैदिक पाँच वर्षों के युग में संवत्सर पहला वर्ष, परिवत्सर दूसरा वर्ष, उस के बाद (तीसरा) इदावत्सर, चौथा इद्वत्सर रूप में वेदमन्त्र में सुना गया है, पाँचवाँ वर्ष वत्सर रूप में सुना गया है [इन इदावत्सरादि कुछ वत्सरों के नामों में वेदों की विभिन्न शाखाओं में कुछ भेद मिलता है]॥४९-५०॥

तेषां विपरिवर्तैश् च युगद्वादशकं स्मृतम्।
वैष्णवाद्याह्वयं चान्द्रवत्सरं वैदिकानुगम् ॥५१॥

उन पाँच वर्षों के समूह की परिक्रमा से वैदिक-सिद्धान्तानुसारी चान्द्र-वर्षनिष्पाद्य वैष्णव-बार्हस्पत्यादि नामवाले १२ युगों का समुदाय (युगसङ्घ) निष्पन्न होनेवाला माना गया है॥५१॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१ २
वैष्णवम् प्रथमन् तत्र बार्हस्पत्यन् ततः परम्।
३ ४ ५ ६ ७
ऐन्द्रमाग्नेयञ् च त्वाष्ट्रमाहिर्बुध्न्यञ् च पित्र्यकम्॥५२॥
८ ९ १० ११
वैश्वदेवञ् च सौम्यञ् च ऐन्द्राग्नञ् चाऽऽश्विनन् तथा।
१२
भाग्यञ् चेति द्वादशैव युगानि कथितानि हि॥५३॥

पहला वैष्णव, उस के बाद बार्हस्पत्य, ऐन्द्र, आग्नेय, त्वाष्ट्र, आहिर्बुध्न्य, पित्र्य, वैश्वदेव, सौम्य, ऐन्द्राग्न, आश्विन और वैसा ही भाग्य, ये बारह युग बताए गए हैं॥५२–५३॥

"स्वराक्रमेते सोमाऽर्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदाऽऽदियुगम् माघस् तपश्शुक्लोऽयनं ह्युदक्॥५४॥"

जिस समय में धनिष्ठानक्षत्रसहित चन्द्रमा और सूर्य साथसाथ आकाश में उदित होते हैं, उस समय आदियुग (वेदाङ्गज्योतिष की युगगणनापद्धति का पहला युग) लगता है, माघ लगता है, तपश्शुक्ल (माघशुक्लपक्ष) भी लगता है और उदगयन भी लगता है। [यह श्लोक लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष का है (श्लो.६)। इससे उदगयन के आरम्भ के नक्षत्र में कालक्रम से भिन्नता आ जाने पर भी सूर्य के उदगयनारम्भ के द्वारा ही वैदिक नववर्षारम्भ का, तपोमास का (माघ महीने का) और शिशिरऋतु का निरूपण निर्दिष्ट होने की बात सम्यक्तया सूचित होती है]॥५४॥

चान्द्रा हि प्रभवाद्यास् तु तपश्शुक्लादिका मताः।
एते ह्यन्यैः क्वचिच् चैत्र-शुक्लाद्याः परिकीर्तिताः॥५५॥

वैष्णवादि पाँचवर्षवाले युगों में पडनेवाले चान्द्र प्रभव-विभवादि वर्ष तपश्शुक्लप्रतिपदा में (वैदिक आर्तव माघशुक्लप्रतिपदा में) प्रारम्भ होनेवाले होते हैं। किन्हीं लोगों से ये प्रभवादि अर्वाचीन राशिमूलक परिभाषानुसार की चैत्रशुक्लप्रतिपदा में प्रारम्भ होनेवाले बताए गए हैं। [वैदिकों के लिए चैत्रशुक्लप्रतिपदा में चान्द्र प्रभवादि वर्ष का प्रारम्भ होने की बात मान्य नहीं है। मगब्राह्मण वराहमिहिरादि से बताए गए बार्हस्पत्य प्रभवादि और उनकी वैदिक चान्द्र संवत्सर-परिवत्सरादि से समानता भी वैदिकों के लिए मान्य नहीं है]॥५५॥

संवत्सरादयश् चान्द्रा वेदोक्ता निश्चिता हि ते।
चान्द्र्या षष्ट्या हि युज्यन्ते न बार्हस्पत्यया क्वचित्॥५६॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेदोक्त संवत्सर-परिवत्सरादि वर्ष मुख्य रूप में चान्द्र हैं यह निश्चित है, ये संवत्सर-परिवत्सरादि वत्सर चान्द्र प्रभव-विभवादि साठ वर्षों से प्रारम्भ में और समाप्ति में साम्य रखते हैं, बार्हस्पत्य प्रभव-विभवादि साठ वर्षों से कहीं भी साम्य नहीं रखते हैं॥५६॥

वैष्णवादियुगेष्वब्दाः षष्टिः स्युः प्रभवादयः।
चान्द्रा हि वत्सरास् ते हि गार्ग्यादिमुनिकीर्तिताः ॥५७॥

१ २ ३ ४ ५
"प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः।
६ ७ ८ ९ १०
अङ्गिराः श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च॥५८॥
११ १२ १३ १४ १५
ईश्वरो बहुधान्यश् च प्रमाथी विक्रमो वृषः।
१६ १७ १८ १९ २०
चित्रभानुः सुभानुश् च तारणः पार्थिवोऽव्ययः ॥५९॥
२१ २२ २३ २४ २५
सर्वजित् सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः।
२६ २७ २८ २९ ३०
नन्दनो विजयश् चैव जयो मन्मथ-दुर्मुखौ॥६०॥
३१ ३२ ३३ ३४ ३५
हेमलम्बो विलम्बोऽथ च विकारी शार्वरी प्लवः।
३६ ३७ ३८ ३९ ४०
शुभकृच् छोभनः क्रोधी विश्वावसु-पराभवौ॥६१॥
४१ ४२ ४३ ४४ ४५
प्लवङ्गः कीलकः सौम्यः साधारण-विरोधकृत्।
४६ ४७ ४८ ४९ ५०
परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसोऽनलः ॥६२॥
५१ ५२ ५३ ५४ ५५
पिङ्गलः कालयुक्तश् च सिद्धार्थी रौद्र-दुर्मती।
५६ ५७ ५८ ५९ ६०
दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः ॥६३॥"

वैष्णवादि बारह युगों में प्रभवादि साठ वर्ष होते हैं। ये चान्द्र साठ संवत्सर गार्ग्यादि मुनि से बताए गए हैं [द्र.– निर्णयसिन्धु] ॥५७॥

Prof. Amodavardhana Kauhdinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१) प्रभव, (२) विभव, (३) शुक्ल, (४) प्रमोद, (५) प्रजापति, (६) अङ्गिरा, (७) श्रीमुख, (८) भाव, (९) युवा, (१०) धाता, (११) ईश्वर, (१२) बहुधान्य, (१३) प्रमाथी, (१४) विक्रम, (१५) वृष, (१६) चित्रभानु, (१७) सुभानु, (१८) तारण, (१९) पार्थिव, (२०) अव्यय (व्यय), (२१) सर्वजित्, (२२) सर्वधारी, (२३) विरोधी, (२४) विकृति, (२५) खर, (२६) नन्दन, (२७) विजय, (२८) जय, (२९) मन्मथ, (३०) दुर्मुख, (३१) हेमलम्ब, (३२) विलम्ब, (३३) विकारी, (३४) शार्वरी, (३५) प्लव, (३६) शुभकृत्, (३७) शोभन, (३८) क्रोधी, (३९) विश्वावसु, (४०) पराभव, (४१) प्लवङ्ग, (४२) कीलक, (४३) सौम्य, (४४) साधारण, (४५) विरोधकृत्, (४६) परिधावी, (४७) प्रमादी, (४८) आनन्द, (४९) राक्षस, (५०) अनल, (५१) पिङ्गल, (५२) कालयुक्त, (५३) सिद्धार्थी, (५४) रौद्र, (५५) दुरमति, (५६) दुन्दुभि, (५७) रुधिरोद्गारी, (५८) रक्ताक्षी, (५९) क्रोधन, (६०) क्षय ये साठ चान्द्र प्रभवादि संवत्सर हैं। [बार्हस्पत्यप्रभवादि में करीब ८५ सौर वर्षों में एक वर्ष टूटता है, विक्रमसंवत् १९८९ में परम्परागत पत्रे में तारण और पार्थिव दो संवत्सर बीतने की और एक संवत्सर पार्थिव टूटने की बात उल्लिखित थी। अब कुछ वर्षों के बाद भी एक संवत्सर टूटनेवाला है। चान्द्रसंवत्सरों में तो कभी भी वैसा नहीं होता है। चान्द्र संवत्सर न टूटकर सदा क्रमशः आते हैं। श्रौत-स्मार्त कर्म के सङ्कल्प में चान्द्र संवत्सर ही स्मरणीय है बार्हस्पत्य संवत्सर स्मरणीय नहीं, ऐसी बात धर्मसिन्धु में भी प्रारम्भ में ही उल्लिखित है।]

[इन का सङ्कल्प में प्रयोग करने के समय में अकारान्त नामों का तो प्रभवापरनामके विभवापरनामके इत्यादि रूप में प्रयोग करना सरल ही है, अन्य में प्रजापत्यपरनामके, अङ्गिरोऽपरनामके, युवापरनामके, धात्रपरनामके, प्रमाथ्यपरनामके, चित्रभान्वपरनामके, सुभान्वपरनामके, सर्वजिदपरनामके, सर्वधार्यपरनामके, विरोध्यपरनामके, विकृत्यपरनामके, विकार्यपरनामके, शार्वर्यपरनामके, शुभकृदपरनामके, क्रोध्यपरनामके, विश्वावस्वपरनामके, विरोधकृदपरनामके, परिधाव्यपरनामके, प्रमाद्यपरनामके, सिद्धार्थ्यपरनामके, दुर्मत्यपरनामके, दुन्दुभ्यपरनामके, रुधिरोद्गार्यपरनामके, रक्ताक्ष्यपरनामके—इस प्रकार के रूप में प्रयोग करना चाहिए]॥५८–६३॥

वर्षं यन् मानुषाणां स दिव्याऽहोरात्र उच्यते।
तत्त्रिंशता दिव्यमासस् तैर् हि द्वादशसङ्ख्यकैः ॥६४॥
दिव्यं वर्षं स्मृतं प्राज्ञैस् तैर् द्वादशसहस्रकैः ।
दिव्यं युगं सैव चतुर्युगी प्रोक्ता नृणामिह ॥६५॥

मनुष्य का जो एक सौरचान्द्र वर्ष है वह दिव्य एक अहोरात्र कहा जाता है। वैसे तीस अहोरात्रों से एक दिव्य मास होता है। वैसे बारह मासों से विद्वानों से एक

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिव्य वर्ष माना गया है। बारह हजार उन दिव्य वर्षों से एक दिव्य युग माना गया है। उसी दिव्य युग को इस मानुष लोक में मनुष्यों की चतुर्युगी (चौकडी) माना गया है॥६४–६५॥

मितम् मानुषवर्षाणाञ् चतुर्भिर् लक्क्षकैस् तथा।
द्वात्रिंशता सहस्रैश् च बुधैः कलियुगं स्मृतम्॥६६॥

चार लाख और बत्तीस हजार मानुष वर्षों से कलियुग होने की बात विज्ञ जनों से मानी गई है॥६६॥

द्विगुणन् द्वापरयुगङ् कलेस् त्रेतायुगम् पुनः।
त्रिगुणं स्यात् सत्त्ययुगञ् चतुर्गुणमिति स्स्थितिः॥६७॥

कलियुग के काल के द्विगुणित काल से द्वापर युग और त्रिगुणित काल से त्रेतायुग तथा चतुर्गुणित काल से सत्ययुग होने की बात शास्त्र में निश्चित रूप में बताई गई है॥६७॥

चतुर्युग्येकसप्तत्या सन्ध्या-सन्ध्यांशयुक्तया।
मन्वन्तरम् प्रकथितम् पुराणागमवेदिभिः॥६८॥

युगसन्ध्याओं और युगसन्ध्यांशों से युक्त इकहत्तर चतुर्युगियों से (चौकडियों से) एक मन्वन्तर होने की बात पुराण-आगम जाननेवाले विज्ञों से बताई गई है॥६८॥

मन्वन्तरैस् तादृशैश् च चतुर्दशभिरुच्च्यते।
ब्राह्मन् दिनन् दिव्व्ययुगसहस्रात्मकमेव तत्॥६९॥

उस प्रकार के चौदह मन्वन्तरों से ब्रह्मा जी का एक दिन कहा जाता है। वह ब्रह्मा का एक दिन एक हजार दिव्य युगों से युक्त होता है॥७०॥

चतुर्भिरर्बुदैर् द्वात्रिंशता कोटिभिरेव च।
युक्तो मानुषवर्षाणाङ् कालोऽयङ् कल्पसञ्ज्ञकः॥७०॥

तावत्काला निशा चेति ब्राह्मोऽहोरात्त्र ईदृशः।
तैस् त्रिंशता ब्राह्ममासस् तैश् च द्वादशसङ्ख्यकैः॥७१॥
ब्राह्मवर्षन् तादृशैश्च वर्षैः शतमितैः पुनः।
आयुस् स्याद् ब्रह्मणस् तच् च स्यात् परब्रह्मणो दिनम्॥७२॥
स त्वाक्ख्यातो महाकल्पस् तावत्त्येव निशाऽस्स्य च।
एवम् प्राज्ञैःपरब्रह्माहोरात्त्रश् च प्प्रकल्पितः॥७३॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह ब्रह्मा जी के दिन का काल चार अरब बत्तीस करोड मानुष सौरचन्द्र वर्षों से युक्त होता है और इसको एक कल्प कहा जाता है। उक़्त कल्प के काल से तुल्य कालवाली ब्रह्मा जी की रात्रि भी होती है। उक्त प्रकार के ब्रह्मा जी के दिन और रात से ब्रह्मा जी का एक अहोरात्र होता है। वैसे ब्रह्मा जी के तीस अहोरात्रों से ब्रह्मा जी का एक मास होता है। वैसे ब्रह्मा जी के बारह मासों से ब्रह्मा जी का एक वर्ष होता है। उस प्रकार के ब्रह्मा जी के सौ वर्षों से ब्रह्मा जी का आयु होता है [उस को पर कहते हैं]। उस काल को परब्रह्म का एक दिन माना जाता है। उस काल को एक महाकल्प कहा गया है। उतने ही काल की परब्रह्म की रात्रि भी होती है। इस प्रकार से विज्ञ ऋषिमुनियों से परब्रह्म का अहोरात्र कल्पित किया गया है॥७०–७१॥

ब्रह्मणस् तु परस्याऽर्धे द्वितीये प्रथमेऽब्दके।
श्वेतवाराहकल्पाख्ये स्थिते हि सप्तमस्य च ॥७४॥
वैवश्वतस्य तु मनोरन्तरे वर्तमानके।
अष्टाविंश्यां चतुर्युग्यां तुर्यं कलियुगं त्विदम् ॥७४॥

ब्रह्मा जी के पर कहे जानेवाले आयु के दूसरे अर्धभाग में श्वेतवाराहकल्प नाम का प्रथम वर्ष चलते रहने पर और सप्तम वैवस्वत मनु का अन्तर (लोक-व्यवस्थापनकाल) वर्तमान होने पर अट्ठाईसवीं चतुर्युगी (चौकडी) में यह वर्तमान चौथा युग कलियुग है॥७४॥

वैदिकानां सम्मतस्य युगस्याऽस्य तु वर्तते।
त्रिसप्तत्युत्तरः पञ्चसहस्रतमकोऽब्दकः ॥७४॥

वैदिकों का सम्मत इस कलियुग का पाँच हजार त्रिहत्तरवाँ वर्ष इस समय में चल रहा है॥७४॥

चैत्रशुक्लप्रतिपदि कलेरब्दः प्रवर्तते।
अन्येषां तु मते यावतिथः षट्त्रिंशता ततः ॥७५॥

न्यूनः कृष्णयुगाब्दस् तु वैदिकानां प्रवर्तते।
तपश्शुक्लप्रतिपदि तत्पूर्वस्यामिति स्थितिः ॥७६॥

अन्य जनों के मत में चैत्रशुक्लप्रतिपदा में कलि का जितनवें वर्ष का प्रारम्भ होता है, उस से ३६ घटाने पर जितना अङ्क होता है, उतनवें कलिवर्ष का वैदिकों के मत में उक्त चैत्रशुक्लप्रतिपदा आने से पूर्व की तपःशुक्लप्रतिपदा में (सौर-मकरराशिनिरपेक्ष वैदिक आर्तव चान्द्र माघशुक्लप्रतिपदा में) प्रारम्भ होता है, यह सिद्धान्त है॥७५–७६॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तष्टाः कलियुगाब्दास् तु षष्ट्याऽऽदियुगसञ्चयः।
लब्धः, शेषस् तु प्रभवादिकवर्षप्रबोधकः ॥७७॥
शेषसङ्ख्यापूरकस् तु चान्द्रोऽब्दोऽत्र प्रवर्तते।
तस्मिन् शेषे पञ्चभिस् तु तष्टे लब्धं युगङ् गतम् ॥७८॥
शिष्टेऽत्र खे पञ्चमोऽब्दो लब्धितुल्ययुगस्य हि।
अन्यत्र तूत्तरस्यैव युगस्य च क्रमेण वै ॥७९॥
संवत्सरादयः शेषसङ्ख्यायाः पूरकाः खलु।
प्रथमाद्या वत्सरा हि ज्ञातव्या ब्राह्मणैः सदा ॥८०॥

उक्त रीति से तपश्शुक्लप्रतिपदा में प्राप्त होनेवाली कलिवर्षसङ्ख्या को साठ से भाग लेवे, लब्धि कलियुग के आरम्भ के बाद बीते हुए साठ वर्षों के युगसङ्घ का समूह होता है; शेष प्रभव-विभवादि चान्द्र संवत्सरों का बोधक होता है। शेष को पाँच से भाग देने पर जो लब्धि होगी वह वर्तमान साठवर्षवाले युगसङ्घ में बीते हुए पाँच वर्षवाले वैष्णवादि युग की सङ्ख्या होती है; इस प्रकार भाग लेने पर शेष शून्य हो तो लब्धि जितनी है उतनवें वैदिक वैष्णवादि पाँच वर्षवाले युग का पाँचवाँ वर्ष वत्सर होता है, शेष १ अथवा २ अथवा ३ अथवा ४ हो तो वैदिक ब्राह्मणों को सदा ही लब्धि से एक सङ्ख्या आगेवाले वैदिक पाँच वर्ष वाले वैष्णवादि युग के संवत्सरादि पाँच वर्षों में से क्रमशः पहला अथवा दूसरा अथवा तीसरा अथवा चौथा वर्ष जानना चाहिए॥७७–८०॥

संवत्सराद्यैर् वेदोक्तैः पञ्चकैः क्रमशस् सदा।
प्रवर्तमानैः षष्टिः स्युश् चान्द्रा हि प्रभवादयः ॥८१॥

सर्वदा क्रम से घूमते रहने वाले संवत्सर-परिवत्सरादि पञ्चवर्षात्मक वैदिक युगों से प्रभव-विभव इत्यादि साठ चान्द्र संवत्सर होते हैं॥८१॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ग) वैदिकपञ्चवर्षात्मकयुग-चान्द्रषष्टिसंवत्सर-समन्वयोदाहरण-सारणी

वैदिक पञ्चवर्षात्मक वैष्णव बार्हस्पत्य इत्यादि १२ युग वैदिक संवत्सर परिवत्सर इत्यादि ५ चान्द्रवर्ष तथा तदनुसारी वैदिक चान्द्र षष्टिसंवत्सरात्मक युगसङ्घ भी कैसे घूमते हैं इस विषय के अवबोध के लिए नीचे एक सारणी प्रस्तुत किया गया है। इस सारणी में वर्तमान चान्द्र-षष्टिसंवत्सरात्मक युगसङ्घ के प्रारम्भ से कुछ विवरण प्रस्तुत है—

कलि संवत् ✕	वैष्णवादि युग	संवत्सरादि वैदिक वर्ष	चान्द्रप्रभवादि संवत्सर	प्रारम्भ की तारीख ⊞	वैदिक अधिकमास
५०४१	१ वैष्णव	१ संवत्सर	१ प्रभव	१९७५-१२-३ बु.	१९७६।११।२२ से १९७६।१२।२० तक
५०४२	१ वैष्णव	२ परिवत्सर	२ विभव	१९७६-१२-२१ म.	(द्वितीय सहस्य [पौष])
५०४३	१ वैष्णव	३ इदावत्सर	३ शुक्ल	१९७७-१२-११आ.	१९७९।५।२६ से १९७९।६।२४ तक
५०४४	१ वैष्णव	४ इद्वत्सर	४ प्रमोद	१९७८-१२-१ शु.	(द्वितीय शुचि [आषाढ])
५०४५	१ वैष्णव	५ वत्सर	५ प्रजापति	१९७९-१२-२० बृ.	
५०४६	२ बार्हस्पत्य	१ संवत्सर	६ अङ्गिरा	१९८०-१२-८ सो.	१९८१।११।२७ से १९८१।१२।२६
५०४७	२ बार्हस्पत्य	२ परिवत्सर	७ श्रीमुख	१९८१-१२-२७आ.	तक
५०४८	२ बार्हस्पत्य	३ इदावत्सर	८ भाव	१९८२-१२-१६ बृ.	(द्वितीय सहस्य [पौष])
५०४९	२ बार्हस्पत्य	४ इद्वत्सर	९ युवा	१९८३-१२-५ सो.	१९८४।११।२३ से १९८४।१२।२२ तक
५०५०	२ बार्हस्पत्य	५ वत्सर	१० धाता	१९८४-१२-२३आ.	(द्वितीय सहस्य [पौष])
५०५१	३ ऐन्द्र	१ संवत्सर	११ ईश्वर	१९८५-१२-१२ बृ.	१९८७।५।२८ से १९८७।६।२५ तक
५०५२	३ ऐन्द्र	२ परिवत्सर	१२ बहुधान्य	१९८६-१२-२ म.	(द्वितीय शुचि [आषाढ])
५०५३	३ ऐन्द्र	३ इदावत्सर	१३ प्रमाथी	१९८७-१२-२१सो.	१९९०।५।२५ से १९९०।६।२२ तक
५०५४	३ ऐन्द्र	४ इद्वत्सर	१४ विक्रम	१९८८-१२-९ शु.	(द्वितीय शुचि [आषाढ])
५०५५	३ ऐन्द्र	५ वत्सर	१५ वृष	१९८९-१२-२९ बु.	

✕ कलिसंवत् में ३६ जोडने पर युधिष्ठिरसंवत् अथवा महाभारतयुद्धसंवत् होता है। जैसे—कलिसंवत् ५०७४में युधिष्ठिरसंवत् (५०७४+३६=) ५११० होता है।

⊞ इन तारीखों में वैदिक तपोमास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा पडती है। इस स्तम्भ में दी गई इन तारीखों में वेदाङ्गज्योतिषोक्त नववर्ष का आरम्भ होता है। इन तारीखों से ही उस-उस वर्ष में वैदिक सौरचान्द्र उदगयन का और वैदिक सौरचान्द्र शिशिरऋतु का भी आरम्भ होता है। उस के बाद दो-दो चान्द्र मासों में वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् और हेमन्त ऋतु क्रमशः आते हैं।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कलि संवत्	वैष्णवादि युग ✕	संवत्सरादि वैदिक वर्ष	चान्द्र प्रभवादि संवत्सर	प्रारम्भ की तारीख	वैदिक अधिकमास
५०५६	४ आग्नेय	१ संवत्सर	१६ चित्रभानु	१९९०-१२-१७ सो.	१९९२।११।२५ से १९९२।१२।२४ तक
५०५७	४ आग्नेय	२ परिवत्सर	१७ सुभानु	१९९१-१२-६ शु.	(द्वितीय सहस्य [पौष])
५०५८	४ आग्नेय	३ इदावत्सर	१८ तारण	१९९२-१२-२४ बृ.	१९९५।११।२३ से १९९५।१२।२१ तक
५०५९	४ आग्नेय	४ इद्वत्सर	१९ पार्थिव	१९९३-१२-१४ म.	(द्वितीय सहस्य [पौष])
५०६०	४ आग्नेय	५ वत्सर	२० अव्यय	१९९४-१२-३ श.	
५०६१	५ त्वाष्ट्र	१ संवत्सर	२१ सर्वजित्	१९९५-१२-२२ शु.	१९९८।५।२६ से १९९८।६।२३ तक
५०६२	५ त्वाष्ट्र	२ परिवत्सर	२२ सर्वधारी	१९९६-१२-११ बु.	(द्वितीय शुचि [आषाढ])
५०६३	५ त्वाष्ट्र	३ इदावत्सर	२३ विरोधी	१९९७-११-३० आ.	२०००।११।२६ से २०००।१२।२५ तक
५०६४	५ त्वाष्ट्र	४ इद्वत्सर	२४ विकृति	१९९८-१२-१९ श.	(द्वितीय सहस्य [पौष])
५०६५	५ त्वाष्ट्र	५ वत्सर	२५ खर	१९९९-१२-८ बु.	
५०६६	६ आहिर्बुध्न्य	१ संवत्सर	२६ नन्दन	२०००-१२-२६ म.	२००३।११।२४ से २००३।१२।२३ तक
५०६७	६ आहिर्बुध्न्य	२ परिवत्सर	२७ विजय	२००१-१२-१५ श.	(द्वितीय सहस्य [पौष])
५०६८	६ आहिर्बुध्न्य	३ इदावत्सर	२८ जय	२००२-१२-५ बृ.	
५०६९	६ आहिर्बुध्न्य	४ इद्वत्सर	२९ मन्मथ	२००३-१२-२४ बु.	
५०७०	६ आहिर्बुध्न्य	५ वत्सर	३० दुर्मुख	२००४-१२-१२ आ.	
५०७१	७ पित्र्य	१ संवत्सर	३१ हेमलम्ब	२००५-१२-२ शु.	२००६-५-२७ से २००६-६-२५ तक
५०७२	७ पित्र्य	२ परिवत्सर	३२ विलम्ब	२००६-१२-२१ बृ.	(द्वितीय शुचि [आषाढ])
५०७३	७ पित्र्य	३ इदावत्सर	३३ विकारी	२००७-१२-१० सो.	२००९-५-२५ से २००९-६-२२ तक
५०७४	७ पित्र्य	४ इद्वत्सर	३४ शार्वरी	२००८-११-२८ शु.	(द्वितीय शुचि [आषाढ])
५०७५	७ पित्र्य	५ वत्सर	३५ प्लव	२००९-१२-१७ बृ.	
५०७६	८ वैश्वदेव	१ संवत्सर	३६ शुभकृत्	२०१०-१२-६ सो.	२०११।११।२५से २००३।१२।२४ तक
५०७७	८ वैश्वदेव	२ परिवत्सर	३७ शोभन	२०११-१२-२५ आ.	(द्वितीय सहस्य [पौष])
५०७८	८ वैश्वदेव	३ इदावत्सर	३८ क्रोधी	२०१२-१२-१४ शु.	२०१४।११।२३ से २०१४।१२।२१ तक
५०७९	८ वैश्वदेव	४ इद्वत्सर	३९ विश्वावसु	२०१३-१२-३ म.	(द्वितीय सहस्य [पौष])
५०८०	८ वैश्वदेव	५ वत्सर	४० पराभव	२०१४-१२-२२ सो.	

✕ ये युग चान्द्र षष्टिसंवत्सरों के प्रभव-विभवादि से अभिन्न चान्द्र संवत्सर-परिवत्सरादि से बनते हैं। बार्हस्पत्य प्रभव-विभवादि तो इनसे भिन्न होते हैं।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कलि संवत्	वैष्णवादि युग	संवत्सरादि वैदिक वर्ष	चान्द्र प्रभवादि संवत्सर	प्रारम्भ की तारीख	वैदिक अधिकमास ❋
५०८१	९ सौम्य	१ संवत्सर	४१ प्लवङ्ग	२०१५-१२-१२ श.	२०१७।५।२६ से २०१७।६।२३ तक
५०८२	९ सौम्य	२ परिवत्सर	४२ कीलक	२०१६-११-३० बु.	(द्वितीय शुचि [आषाढ])
५०८३	९ सौम्य	३ इदावत्सर	४३ सौम्य	२०१७-१२-१८सो.	२०१९।११।२७ से २०१९।१२।२५ तक
५०८४	९ सौम्य	४ इद्वत्सर	४४ साधारण	२०१८-१२-८ श.	(द्वितीय सहस्य [पौष])
५०८५	९ सौम्य	५ वत्सर	४५ विरोधकृत्	२०१९-१२-२६ बृ.	
५०८६	१० ऐन्द्राग्न	१ संवत्सर	४६ परिधावी	२०२०-१२-१५ म.	२०२२।११।२४ से २०१९।१२।२३ तक
५०८७	१० ऐन्द्राग्न	२ परिवत्सर	४७ प्रमादी	२०२१-१२-५ आ.	(द्वितीय सहस्य [पौष])
५०८८	१० ऐन्द्राग्न	३ इदावत्सर	४८ आनन्द	२०२२-१२-२४ श.	२०२५।५।२७ से २०२५।६।२५ तक
५०८९	१० ऐन्द्राग्न	४ इद्वत्सर	४९ राक्षस	२०२३-१२-१३ बु.	(द्वितीय शुचि [आषाढ])
५०९०	१० ऐन्द्राग्न	५ वत्सर	५० अनल	२०२४-१२-१ आ.	
५०९१	११ आश्विन	१ संवत्सर	५१ पिङ्गल	२०२५-१२-२० श.	२०२७।११।२८ से २०२७।१२।२७ तक
५०९२	११ आश्विन	२ परिवत्सर	५२ कालयुक्त	२०२६-१२-९ बु.	(द्वितीय सहस्य [पौष])
५०९३	११ आश्विन	३ इदावत्सर	५३ सिद्धार्थी	२०२७-१२-२८ म.	२०३०।११।२५ से २०३०।१२।२४ तक
५०९४	११ आश्विन	४ इद्वत्सर	५४ रौद्र	२०२८-१२-१६ श.	(द्वितीय सहस्य [पौष])
५०९५	११ आश्विन	५ वत्सर	५५ दुर्मति	२०२९-१२-६ बृ.	
५०९६	१२ भाग्य	१ संवत्सर	५६ दुन्दुभि	२०३०-१२-२५ बु.	
५०९७	१२ भाग्य	२ परिवत्सर	५७रुधिरोद्गारी	२०३१-१२-१५ सो.	
५०९८	१२ भाग्य	३ इदावत्सर	५८ रक्ताक्षी	२०३२-१२-३ शु.	२०३३।११।२२ से २०३३।१२।२१ तक
५०९९	१२ भाग्य	४ इद्वत्सर	५९ क्रोधन	२०३३-१२-२२ बृ.	(द्वितीय सहस्य [पौष])
५१००	१२ भाग्य	५ वत्सर	६० क्षय	२०३४-१२-११ सो.	
५१०१	१ वैष्णव	१ संवत्सर	१ प्रभव	२०३५-११-३० शु.	२०३६।५।२६ से २०३६।६।२३ तक
५१०२	१ वैष्णव	२ परिवत्सर	२ विभव	२०३६-१२-१८ बृ.	(द्वितीय शुचि [आषाढ])
५१०३	१ वैष्णव	३ इदावत्सर	३ शुक्ल	२०३७-१२-७ सो.	२०३८।११।२७ से
५१०४	१ वैष्णव	४ इद्वत्सर	४ प्रमोद	२०३८-१२-२६आ.	२०३८।१२।२५ तक
५१०५	१ वैष्णव	५ वत्सर	५ प्रजापति	२०३९-१२-१६ शु.	(द्वितीय सहस्य [पौष])

❋ द्वितीय शुचि [आषाढ] और द्वितीय सहस्य [पौष] वैदिक अधिकमास हैं। द्वितीय शुचि अथवा द्वितीय आषाढ ग्रीष्मऋतुअन्तर्गत होता है और द्वितीय सहस्य अथवा द्वितीय पौष हेमन्तऋतुअन्तर्गत होता है।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(घ) वैदिक धर्मकृत्य के सङ्कल्प में काल के उल्लेख का उदाहरण

२०६५ संवत् के निरयण वृश्चिकमास के तेरहवें दिन (भारतीय राष्ट्रिय शक १९३० अगहन के ७ वें दिन, सन् २००८ नवम्बर के २८ तारीख) को पडनेवाले वैदिक नववर्षारम्भ के दिन का काल के वैदिक धर्मकृत्य के सङ्कल्प में उल्लेख करते समय २०६५ संवत् के निरयण मीनमास (भारतीय राष्ट्रिय शक १९३१ चैत्र ६, सन् २००९ मार्च २७ तारीख) पडनेवाली चैत्रशुक्ल-प्रतिपदा में दूसरों के मत में कलिवर्ष (महाभारतयुद्धाब्द वा युधिष्ठिरराज्यारोहणाब्द) ५११०; उस में ३६ घटाने पर अवशिष्ट ५०७४ वैदिकों का कलिवर्ष (कृष्ण के स्वर्गारोहण से गणनीय वास्तविक कलिवर्ष) होता है। उसका सङ्कल्प में उल्लेख करने के समय में **"पञ्चसु सहस्रेषु त्रिसप्ततौ च वर्षेषु गतेषु तदुत्तरे वर्षे प्रवृत्ते"** यों कहना पडता है। कलिवर्ष ५०७४ को ६० से भाग देने पर लब्धि ८४ हुई और शेष ३४ हुआ और कलियुग लगने के बाद बीते हुए षष्टिवर्षात्मक युग की सङ्ख्या ८४ ज्ञात हुई, किन्तु उसका सङ्कल्प में उल्लेख करना आवश्यक नहीं, शेष ३४ को पाँच से भाग देने पर लब्धि ६ आने से चल रहे षष्टिवर्षात्मक युग के वैष्णव-बार्हस्पत्यादि ६ युग बीते हैं और सप्तम पित्र्य युग चल रहा है यह बात ज्ञात हुई, उसका सङ्कल्प में उल्लेख करने के समय में **"सप्तमे पित्र्ये युगे"** कहना पडता है। ६० से भाग करने पर ३४ शेष होने से प्रभवादि ६० संवत्सरों में से चौतीसवाँ शार्वरिनामक संवत्सर लगा ऐसा ज्ञात हुआ, ३४ को ५ का भाग देने पर ४ शेष होने से पञ्चवर्षात्मक वैदिक युग के संवत्सर-परिवत्सरादि ५ वर्षों में से चौथा इद्वत्सर लगा ऐसा ज्ञात हुआ और शार्वरिनामक संवत्सर और इद्वत्सर एक ही होने से सङ्कल्प में उल्लेख करने के समय में **"शार्वर्यपरनामके इद्वत्सराख्ये चतुर्थे वर्षे"** कहना पडता है।

उक्त दिन से ही वैदिक सौरचान्द्र उदगयन (उत्तरायण) का आरम्भ होने से सङ्कल्प में उल्लेख करने के समय में **"उदगयने"** अथवा **"उत्तरायणे"** कहना पडता है। उक्त दिन से ही वैदिक सौरचान्द्र शिशिर ऋतु लगने से सङ्कल्प में **"शिशिरे ऋतौ"** कहना पडता है। उक्त दिन से ही वैदिक सौरचान्द्र तपोमास अथवा वैदिक आर्तव चान्द्र माघमास लगने से सङ्कल्प में उल्लेख करते समय **"तपसि मासे"** अथवा **"माघे मासे"** कहना पडता है, उक्त दिन से शुक्लपक्ष लगने से सङ्कल्प में उल्लेख करने के समय में **"शुक्ले पक्षे"** कहना पडता है। उक्त दिन में प्रतिपत् वा प्रतिपदा तिथि पडने से सङ्कल्प में उल्लेख करने के समय में **"प्रतिपदि तिथौ"** अथवा **"प्रतिपदायां तिथौ"** कहना पडता है।

सङ्कल्प में करण का भी उल्लेख करना हो तो शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के दिन में वेदाङ्गज्योतिषसिद्धान्तअनुसार दिनभर कौस्तुभ अथवा किंस्तुघ्न करण रहने से और सूर्यास्त होने के बाद बव करण लगने से सङ्कल्प में उल्लेख करते समय दिनभर **"कौस्तुभे करणे"** अथवा **"किंस्तुघ्ने करणे"** कहना पडता है। आथर्वण ज्योतिष में कौस्तुभ ऐसा ही उल्लेख होने से **"कौस्तुभे करणे"** कहना ही उचित है।

उक्त दिन में प्रचलित पञ्चाङ्ग में अनुराधा नक्षत्र लिखे जाने से और वैदिक सिद्धान्त में भी वही नक्षत्र रहने से सङ्कल्प में उल्लेख करने के समय में **"अनुराधासु नक्षत्रे"** कहना पडता है। उक्त दिन में पत्रे में वृद्धि योग लिखे जाने से सङ्कल्प में उल्लेख करने के समय में **"एकादशे वृद्धौ योगे"** कहना पडता है। कर्मकाल में तिथि ही मुख्य होने से तिथिपर्यन्त का ही उल्लेख करना, करण का, नक्षत्र का और योग का उल्लेख सङ्कल्प में न करना भी हो सकता है।

अन्य वार, सूर्य की राशि इत्यादि का भी सङ्कल्प में उल्लेख करने की इच्छा हो तो प्रचलन के अनुसार उनका भी सङ्कल्प में उल्लेख किया जा सकता है। इच्छा न हो तो वैदिक धर्मकृत्य के सङ्कल्प में उनका भी उल्लेख न भी किया जा सकता है॥

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट (४)

ग्रन्थकारद्वारा अवलोकित प्रमुख ग्रन्थ

१. **ऋग्वेदसंहिता** (शैशिरीय-शाकल-ऋग्वेद-मन्त्रसंहिता), सायणव्याख्यासहिता (५ भाग), वैदिक-संशोधन-मण्डल, पुणे, १९७२।

२. **ऋग्वेदः** (शैशिरीय-शाकल-ऋग्वेद-मन्त्रसंहिता), यथोपलब्ध स्कन्दस्वामि-व्याख्या-उद्गीथव्याख्या-वेङ्कटमाधवव्याख्या-मुद्गलीयवृत्तिसहितः (८ भाग), विश्वेश्वरानन्द-वैदिकशोधसंस्थान, होशियारपुर, पञ्जाब, १९६५।

३. **ऐतरेयब्राह्मणम्** (ऐतरेयिब्राह्मणम्), सायणव्याख्यायुक्तम्, आनन्दाश्रम, १९७९।

४. **ऐतरेयारण्यकम्** (ऐतरेय्यारण्यकम्), सायणव्याख्यायुक्तम्, आनन्दाश्रम, १९५९।

५. **शाङ्खायनब्राह्मणम्**, आनन्दाश्रम, पुणे, १९७७।

६. **शाङ्खायनारण्यकम्**, आनन्दाश्रम, पुणे, १९२२।

७. **काठकसंहिता** (काठककृष्णयजुर्वेदसंहिता), स्वाध्यायमण्डल, पारडी, बलसाड्, गुजरात।

८. **कपिष्ठलसंहिता** (कपिष्ठलकठकृष्णयजुर्वेदसंहिता), मेहेरचन्द, नई दिल्ली, १९६८।

९. **मैत्रायणी संहिता** (मैत्रायणीय-कृष्णयजुर्वेदसंहिता), चतुर्थसंस्करण, स्वाध्याय-मण्डल, पारडी, बलसाड्, गुजरात।

१०. **मैत्रायणीयारण्यकम्** (मैत्रायणीय-कृष्णयजुर्वेदारण्यकम्), स्वाध्यायमण्डल, पारडी, बलसाड्, गुजरात, १९५६।

११. **तैत्तिरीयसंहिता** (आत्रेय-तैत्तिरीय-कृष्णयजुर्वेदसंहिता), सायणव्याख्यायुक्ता, (८ भाग), आनन्दाश्रम, पुणे, १९५९।

१२. **तैत्तिरीयब्राह्मणम्**, सायणव्याख्यायुक्तम्, (३ भाग), आनन्दाश्रम, पुणे, १९३४।

१३. **तैत्तिरीयारण्यकम्**, सायणव्याख्यायुक्तम्, (२ भाग), आनन्दाश्रम, पुणे, १९६९।

१४. **वाजसनेयि-माध्यन्दिन-शुक्लयजुर्वेदसंहिता** (माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-मन्त्रार्षसंहिता), उवटव्याख्या-महीधरव्याख्यायुक्ता, दिल्ली, १९७१।

१५. **माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-शतपथब्राह्मणम्**, यथोपलब्ध-हरिस्वामि-सायण-वासुदेव-व्याख्यायुक्तम्, (५ भाग), कल्याण, मुम्बयी, १९४०।

१६. **बृहदारण्यकोपनिषद्** (काण्ववाजसनेयिशुक्लयजुर्वेद-बृहदारण्यकोपनिषद्), आनन्द-गिरिकृतटीकासंवलित-शाङ्करवृत्तिसमेता, वाणीविलाससंस्कृतपुस्तकालय, काशी।

१७. **जैमिनीय-ब्राह्मणम्** (जैमिनीय-सामवेद-ब्राह्मणम्), मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली, १९८६।

१८. **सामवेदसंहिता** (कौथुम-राणायनीय-सामवेदार्चिकसंहिता=योनिमन्त्रसंहिता), स्वाध्यायमण्डल, पारडी, गुजरात, १९५८।

१९. **आरण्यसंहिता**, जीवानन्द-विद्यासागर, कालिकता, १८९१।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२०. **ताण्ड्यमहाब्राह्मणम्** (ताण्डि-कौथुम-राणायनीय-सामवेद-ब्राह्मणम्=पञ्चविंश-ब्राह्मणम्=प्रौढब्राह्मणम्=महाब्राह्मणम्) सायणव्याख्यायुक्तम्, (२ भाग), वाराणसी, १९३५, १९३६।

२१. **षड्विंशब्राह्मणम्**, अद्भुतब्राह्मणयुक्तम्, सायणव्याख्यायुक्तम्, तिरुपति, १९६७।

२२. **सामविधानब्राह्मणम्** (कौथुम-राणायनीय-सामवेद-सामविधानब्राह्मणम्), सायण-व्याख्या-भरतस्वामिव्याख्याद्वययुक्तम्, तिरुपति, १९६४।

२३. **छान्दोग्यब्राह्मणम्** (कौथुम-राणायनीय-सामवेदोपनिषद्ब्राह्मणम्=छान्दोग्यब्राह्मणम्=छान्दोग्य-मन्त्रब्राह्मणम्+छान्दोग्योपनिषद्), मन्त्रब्राह्मणभागात्मकम्, गुणविष्णु-व्याख्या-सायणव्याख्या-द्वय-युक्तम्, संस्कृतमहाविद्यालय, कोलकाता, १९५८।

२४. **छान्दोग्योपनिषद्**, आनन्दगिरिकृतटीकायुक्तशाङ्करवृत्तियुक्ता, काशी, १९४२।

२५. **अथर्ववेदीया पैप्पलादसंहिता**, प्रथमकाण्डम्, कोलकाता, १९६४।

२६. **अथर्ववेदः** (शौनकीयः) (शौनक्यथर्ववेदमन्त्रसंहिता), सायणव्याख्यायुक्तः, (५ भाग), विश्वेश्वरानन्द-वैदिक-शोध-संस्थान, पञ्जाब, १९६०-१९६४।

२७. **गोपथब्राह्मणम्** (पैप्पलादाऽथर्ववेद-गोपथब्राह्मणम्), दिल्ली, १९७२।

२८. **मुण्डकोपनिषद्**, आनन्दगिरिटीकासहित-शाङ्करव्याख्यायुक्ता, आनन्दाश्रम, पुणे, १९३५।

२९. **आश्वलायनश्रौतसूत्रम्**, नारायणवृत्तियुक्तम्, नई दिल्ली, १९८४-१९८५।

३०. **आश्वलायनगृह्यसूत्रम्**, गार्ग्यनारायणवृत्ति-परिशिष्टयुक्तम्, कलिकाता, १८९३।

३१. **शाङ्खायनश्रौतसूत्रम्**, आनर्तीयगोविन्दभाष्ययुक्तम्, (२ भाग), दिल्ली, १९८१।

३२. **शाङ्खायनगृह्यसूत्रसङ्ग्रहः**, न्यायोपाध्यायसोमनाथोपाध्यायसंशोधितः, वाराणसी, १९०८।

३३. **कौषीतकिगृह्यसूत्रम्**, भवत्रातव्याख्यायुक्तम्, दिल्ली, १९८२।

३४. **काठकगृह्यसूत्रम्** (भाष्यत्रयसारयुक्तम्), लाहौर, १९२५।

३५. **मैत्रायणीयमानवगृह्यसूत्रम्** (मानवमैत्रायणीयगृह्यसूत्रम्), अष्टावक्रभाष्ययुक्तम्, दिल्ली, १९८२।

३६. **वाराहश्रौतसूत्रम्** (वाराहमैत्रायणीयश्रौतसूत्रम्), दिल्ली, १९७१।

३७. **वाराहगृह्यसूत्रम्** (वाराहमैत्रायणीयगृह्यसूत्रम्), दिल्ली, १९८२।

३८. **वासिष्ठधर्मशास्त्रम्** (वासिष्ठधर्मसूत्रम्), पूना, १९३०।

३९. **विष्णुस्मृतिः** (विष्णुधर्मसूत्रम्), केशववैजयन्तीयुक्ता, अड्यार, तमिलनाडु, १९६४।

४०. **बौधायनश्रौतसूत्रम्**, (२ खण्ड), दिल्ली, १९८२।

४१. **बोधायनगृह्यसूत्रम्** (बोधायनगृह्यपरिभाषासूत्रबोधायनगृह्यशेषसूत्रसहितम्), दिल्ली, १९८२।

४२. **बौधायनधर्मसूत्रम्**, गोविन्दस्वामिव्याख्यायुक्तम्, वाराणसी, १९७२।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४३. **सत्याषाढश्रौतसूत्रम्** (सत्याषाढविरचित-हिरण्यकेशिश्रौतसूत्रम्), व्याख्यासहितम्, (७ भाग) आनन्दाश्रम, १९०६-१९२८।
४४. **सत्याषाढगृह्यसूत्रम्** (हिरण्यकेशिगृह्यसूत्रम्), सव्याख्यम्, आनन्दाश्रम, १९२९।
४५. **सत्याषाढधर्मसूत्रम्** (सत्याषाढविरचित-हिरण्यकेशिधर्मसूत्रम्), व्याख्यासहितम्, आनन्दाश्रम, १९३२।
४६. **भारद्वाजश्रौतसूत्रम्**, वैदिकसंशोधनमण्डल, पुणे, १९६४।
४७. **भारद्वाजगृह्यसूत्रम्**, नव-दिल्ली, १९८१।
४८. **आपस्तम्बश्रौतसूत्रम्**, रुद्रदत्तवृत्तियुक्तम्, (३ भाग), दिल्ली, १९८३।
४९. **आपस्तम्बगृह्यसूत्रम्**, हरदत्त-सुदर्शनव्याख्याद्वययुक्तम्, वाराणसी, १९७१।
५०. **आपस्तम्बधर्मसूत्रम्**, हरदत्तकृतोज्ज्वलायुक्तम्, वाराणसी, १९६९।
५१. **आग्निवेश्यगृह्यसूत्रम्**, तिरुवनन्तपुर, १९४१।
५२. **मानवश्रौतसूत्रम्** (मानवमैत्रायणीयश्रौतसूत्रम्), प्रमोद-बाला-सम्पादितम्, नागप्रकाशक, दिल्ली, २००३।
५३. **वैखानसश्रौतसूत्रम्**, एशियाटिक-सोसाइटि, कलकत्ता, १९४१।
५४. **वैखानसगृह्यसूत्रम्**, वैखानसधर्मसूत्रं च, एशियाटिक-सोसाइटि, कलकत्ता, १९२७।
५५. **वैखानसधर्मसूत्रम्**, एशियाटिक-सोसाइटि, कलकत्ता, १९२७।
५६. **कात्यायनश्रौतसूत्रम्**, कर्कभाष्ययुक्तम्, (२ भाग), वाराणसी, १९२८,१९३९।
५७. **कात्यायनश्रौतसूत्रम्**, विद्याधरशर्मकृतसरलासहितम्, अच्युतग्रन्थमालाकार्यालय, काशी, १९८७ वै.।
५८. **कात्यायनश्रौतसूत्रम्**, कर्कभाष्य-देवयाज्ञिकभाष्यसारमादाय वेबेरेण संशोधितम्, वाराणसी, १९७२।
५९. **पारस्करगृह्यसूत्रम्**, कर्कजयरामहरिहरगदाधरविश्वनाथभाष्ययुक्तम्, मुम्बयी, १९७३ वै.।
६०. **संस्कारगणपतिः** (पारस्करगृह्यसूत्र-प्रथमद्वितीयकाण्डव्याख्या), वाराणसी, १९९५ वै.।
६१. **कात्यायनश्राद्धकल्पसूत्रम्**, कर्क-गदाधर-कृष्णमिश्रव्याख्यायुक्तम्, पारस्करगृह्यसूत्रम् (भाष्यपञ्चकयुक्तम्), मुम्बयी, १९७३ वै. (१९१७ क्रै.)।
६२. **कातीयगृह्यकारिका**, रेणुदीक्षितकृता, जयपुर, राजस्थान, १९८९।
६३. **लाट्यायनश्रौतसूत्रम्**, अग्निस्वामिभाष्ययुक्तम्, दिल्ली, १९८२।
६४. **गोभिलगृह्यसूत्रम्**, भट्टनारायणभाष्ययुक्तम्, दिल्ली, १९८२।
६५. **द्राह्यायणश्रौतसूत्रम्**, धन्विभाष्ययुक्तम्, गङ्गानाथझा-केन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठ, प्रयाग, १९८३।
६६. **द्राह्यायणगृह्यसूत्रम्**, रुद्रस्कन्दवृत्तियुक्तम्, आनन्दाश्रम, १९१४।
६७. **खादिरगृह्यसूत्रम्**, रुद्रस्कन्दवृत्ति-भाषावृत्तियुक्तम्, मुजफ्फरपुर, १९३४।
६८. **कौथुमगृह्यसूत्रम्**, एशियाटिक-सोसाइटि, कलकत्ता, १९५६।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri

६९. जैमिनिगृह्यसूत्रम्, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली, १९८४।
७०. गौतमधर्मसूत्रम्, हरदत्तकृतमिताक्षरायुक्तम्, आनन्दाश्रम, पुणे, १९३१।
७१. वैतानश्रौतसूत्रम्, विश्वेश्वरानन्दसंस्थान, होशियारपुर, पञ्जाब, १९६७।
७२. कौशिकसूत्रम्, मोतीलाल-बनारसीदास, वाराणसी, १९७२।
७३. ऋक्तन्त्रम्, मेहेरचन्द-लक्ष्मणदास, दिल्ली, १९७०।
७४. पाणिनीयव्याकरणभाष्यम्, प्रदीपोद्योतसहितम्, (६ भाग), दिल्ली, १९८७-१९८८।
७५. काशिका वृत्तिः, पदमञ्जरी-न्याससहिता, (६ भाग), वाराणसी, १९६५-१९६७।
७६. निघण्टुः, देवराजयज्वव्याख्यायुक्तः, मनसुखराय-मोर, कलकत्ता, १९५२।
७७. निरुक्तम्, स्कन्दस्वामि-महेश्वरान्यतरव्याख्यायुक्तम्, (२ भाग), दिल्ली, १९८२।
७८. निरुक्तम्, दुर्गवृत्तिसहितम्, (२ भाग), आनन्दाश्रम, पुणे, १९२१,१९२६।
७९. पिङ्गलच्छन्दःसूत्रम्, यादवप्रकाशभाष्ययुक्तम्, एशियाटिक-सोसाइटि, कलकत्ता, १९७७।
८०. याजुषज्यौतिषं सोमाकरसुधाकरभाष्यसहितम्, आर्चज्यौतिषं च सुधाकरभाष्येण तल्लघुविवरणेन च सहितम्, वाराणसी १९६४ वै.।
८१. वेदाङ्गज्यौतिषम्, शामशास्त्रिकृतया दीपिकाख्य-संस्कृतव्याख्यया आङ्लभाषाऽनुवादेन च सहितम्, मैसुरु, १९३६।
८२. आथर्वणज्योतिषम्, भारतीयविद्याप्रकाशन, वाराणसी, २००३।
८३. पञ्चसिद्धान्तिका, वराहमिहिरकृता, सुधाकरव्याख्यासहिता, वाराणसी, १९६८।
८४. बृहत्संहिता, भट्टोत्पलविवृतिसहिता, वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी, १९६८।
८५. ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः, महामहोपाध्याय-सुधाकर-द्विवेदिकृत-नूतनतिलकसमेतः, वाराणसी, १९०२।
८६. शिष्यधीवृद्धिदम्, भास्कराचार्यकृत-विवरणसंवलितम्, सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९८१।
८७. सुमतितन्त्रम् (प्रथमो भागः), त्रि.वि.पाठ्यक्रमविकासकेन्द्र, काठमाण्डु, २०३५ वै.।
८८. भास्वती, बाबू-ठाकुरप्रसादगुप्त, वाराणसी।
८९. सूर्यसिद्धान्तः, सुधावर्षिणीसहितः सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी, २०४४ वै.।
९०. सिद्धान्तशिरोमणिः, वासनाभाष्यसहितः, वाराणसी, २०४५ वै.।
९१. जगन्मोहनम्, भट्टश्रीलक्ष्मणाचार्यः, नेपाल-राष्ट्रियपुस्तकालय, काठमाण्डु, २०२० वै.।
९२. ग्रहलाघवम्, विश्वनाथकृत-व्याख्योपेतम्, वाराणसी, २०५२ वै.।
९३. मुहूर्तचिन्तामणिः, पीयूषधारासहिता, वाराणसी।
९४. सर्वानन्दकरणम्, गोविन्दगणकः आप्टेः, सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी, २०५६ वै.।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

९५. **ज्योतिर्विज्ञानम्**, अर्कसोमयाजिना धूलिपादेन विरचितम्, वाराणसेय-संस्कृत-विश्व-विद्यालय, वाराणसी, १९६४।

९६. **"राष्ट्रीय-पञ्चाङ्गम्** (संस्कृतभाषयानूदितम्), शकाब्दाः १८८७ (खीष्टाब्दाः १९६५-६६), 'दि डिरेक्टर जेनारेल अव् अव्जर्वेटरिज्, लोदी रोड, न्यू दिल्ली–३' अस्य पक्षे मेनेजर आफ पब्लिकेशन्स, सिविल लाइन, दिल्ली। कर्तृकप्रकाशितः।"

९७. **श्रीमज्जैमिनिप्रणीतं मीमांसादर्शनम्** (जैमिनीय-धर्ममीमांसासूत्रम्), शाबरभाष्य-तन्त्र-वार्तिक-टुप्टीकासहितम्, (७ भाग), आनन्दाश्रम, पुणे, १९५३, १९७०, १९७१, १९७२, १९३२, १९३३, १९३४।

९८. **सङ्कर्षकाण्डम्**, देवस्वामिभाष्ययुक्तम्, मद्रासविश्वविद्यालय, १९६५।

९९. **ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम्** (ब्रह्ममीमांसासूत्रम्, कल्पतरुपरिमलोपबृंहित-वेदान्तकल्प-तरुव्याख्यात-भामतीसहितशाङ्करशारीरकमीमांसाभाष्ययुक्तम्), मुम्बयी, १९३८।

१००. **सङ्क्षेपशारीरकम्**, सर्वज्ञात्ममुनिकृतम्, मधुसूदनव्याख्यायुतम्, वाराणसी, १९८१वै.।

१०१. **मानवधर्मशास्त्रम्**, (मनुस्मृतिः), मेधातिथि-गोविन्दराज-सर्वज्ञनारायण-कुल्लूकभट्ट-राघवानन्द-नन्दन-रामचन्द्रव्याख्यायुक्तम्, (२ भाग), मुम्बयी, १८८६, १८८७।

१०२. **याज्ञवल्क्यस्मृतिः**, विज्ञानेश्वरकृतमिताक्षरायुक्ता, वाराणसी, १९६९।

१०३. **याज्ञवल्क्यस्मृतिः**, विश्वरूपकृतबालक्रीडासहिता, मुन्शीराम-मनोहरलाल, दिल्ली, १९८२।

१०४. **पराशरमाधवः**, (पराशरस्मृतिः, माधवीयव्याख्यायुक्ता), कलकत्ता, १९७४, १९७३।

१०५. **स्मृतिसन्दर्भः**, प्रथमो भागः (मनुस्मृतिः, नारदस्मृतिः [नारदीयमनुस्मृतिः], अत्रिस्मृतिः, अत्रि-संहिता, विष्णुस्मृतिः [विष्णुमाहात्म्यम्], विष्णुस्मृतिः [विष्णुधर्मसूत्रम्], संवर्तस्मृतिः, दक्षस्मृतिः, आङ्गिरसस्मृतिः, शातातपस्मृतिः), मनसुखरायमोर, कलकत्ता, २००९ वै. (१९५२ क्रै.)।

१०६. **स्मृतिसन्दर्भः**, द्वितीयो भागः (पराशरस्मृतिः, बृहत्पराशरस्मृतिः, लघुहारीतस्मृतिः, [वृद्ध]-हारीतस्मृतिः), मनसुखरायमोर, कलकत्ता, २००९ वै. (१९५२ क्रै.)।

१०७. **स्मृतिसन्दर्भः**, तृतीयो भागः (याज्ञवल्क्यस्मृतिः, कात्यायनस्मृतिः [गोभिलस्मृतिः=कर्मप्रदीपः=छन्दोगपरिशिष्टम्], आपस्तम्बस्मृतिः [श्लोकात्मिका], लघुशङ्खस्मृतिः, शङ्खस्मृतिः, लिखित-स्मृतिः, शङ्खलिखितस्मृतिः, वसिष्ठस्मृतिः [वासिष्ठधर्मसूत्रम्], औशनससंहिता, औशनसस्मृतिः, बृहस्पतिस्मृतिः, लघुव्यासस्मृतिः, वेदव्यासस्मृतिः, देवलस्मृतिः, प्रजापतिस्मृतिः, लघ्वाश्वलायनस्मृतिः, बौधायनस्मृतिः [बौधायनधर्मसूत्रम्]), मनसुखरायमोर, कलकत्ता, २००९ वै. (१९५२ क्रै.)।

१०८. **स्मृतिसन्दर्भः**, चतुर्थो भागः (गौतमस्मृतिः [गौतमधर्मसूत्रम्], वृद्धगौतमस्मृतिः [वैष्णवगौतम-स्मृतिः], यमस्मृतिः, लघुयमस्मृतिः, बृहद्यमस्मृतिः, अरुणस्मृतिः, पुलस्त्यस्मृतिः, बुधस्मृतिः, वशिष्ठस्मृतिः [वैष्णववशिष्ठस्मृतिः], बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृतिः, ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यसंहिता, काश्यपस्मृतिः, व्याघ्रपादस्मृतिः), मनसुखरायमोर, कलकत्ता, २०१० वै. (१९५३ क्रै.)।

१०९. **स्मृतिसन्दर्भः**, पञ्चमो भागः (कपिलस्मृतिः, वाधूलस्मृतिः, विश्वामित्रस्मृतिः, लोहितस्मृतिः, नारायणस्मृतिः, शाण्डिल्यस्मृतिः, कण्वस्मृतिः, दाल्भ्यस्मृतिः, आङ्गिरसस्मृतिः [पूर्वाङ्गिरसम्+उत्तराङ्गिरसम्], भारद्वाजस्मृतिः,), मनसुखरायमोर, कलकत्ता, २०१२ वै. (१९५५ क्रै.)।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११०. **स्मृतिसन्दर्भः**, षष्ठो भागः (मार्कण्डेयस्मृतिः, लौगाक्षिस्मृतिः), मनसुखरायमोर, कलकत्ता, २०१३ वै. (१९५७ क्रै.)।

१११. **स्मृतीनां समुच्चयः** (अङ्गिरःस्मृतिः, अत्रिसंहिता, अत्रिस्मृतिः, आपस्तम्बस्मृतिः [श्लोकात्मिका], औशनसस्मृतिः, गोभिलस्मृतिः [अपूर्णा], दक्षस्मृतिः, देवलस्मृतिः, प्रजापतिस्मृतिः, बृहद्यमस्मृतिः, बृहस्पतिस्मृतिः, यमस्मृतिः, लघुविष्णुस्मृतिः, लघुशङ्खस्मृतिः, लघुशातातपस्मृतिः, लघुहारीतस्मृतिः, लघ्वाश्वलायनस्मृतिः, लिखितस्मृतिः, वशिष्ठस्मृतिः [वाशिष्ठधर्मसूत्रम्], वृद्धशातातपस्मृतिः, वृद्धहारीतस्मृतिः, वेदव्यासस्मृतिः, शङ्खलिखितस्मृतिः, शङ्खस्मृतिः, शातातपस्मृतिः, संवर्तस्मृतिः, बौधायनस्मृतिः [बौधायनधर्मसूत्रम्]), आनन्दाश्रम, पुणे, १९२९।

११२. **आग्नेयमहापुराणम्** (अग्निपुराणम्), वेङ्कटेश्वरमुद्रणालय, मुम्बयी, १९५८ वै.।

११३. **कूर्ममहापुराणम्** (कूर्मपुराणम्), लक्ष्मीवेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बयी, १९८३ वै.।

११४. **गरुडमहापुराणम्** (गरुडपुराणम्), वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९६३ वै.।

११५. **नारदीयमहापुराणम्** (नारदीयपुराणम्), वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९८० वै.।

११६. **पाद्ममहापुराणम्** (पाद्मपुराणम्), वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९५२ वै.।

११७. **ब्रह्ममहापुराणम्** (ब्रह्मपुराणम्), वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९६३ वै.।

११८. **ब्रह्मवैवर्तमहापुराणम्** (ब्रह्मवैवर्तपुराणम्), वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९६६ वै.।

११९. **ब्रह्माण्डमहापुराणम्** (ब्रह्माण्डपुराणम्), वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९६९ वै.।

१२०. **भविष्यमहापुराणम्** (भविष्यपुराणम्), वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९६७ वै.।

१२१. **श्रीमद्भागवतपुराणम्** (भागवतपुराणम्=विष्णुभागवतम्), श्रीधरटीकायुक्तम्, दिल्ली, १९८३।

१२२. **श्रीमन्मत्स्यमहापुराणम्** (मत्स्यपुराणम्), वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९५२ वै.।

१२३. **मार्कण्डेयमहापुराणम्** (मार्कण्डेयपुराणम्), वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९६७ वै.।

१२४. **लिङ्गमहापुराणम्** (लिङ्गपुराणम्), सटीकम्, वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९६३वै.।

१२५. **वराहमहापुराणम्** (वाराहपुराणम्), वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९५९ वै.।

१२६. **वामनपुराणम्**, वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९६० वै.।

१२७. **वायुपुराणम्**, वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९५२ वै.।

१२८. **विष्णुपुराणम्**, वैष्णवाकूतचन्द्रिकायुक्तम्, मुम्बयी, शाके १८०९ (१९४४ वै.)।

१२९. **स्कान्दमहापुराणम्** (स्कन्दपुराणम्), वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९६५-१९६७ वै.।

१३०. **देवीभागवतम्**, शैवनीलकण्ठकृतटीकायुक्तम्, जगदीश्वरयन्त्रालय, मोहमयी, १९६४ वै.।

१३१. **शिवमहापुराणम्** (शिवपुराणम्), वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९६३ वै.।

१३२. **विष्णुधर्मोत्तरपुराणम्**, वेङ्कटेश्वरयन्त्रालय, मुम्बयी, १९६९ वै.।

१३३. **सौरपुराणम्**, आनन्दाश्रम, पुना, १९२४।

१३४. **पाराशरोपपुराणम्** (पराशरपुराणम्), सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी, १९९०।

१३५. **सूतसंहिता**, माधवमन्त्रिकृतव्याख्यायुक्ता, (३ खण्ड), आनन्दाश्रम, १९२४,१९२५।

१३६. **महाभारतम्**, नीलकण्ठव्याख्यायुक्तम्, (६ भाग), चित्रशाला, पुना, १९२९-१९३३।

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri
१३७. **महाभारतम्**, सातवलेकरसम्पादितम्, पारडी, बलसाड्, गुजरात, १९६८-१९७७।
१३८. **हरिवंशः** (महाभारतखिलभागः), गीताप्रेस-गोरखपुर, संवत् २०२४।
१३९. **कौटलीयार्थशास्त्रम्**, शामशास्त्रिसम्पादितम् (१९०८), वेङ्कटनाथशर्मसम्पादितम्, मैसुरु, १९६०।
१४०. **अभिधर्मकोशः**, स्वोपज्ञव्याख्यासहितः, स्फुटार्थव्याख्योपेतः, बौद्धभारती, वाराणसी, १९९८।
१४१. **कृत्यकल्पतरुः**, लक्ष्मीधरकृतः, (१२ भाग), वडोदा, १९४१-१९५३।
१४२. **धर्मरत्ने कालविवेकः**, जीमूतवाहनः, एसियाटिक-सोसाइटि, कलिकाता, १९०५।
१४३. **स्मृतिचन्द्रिका**, देवणभट्टकृता, दिल्ली, १९८८।
१४४. **कृत्यरत्नाकरः** (स्मृतिरत्नाकरान्तर्गतः), एशियाटिक-सोसाइटि, कलकत्ता, १९२१-१९२५।
१४५. **चतुर्वर्गचिन्तामणिः**, हेमाद्रिकृतः (६ भाग), वाराणसी, १९८५।
१४६. **कालमाधवः**, चौखम्भासंस्कृतसंस्थान, वाराणसी, २०४५ वै.।
१४७. **वर्षक्रियाकौमुदी**, गोविन्दानन्दः, एसियाटिक-सोसाइटि, कलिकाता, १९०१।
१४८. **स्मृतितत्त्वम्** (प्रथमखण्डम्), जीवानन्दविद्यासागरप्रकाशित, कलिकाता, १८९५।
१४९. **भगवन्तभास्करः**, नीलकण्ठकृतः, दिल्ली, १९८६।
१५०. **निर्णयसिन्धुः**, निर्णयसागरमुद्रणालय, मुम्बयी, पञ्चम संस्करण, १९४९।
१५१. **वीरमित्रोदयः**, वाराणसी, १९०६-१९३७।
१५२. **संस्कारभास्करः**, ऋषिभट्टकृतः, वेङ्कटेश्वरमुद्रणालय, १९६९ वै.।
१५३. **संस्काररत्नमाला** (३ खण्ड), आनन्दाश्रम, पुणे, १८९९।
१५४. **धर्मसिन्धुः**, काशीनाथोपाध्यायकृतः, निर्णयसागरमुद्रायन्त्रालय, १९०४।
१५५. **संस्कारदीपकः**, नित्यानन्दपर्वतीयः, वाराणसी, २०२१ वै.।
१५६. **धर्मकोशः** (संस्कारकाण्डम्), प्राज्ञपाठशालामण्डल, सतारा, २०१५-२०४१ वै.।
१५७. **चरकसंहिता**, चक्रपाणिव्याख्यायुक्ता, वाराणसी, १९८४।
१५८. **चरकसंहिता**, चक्रपाणिदत्त-गङ्गाधरव्याख्यायुता, वाराणसी, १९९१।
१५९. **सुश्रुतसंहिता**, डल्हणव्याख्यायुक्ता, मुम्बयी, १९३१।
१६०. **अष्टाङ्गसङ्ग्रहः**, इन्दुप्रकाशव्याख्यासहितः, त्रिचुरनगर, केरल, १९२४।
१६१. **अष्टाङ्गहृदयम्**, संस्कृतव्याख्याद्वययुक्तम्, वाराणसी, १९८२।
१६२. **आह्निकसूत्रावलिः**, वैद्यनारायणशर्मा, निर्णयसागरमुद्रणयन्त्रालय, मुम्बापुरी, १९८० वै.।
१६३. **शुक्लयजुःशाखीयः कर्मकाण्डप्रदीपः**, श्रीअण्णाशास्त्री वारेः, वाराणसी, १९९५।
१६४. माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायि-निरग्निकद्विज-सदाचारकर्म-संस्कारकर्म-श्राद्धकर्मादि-वैदिकमन्त्र-सङ्ग्रहः (सपरिशिष्टः), स्वाद्ध्यायशाला, काडमाण्डु, २०५२ वै.।
१६५. **चातुर्वर्ण्यसंस्कृतिविमर्शः**, (२ भाग), हरिहरानन्द-करपात्री, वाराणसी।
Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१६६. **कामसूत्रम्**, वात्स्यायनकृतम्, चौखम्बा-सुरभारतीप्रकाशन, वाराणसी, १९९९।

१६७. **काव्यमीमांसा**, राजशेखरकृता, वाराणसी, २०१६ वै.।

१६८. **हर्षचरितम्**, सङ्केतव्याख्यासहितम्, चौखम्बाविद्याभवन, वाराणसी, २०२१ वै.।

१६९. **भारतीय ज्योतिष** (स्वर्गीय श्रीशङ्कर बालकृष्ण दीक्षित की मराठी पुस्तक का अनुवाद), अनुवादक श्रीशिवनाथ भारखण्डी, हिन्दी समिति, उत्तरप्रदेशशासन, लखनऊ, १९७५।

१७०. लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक के ओरायन (मृगशीर्ष) का सारानुवाद **वेदकाल-निर्णय**, सस्ता साहित्य प्रेस, अजमेर, १९९५ वै.।

१७१. **हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र**, हरिहर पाण्डेय, उत्तरप्रदेश-हिन्दीसंस्थान, लखनऊ, १९८९।

१७२. **भारतीय विज्ञान के कर्णधार (फाउण्डर्स आफ साइन्सेज इन एन्शेण्ट इण्डिया का हिन्दी अनुवाद)**, सत्यप्रकाश डी.एस्सी., अनुवादक श्रीराजेन्द्र द्विवेदी एम्.ए., रिसर्च इन्स्टीट्यूट आफ एन्शेण्ट साइण्टीफिक स्टडीज, न्यू देहली, २०२३ वै.।

१७३. **भारतीय ज्योतिष**, नेमीचन्द्र शास्त्री, भारतीयज्ञानपीठ, नई दिल्ली, २००३।

१७४. **धर्मशास्त्र का इतिहास**, पाण्डुरङ्ग वामन काणे, (५ भाग), हिन्दीसमिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, १९६४-१९७३।

१७५. **वैदिक वाङ्मय का (विवेचनात्मक) बृहद् इतिहास**, कुन्दनलालशर्मा, होशियारपुर, १९८१-१९८५।

१७६. **आर्यसंस्कृति**, बलदेव उपाध्याय, शारदामन्दिर, बनारस, १९५३।

१७७. **भारतवर्ष का नवीन इतिहास**, डा. ईश्वरीप्रसाद, प्रयाग, १९५५ ।

१७८. **हिन्दी विश्वकोश**, नगेन्द्रनाथ वसु तथा हिन्दी के विद्वानों द्वारा सङ्कलित, (१-२५ भाग), पुनर्मुद्रण, दिल्ली, १९८६।

१७९. **हिन्दुत्व**, रामदास गौड, शिवप्रसादगुप्तसेवा उपवन, काशी, १९९५ वै.।

१८०. **भारतीय अभिलेख**, एस.एस.राणा, भारतीय विद्याप्रकाशन, वाराणसी, १९७८।

१८१. **नेपालको प्राचीन अभिलेख**, नेपाल-राजकीय-प्रज्ञाप्रतिष्ठान, काठमाण्डु, २०३० वै.।

१८२. **सारस्वती सुषमा** (५०व. ३–४अ., २०५२ वै.; ५१व. १–४अ., २०५३ वै.) सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी।

१८३. **पूर्णिमा**, इतिहासप्रधान त्रैमासिक पत्रिका, पूर्णाङ्क ३४, २०३३ वै.; पूर्णाङ्क ७९, २०४७ वै.; पूर्णाङ्क ११४, २०६१ वै.; संशोधन-मण्डल, काठमाण्डु।

१८४. **गरिमा**, मासिक पत्रिका, पूर्णाङ्क १९३, २०५५ पौष; साझाप्रकाशन, नेपाल।

१८५. **Aryabhatiya of Aryabhata,** With the Commentary of Suryadeva Yajvan, Indian National Science Academy, New Delhi, 1976.

१८६. **Vedic Chronology and Vedanga Jyotish,** B.G.Tilak, Poona, 1925.

१८७. **Indian and Foreign Chronology,** Venkatesh Bapuji Ketkar, Bombay, 1923.

१८८. **Rig-Veda-Samhita,** Volume iv, F.Max Muller, Varanasi, 1966.

१८९. **Lahiri's Indian Ephemeris of Planets' Positions** (For 2005 A.D.), Astro-Research Bureau, Kolkata.

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महत्वपूर्ण ग्रन्थ

- **कर्मविपाकसंहिता** । 'सरलाख्य' भाषाटीका सहित । पं० श्री लालजी उपाध्याय
- **खेटकौतुकम्** । खानखाना विरचित । श्री नारायणदासकृत हिन्दी व्याख्या सहित
- **जातकालङ्कार** । सान्वय 'हरभानु' संस्कृत टीका एवं 'प्रज्ञावर्द्धिनी' हिन्दी टीका सहित । डॉ० सत्येन्द्रमिश्र
- **जैमिनीसूत्र** । संस्कृत-हिन्दी टीका सहित । पं० सीताराम झा
- **ज्योतिषरत्नमाला** । हिन्दी टीका सहित । पं० सीताराम झा
- **ज्योतिष कल्पद्रुम** (मुहूर्तपरिजात) । पं० सोहनलाल व्यास
- **ज्योतिष प्रश्नफलगणना** । 'विमला' हिन्दी व्याख्योपेता । श्री दयाशङ्कर उपायाय
- **ताजिकनीलकण्ठी** । संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित । पं० सीताराम झा
- **फलितप्रकाश** । डॉ० बालमुकुन्द पाण्डेय
- **बीजगणित** । श्रीभास्कराचार्यकृत । व्याख्याकार—विशुद्धानन्द गौड
- **बृहज्ज्योतिषसार** । हिन्दी टीका, विशेष विवरण, विविध प्रकार के चक्र, सारणी आदि से सुसज्जित फलित का अभिनव ग्रन्थ । सम्पा०—श्रीवासुदेव गुप्त
- **बृहत्संहिता** । वराहमिहिरकृत । 'विमला' हिन्दी टीका सहित । पं० अच्युतानन्द झा
- **बृहत्संहिता** । 'भट्टोत्पल्लविवृत्ति' समन्वित 'विमला' हिन्दी टीका सहित । पं० अच्युतानन्द झा । १-२ भाग
- **भार्गवनाडिका** । हिन्दी व्याख्या सहित । व्याख्याकार—महर्षि अभय कात्यायन
- **मानसागरी** । 'सुबोधिनी' हिन्दी व्याख्या, उपपत्ति, विशेष विवरण सहित । सम्पा०—पं० मधुकान्त झा
- **मुहूर्तपारिजात** (ज्योतिषकल्पद्रुम) । पं० सोहनलाल व्यास । सम्पा०—पं० सीताराम झा
- **मुहूर्तमार्तण्ड** । 'प्रभा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्या सहित । पं० सीताराम झा
- **वेदाङ्गज्योतिष** । लगधमुनिकृत । दुर्लभ सोमाकर भाष्य एवं आचार्य शिवराज कौण्डिन्न्यायनकृत हिन्दी व्याख्या, विशेष टिप्पणी सहित

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

Prof. Amodavardhana Kaundinnyayana Collection, Kathmandu, Nepal